उड़िया बाबाजी

के

संस्मरण

द्वितीय खण्ड

सम्पादक :

स्वामी सनातनदेव

गोविन्द दास वैष्णव

3 गीत

चौरंगिक्रम Qua
टीनाड्रम

45

J. R. Chaubey

S.4

श्रीउड़िया बाबाजी के संस्मरण

द्वितीय खण्ड

सम्पादक

स्वामी सनातनदेव

गोविन्ददास वैष्णव

प्रकाशक :

श्री आर्तत्राण न्यास

मुख्य कार्यालय-३८०३ डेविड स्ट्रीट, दरियागंज, दिल्ली-११०००२
शाखा कार्यालय-श्रीपूर्णकुटीर; मातृमण्डल
श्रीउड़ियाबाबा आश्रम, दावानलकुण्ड, वृन्दावन-२८११२१

पुस्तक प्राप्ति का स्थान :
श्री स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ (उड़िया बाबा) ट्रस्ट समिति
श्रीकृष्णाश्रम, दावानल कुण्ड, वृन्दावन (मथुरा)

□

द्वितीय संस्करण—१००० प्रतियाँ
संवत् २०४०

मूल्य—८) रुपये

★

मुद्रक :

श्रीहरिनाम प्रेस
हरिनाम पथ, वृन्दावन (मथुरा)

विश्वस्मै स्वस्ति

परमपूज्यपाद गुरुदेव श्रीपूर्णानन्दतीर्थ श्री उड़ियाबाबाजी महाराज के संस्मरणों की पुस्तक अनेक वर्षों से दुष्प्राप्य हो गई थी और भक्त जनों का यह अनुरोध था कि इसे पुनः प्रकाशित किया जाय। अब इसको परमप्रिय श्री रामचरणजी अग्रवाल अपने पिता स्व० श्री सेठ गणेशीलालजी अग्रवाल हाथरस वाले की स्मृति में सम्पूर्ण व्यय देकर श्री आर्त्तत्राण न्यास के द्वारा प्रकाशित करवा रहे हैं। हमारी शुभकामना है कि उनके परिवार में भगवान् एवं श्री महाराजजी के प्रति भक्ति सदा बनी रहे।

यह पुस्तक श्री आर्त्तत्राण न्यास की ओर से श्री पूर्णानन्द तीर्थ (श्री उड़िया बाबा) समिति को समर्पित की जा रही है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री पूर्णानन्दतीर्थ स्तव भी सम्मिलित कर दिया गया है। इस प्रकाशन के द्वारा यदि जनता जनार्दन की कुछ भी सेवा हो सके तो हम अपने को कृतार्थ मानेंगे।

मन्त्री
योगेन्द्रनाथ बंसल

अध्यक्ष
स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती

श्री आर्त्तत्राण न्यास दिल्ली (शाखा वृन्दावन)

नम्र-निवेदन

(प्रथम संस्करण में)

※

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीसे बिछुड़े हुए हमें प्राय दस वर्ष हो गये हैं। अब उनके सदुपदेश और उनकी सुमधुर स्मृति ही इस जीवन-यात्रामें हमारे संबल हैं उनके सदुपदेशोंका संग्रह तो पहले ही प्रकाशित हो चुका है। एक संक्षिप्त जीवन परिचय भी छपा है। तथापि भक्तोंकी बड़ी लालसा थी कि उनकी एक विस्तृत जीवनी भी लिखी जाय। परन्तु लिखे कौन ? महापुरुषों का जीवन तो ईश्वरोंका जीवन होता है। हम सामान्य जीव उसे न तो पूरा-पूरा समझ ही सकते हैं और न उसे अभिव्यक्त करने के लिये हमारे पास उपयुक्त शब्द-सम्पत्ति ही है। जैसे एक ही भगवान् भावभेदसे भक्तोंको विभिन्नि रूपोंमें भासते हैं, वैसे ही महापुरुषों के विषयमें भी उनके सभी भक्तोंकी एक-सी धारणा नहीं होती। अतः ऐसा कोई एक जीवन तो लिखा भी नहीं जा सकता जिससे सभी भक्तों को उनके अपनें-अपने भावकी पोषक सामग्री मिल सके। इन्हीं कारणोंसे यह कार्य अत्यन्त आवश्यक होने पर भी आरम्भ न हो सका।

प्रायः पाँच वर्ष हुए श्रीमहाराजजीके कुछ भक्तों के आग्रह से श्रीगोविन्ददासजो वैष्णवने उनके जीवनचरितके लिये सामग्री संग्रह करनेका कार्य आरम्भ किया और इसमें उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। सच पूछा जाय तो प्रस्तुत पुस्तक उनके उस अथक परिश्रमकाही परिणाम है। इस प्रकार प्रायः दो वर्षों में पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो गयी। अब उसके सम्पादन की समस्या सामने आयी। सामग्री बहुत उपयोगी थी और उसमें सभी प्रकार की मनोवृत्तियों के साधकों के भाव सन्निविष्ट थे। उन विभिन्न भाव और विभिन्न दृष्टिकोणोंसे समन्वित सामग्री के आधारपर कोई क्रमबद्ध जोवन लिखना आसान कार्य नहीं था। अतः यह निश्चय किया गया कि उन संस्मरणों को ही क्रमबद्ध करके ज्योंका त्यों प्रकाशित कर दिया जाय। इससे सभी प्रकार की सामग्री लेखकोंके अपने-अपने भावों के अनुसार मिल जायगी और उन घटनाओंके विषयमें किसी एक व्यक्ति का उत्तरदायित्व भी नहीं रहेगा।

यह निर्णय हो जाने पर उनमेंसे अधिकांश लेखों को, उनकी भाषा आदि का संशोधन करके, श्रीगोविन्ददासजी ने लिखा। परन्तु वह चाहते थे कि सम्पादन का अन्तिम दायित्व किसी अन्य व्यक्ति पर ही रहे। अतः इसे अन्तिम रूप देनेका कार्य मुझे ही सौंपा गया। मैंने अपनी योग्यता के अनुसार इसका सम्पादन करने का प्रयत्न किया है। उसमें मैं कितना सफल हुआ हूँ, सो तो भगवान् ही जानें।

इस पुस्तकको दो खण्डोंमें विभक्त किया गया है। लेख और लेखकोंकी दृष्टिसे दोनों ही खण्डों का समान महत्त्व रहे—ऐसा प्रयत्न रहा है। लेखों की भाषा तो आवश्यकतानुसार सुधार

गयी है, परन्तु घटनाओंकी यथार्थता का दायित्व लेखकों पर ही है। हमें किसीके विषयमें अविश्वास करने का क्या अधिकार है? महापुरुषोंके जीवनमें ऐसा कौन आश्चर्य है जो दुर्घट हो। तथापि स्थानका संकोच होनेके कारण बहुत-से लेख छोड़ने भी पड़े हैं और अनावश्यक समझ कर प्रस्तुत लेखों की भी कुछ घटनायें छोड़ दी गयी हैं। आशा है, हमारी विवशता का विचार करके कृपालु लेखक हमें क्षमा करेंगे।

अस्तु, जैसा भी बना यह गुरुदेव के निजजनों द्वारा गूँथा हुआ श्रद्धामय पुष्पहार उन्हींके परमपुनीत पादपद्मोंमें समर्पित करता हूं। वे करुणामय प्रभु इस नगण्य भेंटसे प्रसन्न होकर हमें अपने चरणकमलोंकी अहैतुकी प्रीति प्रदान करें।

श्रीकृष्णाश्रम, वृन्दावन
दीपावली, सं० २०१५ वि०

विनीत:
सनातनदेव

श्रीपूर्णानन्दतीर्थस्तवः

☆

॥ ॐ श्रीपूर्णानन्दाय नमो नमः ॥

: १ :

श्रीपूर्णानन्दतीर्थस्फुरदमृतगवी-विप्रुषाऽऽप्लावितानां,
नास्माकं मोक्षचिन्ता प्रविदितमहसां ब्रह्मभावं गतानाम् ।
किन्त्वेषा बोधधारा विघटितनिखिलाकारसंस्कारकारा,
स्वच्छन्दं दन्ध्वनीति प्रतिपदमधुना तामनुव्यञ्जयामः ॥

ये हैं श्रीपूर्णानन्दतीर्थ । इस अद्भुत तीर्थसे वचन-सुधा लहराती है । हम उसके सीकरोंमें स्नान कर चुके हैं । हमें अद्वितीय ज्योतिका बोध हो गया है और ब्रह्मात्म-भावका अनुभव है, मोक्षकी कोई चिन्ता नहीं है । फिर भी उस कृपा-सीकरसे प्राप्त बोधकी धारा प्रवाहित होकर समस्त आकार एवं संस्कारके कारागारको छिन्न-भिन्न कर रही है और स्वच्छन्द उपदेश-ध्वनिसे परिपूर्ण कर रही है । अब हम प्रतिपद उसीको अभिव्यक्ति देते हैं ॥१॥

तच्चित्रं यस्य चित्रं कलितमपि मनाक् छे यसां प्रेयसां च,
पारोक्ष्यं संपिधत्ते वितरति परमां पूर्णतामात्मरूपाम् ।।

तीर्थोंकी संख्या नहीं है । गंगा-पुष्करादि, महात्मा-गण, विद्वान्–सभी तीर्थ हैं। उनकी अद्भुत शोभा प्रत्यक्ष-रूपसे अनुभवमें आती रहती है। उनमें स्नान करो, दान करो, प्रवचन सुनो । उनकी पटुता सभी कलाओंका अतिक्रमण कर जाती है । परन्तु श्रीपूर्णानन्दतीर्थमें एक विचित्रता है । यदि एक बार, केवल एक बार थोड़ी देरके लिए उनके चित्रका भी आकलन कर लिया जाय तो वह श्रेय एव प्रेय दोनोंका प्रत्यक्ष कर देता है और आत्मस्वरूप सच्ची पूर्णताका दान कर देता है ।।५।।

: ६ :

सा दृष्टिः सूक्ष्मलक्ष्या स्थिरचरविषया वासनास्पर्शशून्या,
सा दृष्टिर्दृश्यमुक्तं करणमिव परं सम्प्रसादैकरूपा ।
सा दृष्टिर्यत्र नान्यत् सकलमविकलं ब्रह्म प्रत्यक् प्रशान्तं,
श्रीपूर्णानन्दनेत्रद्वयरसविलसत्कोणकारुण्यमात्रम् ।।

वह दृष्टि जिसका लक्ष्य सूक्ष्म होता है, खुली रह-कर स्थावर जगमको भी देखती रहती है किन्तु वासनाका स्पर्श भी नहीं होता । वह दृष्टि जिसमें दृश्य न हो, निर्विषय करणके समान हो और सम्प्रसन्न समाधिरूप हो । वह दृष्टि जिसमें द्वैत है ही नहीं, सब कुछ प्रत्यक् चैतन्याभिन्न निर्विकार एवं प्रशान्त ब्रह्म ही है । वह

शाम्भवी मुद्रा, सम्प्रज्ञात समाधि अथवा निर्विकल्प निर्बीज ब्रह्मनिष्ठा श्रीपूर्णानन्दतीर्थ महाराजके नयनयुगलके विलासपूर्ण कोणका कारुण्य मात्र ही है ॥६॥

: ७ :

यत्किञ्चिद्वास्तु वस्तु प्रणमत कृतिनो ज्ञानतोऽज्ञानतो वा,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थामृतकणपवनस्पर्शधन्यं धरण्याम् ।
यत्सम्पर्कादनर्हामिव हरिहरतां मन्यमाना महान्तः,
स्वान्तर्व्योम्नि प्रशान्तं निरुपधिविमलं ब्रह्म पूर्णं लभन्ते ।

सज्जनों ! धरतीपर चाहे कोई भी वस्तु क्यों न हो, जो श्रीपूर्णानन्दतीर्थके अमृतकणसे प्लावित वायुके स्पर्शसे धन्य हो चुकी हो, उसे ज्ञान या अज्ञानसे प्रणाम कीजिये। उस वस्तुके सम्पर्कसे महापुरुषोंके हृदयमें भी वैराग्यकी ऐसी उदात्त भावना उदित हुई है कि उन्होंने हरिहर पदवीको भी अयोग्य समझकर अपने हृदय–आकाशमें प्रशान्त, निर्माय, निर्मल पूर्ण ब्रह्मको प्राप्त किया है ॥७॥

: ८ :

रे रे ब्रह्माण्डकोटयः फलतः बहुविधं रोमकूपेष्वभीक्ष्ण-
मीशा रे सावकाशं निजपदविहितां सद्व्यवस्थां विधत्त ।
रक्ता भक्ता विरक्ता विलसत सकलं सत्कले निष्कले वा,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थं वयमिह कुशला उत्कलं संविशामः ॥

अरे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डो ! तुम हमारे एक-एक रोमकूपमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे बार-बार फूलो-फलो । रे ब्रह्माण्डके स्वामियों ! तुम आकाशके अनुसार अपने पदकी मर्यादाके अनुसार ब्रह्माण्डोंकी सद्व्याख्या करो । रागी भक्त और विरक्तों ! तुमलोग सकल, सत्कल या निष्कल ईश्वरमें विहार करो । हम चतुरलोग इसी धरती पर, इसी जीवनमें उत्कल श्रीपूर्णानन्दतीर्थमें भली-भाँति प्रवेश कर रहे हैं ॥८॥

: ९ :

माया छाया वराकी कथमिवलभतां मय्यनन्ते प्रतिष्ठा·
मस्थाने चेश्वरत्वं द्रुहिणहरिहरा हन्त वह्नेः स्फुलिङ्गाः ।
अद्वैते द्वैतखेला गगननलिनवत् स्वप्नवज्जीवमेला,
श्रीपूर्णानन्दवाणी श्रुतिशिखरसुधास्वर्णदी नः पुनातु ॥

"तुच्छ माया छाया मात्र है । वह मुझ अनन्तमें स्थान कैसे पा सकती है ? ईश्वरता भी किसकी ? कैसे ? राम-राम ! ब्रह्मा-विष्णु-महेश तो मुझमें आगकी चिन्गारीके समान हैं । अद्वैतमें द्वैतका खेल आकाशमें कमलके खेल-सा है और जीवोंका मेल स्वप्न सा ।" यह है श्रीपूर्णानन्दतीर्थकी वाणी । यह श्रुतिशिखर अर्थात् वेदके शिरोभाग वेदान्तकी सुधागंगा है । यह हमें पवित्र करे ॥९॥

: १० :

भक्तिःश्रद्धैकमूला विरहितविषया बोधमूलं विरक्ति-

र्दिध्यासा लक्षितेऽर्थे श्रवणमननजा सम्प्रसूते समाधिम् ।
ज्ञानाभ्यासप्रधाना घनरतिरुदिता हन्त्यविद्यामवद्यां,
श्रीपूर्णानन्दतीर्थे वचसि वयममी निर्भरं मज्जिताः स्मः ॥

'भक्तिका एकमात्र कारण है श्रद्धा । ब्रह्मबोधका साधन है वैराग्य । सम्पूर्ण-बिषयोंमें अरुचि वैराग्य है । श्रवण-मननजन्य निदिध्यासन लक्ष्यार्थमें समाधिको जन्म देता है । ज्ञानाभ्यासप्रधान घनरति उदित होकर भेदजननी अविद्याका नाश कर देती है ।" यह हैं श्रीपूर्णानन्दतीर्थके वचन जों स्वयं तीर्थ हैं । अब हम निश्चिन्त होकर इसमें मग्न हो चुके हैं ॥१०॥

: ११ :

श्रीपूर्णानन्दकल्पद्रुमतलरजसा पाविते भूप्रदेशे,
यस्मिन्कस्मिन्निषीदन् सपदि निजपदे शान्तवृत्तिर्निसर्गात् ।
दर्शं दर्शं स्वरूपं परिणतविधुरं ब्रह्म निर्भेदमद्धा,
न श्रद्धां नानुबन्धं श्रुतिशिखरगिरामाग्रहं नानुमन्ये ॥

श्रीपूर्णानन्दतीर्थ हैं कल्पवृक्ष । उनके पादतलकी धूलिसे पावन जिस किसी भूमिप्रदेशमें बैठते ही बिना किसी साधनके तत्काल वृत्ति अपने स्वरूपमें शान्त हो जाती है । परिणाम-रहित निर्भेद ब्रह्म अपना ही स्वरूप है इसका साक्षात्कार होने लगता है । 'अब मुझे श्रद्धा, अनुबन्धचतुष्टय अथवा वेदान्तश्रवणके बिना ब्रह्मज्ञान नहीं होता'—इस मतवादमें आग्रह नहीं रहा ॥११॥

: १२ :

यस्याज्ञा धर्मशास्त्रं सहजशुचिकथा ब्रह्मविद्यानवद्या,
ध्यानं सर्वात्मभानं स्थिरचरहितकृत्छेमुषो शान्तिभूषा।
आश्चर्यं चारुचर्या जननयनमनोमोहिनी मुक्तवर्या,
तं पूर्णानन्दतीर्थं गुरुममृतमृतं ब्रह्ममूर्तं प्रपद्ये ॥

जिनकी आज्ञा धर्मशास्त्र है, सहज पावन वार्त्तालाप निर्दोष ब्रह्मविद्या है सर्वात्मभाव ही ध्यान है, शान्तिरूप अलङ्कारसे अलङ्कृत बुद्धि चराचर हितकारिणी है, जिनकी आश्चर्यमयी चारुचर्या जननयनमनोमोहिनी एवं मुक्त पुरुषोंके लिए भी वरणीय है उन अमृत, ऋत गुरुदेव श्रीपूर्णानन्द-तीर्थकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। वे ही मूर्त्त ब्रह्म हैं ॥१२॥

: १३ :

आनन्दब्रह्मविद्यामधिजिगमिषवस्तैत्तिरीया गभीरं,
मीमांसन्ते स्म विश्वं तदुदयविलयं निर्भयास्तत्स्वरूपम्।
कल्याणी काण्ववाणी विमृशति मधुरं वीणयन्ती च तत्त्वं,
तत्पूर्णानन्दतीर्थे मधुनि वयममी निर्द्वयं लीलयामः ॥

आनन्दब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी गम्भीर मीमांसा करते हैं कि विश्वका उदय-विलय आनन्द-ब्रह्मसे ही होता है, आनन्द-ब्रह्ममें ही होता है। वे निर्भय होकर विश्वको ब्रह्म-स्वरूप कहते हैं। काण्व शाखाकी

कल्याणी वाणी 'मधु-मधु' कहकर तत्त्वका मधुर रूपमें सङ्गीत गाती है। अतएव मधुमय पूर्णानन्दरूप तीर्थमें निर्द्वंद्व होकर हम क्रीड़ा कर रहे हैं ।।१३।।

: १४ :

धर्मः कर्मविशेष एष विहितः शास्त्रैर्मनः शुद्धये,
शुद्ध्या सिद्धपदार्थबोधनविधा निर्बाधमाधीयते ।
तत्त्वं त्वं तदिति प्रमा श्रुतिरमा भेदभ्रमापोहिनी,
पूर्णानन्दपदप्रसादपरमा सद्यः क्षमा मुक्तये ।।

कर्म-विशेषका ही नाम 'धर्म' है। यह मनःशुद्धिके लिए शास्त्रोंके द्वारा विहित होता है। मनःशुद्धि होनेपर सिद्ध वस्तुके बोधकी प्रक्रिया निर्विघ्न हृदयगम हो जाती है। 'वह तुम हो', 'तुम वह हो'—यह प्रमा श्रुतियोंकी सार-सर्वस्व लक्ष्मी है। यही भेद-भ्रमको दूर करती है। इसीसे पूर्णानन्द-पदका पूर्णत अनुभव होता है। मुक्तिकी तत्काल प्राप्तिके लिए यही समर्थ प्रमाण है ।।१४।।

: १५ :

क्षीराब्धिस्नापिताङ्गप्रथितगिरिशिरोनीलरत्नाद् जन्मा-
ऽऽत्तं त्राणैकान्तशिक्षः क्षपितकलिमलो लब्धसंन्यासदीक्षः।
ब्रह्मात्मैक्यानुभूतिप्रखररविकरोद् धूतमोहान्धकारो,
विश्वात्मा प्रत्यगात्मा विहरतु हृदये पूर्ण आनन्दतीर्थः ।।

गिरिशिरोमणि नीलाचल। स्वयं लक्ष्मीपिता क्षीरसागर

जिनके चरणारविन्दका प्रक्षालन करते रहते हैं। श्रीपूर्णानन्द-तीर्थने वहाँ जन्म लिया। उन्होंने सारी शिक्षा ऐसी प्राप्त की जिससे आर्त्तोंका संरक्षण हो। लोगोंके मनसे कलियुगकी मलिनता धो दी। संन्यासदीक्षा ग्रहण की। ब्रह्मात्मैक्यानुभूतिकी प्रखर रविरश्मियोंसे मोहान्धकारका निवारण कर दिया। वे ही विश्वात्मा हैं। वे ही प्रत्यगात्मा हैं। वे ही अद्वितीय पूर्णानन्दतीर्थ हैं। हमारे हृदयमें चिरकाल तक विहार करें ॥१५॥

: १६ :

आविर्भूतं पुरस्तान्महदहह महो यद्रहो योगिगम्यं,
रम्यं स्वानन्दपूर्णं स्मितललितमुखं स्निग्धमुग्धावलोकम्।
आश्लिष्यद्वक्षसाऽलं विमृशदतिरसान्मूर्ध्नि हस्ताम्बुजाभ्यां,
लोलाशीलान्तरङ्गं मम नयनयुगं नित्यगं सञ्चकास्तु ॥

एकान्त साधना करके योगीजन जिस महान् दिव्य ज्योतिका दर्शन प्राप्त करते हैं, आश्चर्य है वही मेरे नेत्रोंके सामने प्रकट हो गयी हैं; कितना रमणीय, आत्मानन्दसे परिपूर्ण। मुखारविन्द स्मितसुन्दर। अवलोकन स्नेहसे भरपूर एवं मुग्ध है। यह दिव्य ज्योति मुझे अपने वक्षःस्थलसे आलिंगन करना चाहती है। बड़े प्रेमसे करकमलोंसे शिरः स्पर्श कर रही है। इसका हृदय लीलाके भावसे परिपूर्ण है। यह मेरे दोनों नेत्रोंके सामने कालकल्पनासे मुक्त होकर प्रकाशित होती रहे ॥१६॥

: १७ :

पूर्णानन्ददया दृशा रसदया शश्वत्प्रसादोदया,
ब्रह्मज्ञानविनोदया जनमनोमोदाय निःखेदया।
विश्वप्रेमविकासहाससुदया त्रैलोक्यसम्पद्दया,
पूर्णानन्ददया मदीयमनसे कञ्चित्कणां यच्छतु ॥

श्रीपूर्णानन्दतीर्थकी दया अपनी पूर्णानन्ददायिनी दृष्टिसे मेरे मनको एक छोटी-सी कणिकाका दान कर दे। वह दृष्टि रसदायिनी है, निरन्तर प्रेम-प्रसादसे आर्द्र है। ब्रह्मज्ञान-विनोदिनी है, प्रेमी भक्तोंको आनन्द देनेके लिए अश्रान्त जागरूक है। हास्य-प्रमोदके द्वारा विश्व-प्रेमको विकसित करती है। त्रैलोक्य-सम्पदाका दान करती रहती है। हाँ, ऐसी है यह उनकी दृष्टि ॥ १७ ॥

: १८ :

श्रीकृष्णार्जुनसङ्कथामृतनिधेर्धीरं गभीरं तलं,
तत्त्वान्वेषणतत्परैरधिगतं कैःकैर्न सद्धीवरैः।
किन्तु प्रत्नविचाररत्ननिकरानानीय दाने प्रभुः,
पूर्णानन्दमृते न कश्चिदिति तं सर्वात्मना संश्रये ॥

श्रीकृष्ण-अर्जुनका संवाद अमृतका समुद्र है। उसके धीर-गम्भीर तलकी थाह तत्त्वान्वेषण-तत्पर किन-किन सद्धीमान् धीवरोंने नहीं पायी अर्थात् बहुतोंने पायी; क्योंकि उनके हृदयमें तत्त्वानुसन्धानके लिए पूर्ण तत्परता थी, परन्तु

प्राचीन विचार-रत्नोंकी राशि ढूँढ़कर लानेका और लोगोंको देनेका सामर्थ्य जैसा श्रीपूर्णानन्दजीतीर्थमें है वैसा उनके अतिरिक्त अन्य किसीमें नहीं है। अतएव सर्वात्मना मैं उनका आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ १८॥

: १९ :

जीवन्मुक्तिर्विशिष्टा बतविगतवपुर्मुक्तिरिष्टेतिपृष्टः,
सुस्पष्टं योऽन्वगृह्णाद् उभयमपि मृषा सादितासान्तताभ्याम्।
मोहापायोपलक्ष्यः स्वयमयमभयो मुक्तिरात्मैव नान्या,
पूर्णानन्दाय तस्मै प्रणिहितमनसा संदधेऽहं नमांसि ॥

यह पूछनेपर कि जीवन-मुक्ति श्रेष्ठ है अथवा विदेह-मुक्ति? श्रीमहाराजने स्पष्ट अनुग्रह किया कि दोनों ही मिथ्या हैं, क्योंकि दोनों ही आदि-अन्तवाली अनित्य हैं। अज्ञानके विनाशसे उपलक्षित आत्मा ही मुक्ति है और कुछ मुक्ति नहीं है। ऐसा लोकोत्तर उत्तर देनेवाले श्रीपूर्णानन्दतीर्थजी महाराज को एकाग्र मनसे मैं बार-बार नमस्कारकर ध्यान करता हूँ॥ १९॥

: २० :

स्वर्णस्वर्णप्रभाभिः श्रुतिहृदयनभोव्यापिनीभिर्मनोज्ञा,
भावाभावप्रभावोज्झितहितमणिभिर्विस्फुरद्भिः प्रपूर्णा।
श्रीपूर्णानन्दतीर्थागमनिगम रसोल्लास सम्पन्निधानी,
मञ्जूषा काऽपि वाणी मम मनसि मनाङ् मन्दिरे चाकसीतु

सुवर्णके समान चमकते हुए वर्णोंसे श्रुति हृदयरूप आकाशमें झिलमिल-झिलमिल अपनी सुन्दरताको फैला रही है। भावाभावके प्रभावसे मुक्त हितरूप मणियोंसे परिपूर्ण है। श्रीपूर्णानन्दतीर्थके आगम-निगम रूप रसोल्लास सम्पदाका निधान है। यह कल्याणदायिनी निर्वाण-प्रकाशिका वाणी रूप मञ्जूषा मेरे मन-मन्दिरमें जगमग-जगमग प्रकाशती रहे ॥ २० ॥

: २१ :

वैकुण्ठः केन दृष्टः श्रवण पथगतः स्वप्नवद् भाति चित्ते,
तद्वृत्तीनां निरोधः सहजशयनवत् तत्र को वा प्रमोदः।
प्राक्प्रत्यग्भावमुक्तं तदिदमहमिति ब्रह्म पूर्णं नचान्यत्,
पूर्णानन्दोपदेशो दिशि विदिशि सदामङ्गलं देदिशीतु ॥

"वैकुण्ठ किसने देखा है ? वह तो केवल सुना हुआ है और चित्तमें स्वप्नके समान भासता है। योगके द्वारा चित्तवृत्तियोंका निरोध सहज सुषुप्तिके समान ही है। उसमें कौन-सा आनन्द धरा है ? आन्तर और बाह्य भावसे रहित एवं वह, यह तथा मैं-के रूपमें भासमान केवल पूर्ण ब्रह्म ही है, दूसरी कोई वस्तु नहीं है।" श्री पूर्णानन्दतीर्थजीका यह उपदेश प्रत्येक दिशा एवं विदिशामें सदा मङ्गलका विस्तार करे ॥ २१ ॥

: २२ :

अखण्डानन्दसम्बोधपूर्तये ब्रह्ममूर्त्तये।
सुधास्मितसमाश्लिष्टनेत्रान्तस्फूर्तये नमः ॥

वे अखण्डानन्द-बोधकी सम्पूर्ति हैं। ब्रह्मकी मूर्ति हैं। सुधाभरी मुस्कानसे समाश्लिष्ट उनके नयनकोण छलकते रहते हैं। गुरुदेव श्रीपूर्णानन्दतीर्थको नमस्कार है ॥ २२ ॥

इति श्रीमत्स्वामि अखण्डानन्दसरस्वती-विरचित-
गुरुदेवश्रीअखण्डानन्दतीर्थस्तवः
विश्रामः

इति श्रीमत्स्वामि अखण्डानन्द-सरस्वती-विरचित-
गुरुदेवश्रीपूर्णानन्दतीर्थस्तवः
विश्रामः

अनुक्रमणिका

ब्रह्ममूर्ति श्रीउड़िया बाबाजी महाराज
(स्वामी श्रीपूर्णानन्दजी तीर्थ)

* ॐ *

श्रीउड़िया बाबाजी के संस्मरण

द्वितीय खण्ड

★

वेद-दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर

स्वामी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज, अहमदाबाद

आत्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः । (मु० उ० ३।१।१०)

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति । (मु०उ०३।२।९)

पूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ श्रीउड़िया बाबाजी महाराज का मुझसे बहुत बार सम्मिलन हुआ । उनका प्रेम दिनों-दिन मुझपर बढ़ता ही गया । वृन्दावन आनेपर मैं तो विचारही करता रह जाता था कि बाबाजीसे मिलने चलूँ कि वे मेरे आनेकी सूचना पाकर पहले ही अपने मण्डलसहित श्रौतमुनिनिवास में आजाते थे । एक बार मैं स्टेशन पर उतरकर श्रौतमुनि निवासमें न जाकर सीधा बाबा जीके दर्शनार्थ उनके आश्रमपर ही पहुँचा । उन्होंने पूछा, "आप कब आए ?" मैंने उत्तर दिया, "अभी आ रहा हूँ ।" वे बोले "इतनी शीघ्रता क्यों ? श्रौतमुनिनिवासमें नहीं गये ?" मैं बोला "क्या करें, आपके पास पहुँचनेसे पहले ही आप मेरे पास पहुँच जाते हैं । इसलिए डर बना रहता है कि कहीं आपही पहले न

पहुँच जांय।" अधिक क्या कहें? बाबाजी स्वयं अमानी और दूसरे के लिए मानद थे।

एक बार श्रौतमुनिनिवास में भण्डारा था। श्रीबाबाजी को आमन्त्रण देनेमें मुझसे भूलहो गयी। ठीक पंक्ति लगते समय मुझे स्मरण हुआ कि बाबाजी को आमन्त्रित करना भूल गये। अपनी भूलपर पश्चात्ताप करतेहुए मैंने तुरन्त एक व्यक्तिको सेवा में प्रार्थना करनेके लिए भेजा। उस समय आप भोजन कर रहे थे। भोजन छोड़ कर तुरन्त चल दिए और पंक्ति में मेरे साथ सम्मिलित हुए। आप बतलायें ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषके अतिरिक्त और कौन व्यक्ति ऐसा कर सकता है?

बाबाजी सतत ब्रह्मचर्चा में निरत रहते थे। वे स्वयं तो आत्मनिष्ठ थे ही दूसरों के लिए भी आत्मनिष्ठाका द्वार खोलने का प्रयत्न करते रहते हैं। वे अनात्मचर्चा कभी नहीं करते थे। 'आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया। न दद्यादवसरं कञ्चित्कामादीनां मनागपि'* यह सिद्धान्त उनके जीवन में अक्षरशः सत्य था। कई वार जब उनसे मेरा मिलन होता तो वेदान्त के गूढ़ सिद्धान्तोंपर विचार हुआ करताथा। यहां उदाहरणार्थ केवल एक विचार पाठकों के समक्ष रखा जाता है—

एक वार बाबाजी श्रौतमुनिनिवास के ऊपरवाले कमरेमें, जहाँ में ठहरता हूँ, मेरे पास आये। उनके साथ पल्टू स्वामी एवं रामदासजी आदि कई भक्तजन भी थे। बावाने गीता के पन्द्रहवें अध्याय के पुरुषोत्तम तत्त्व सम्बन्धी विषय पर विचार प्रारम्भ किया। बोले, "भैया! क्षर, अक्षर एवं पुरुषोत्तम ये तीनों क्या हैं? आप इसपर कुछ सुनायें।" आज्ञा पाकर मैंने इस विषयका वर्णन

* सोने और मरने पर्यन्त वेदान्तचिन्तनमें ही समय वितावे। कामादि दोषों के लिए कभी थोड़ा भी अवसर न दे।

आरम्भ किया—"महाराज ! 'क्षर' शब्दका अर्थ विनश्वर प्रकृति या कार्य प्रपञ्च है, 'अक्षर' शब्दका अर्थ सापेक्ष अविनाशी जगत् का मूल कारण प्रधान तत्त्व है तथा प्रकृति एवं प्रकृति के कार्य प्रपञ्चकी कल्पनाका अधिष्ठान अखण्ड सच्चिदानन्द पूर्ण परब्रह्म 'पुरुषोत्तम' पद का अर्थ है। किसी-किसी आचार्य ने 'अक्षर' शब्दका अर्थ जीवात्मा भी माना है। मायाके कपटमय भोग्यरूप प्रपञ्च में वह भोक्तारूप से वर्तमान रहता है। अतः वह कूटस्थ कहा जाता है।" बाबाजी व्याख्या को सुनकर प्रसन्न हुए। उनके साथ शास्त्रीय विषयोंपर जो विचार होते रहे हैं यदिवे लिपिबद्ध किये जाँय तो इस संस्मरण का कलेवर बहुत अधिक बढ़ जायगा

बाबाजी जिस वर्ष ब्रह्मलीन हुए थे उसीवर्ष होलीके अवसर पर मेरी उनसे भेंट हुई थी। मैंने उनसे उत्सवादिसे अलग रहने की अनुमति माँगते हुए कहा, "महाराज ! ये महोत्सवादि मनाने में बहुत विक्षेप होता है। भूलसे कार्यकर्ताओं द्वारा कई व्यक्तियों का अपमान होजाता है तथा जनसंसर्गके कारण एकान्त भाव से ब्रह्मचिन्तन में भी बाधा होती है।" उत्तरमें महाराज ने एकही बात कही, "भैया ! इन प्रवृत्तिप्रधान कार्यों को छोड़ना तो एक ओर रहा, संहार ही कर डालूँगा।" इस वाक्यके गूढ़ तत्त्व की ओर मेरी दृष्टि नहीं गयी कि आप इसवर्ष लीला-संवरण करना चाहते हैं। उनका संकेत इस ओर ही था।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र न्यस्तदण्ड

पूज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती, वृन्दावन

(१)

स्वयंप्रकाश सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूप ब्रह्मही सम्पूर्ण नाम रूपात्मक प्रपञ्चके रूपमें प्रतिभात होरहा है। वह स्वयंही विषय और विषयीके द्विविध रूपमें विवर्तमान होकर भी अपने अद्वितीय निर्विकार स्वरूपमेंही प्रतिष्ठित है। इस अनिर्वचनीय विश्व में जो लौकिक, पारलौकिक अथवा अलौकिक दिव्य चमत्कार चमक रहे हैं इनसे उसकी एकरस अनुभवस्वरूप अद्वितीयता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। विश्वके एक-एक कणमें विराजमान अगणित वैचित्र्य एवं परस्पर विलक्षणताएँ उनके निर्निमित्त भेद रहित अभयादि स्वातन्त्र्यक ही उद्घोष करती हैं। निखिल वेद्य पदार्थ अपने परमस्वरूपकी एकता, अधिष्ठानता एवं चिन्मात्रता से ही उद्भासित हैं। वह परमस्वरूप भी प्रत्यक् चैतन्यसे भिन्न होनेपर तो अनुभाव्य, जड़ एवं विकारी सिद्ध होगा। तथा उस अविनाशी सत्से भिन्न होनेपर यह प्रत्यक् चैतन्यभी क्षणिक एवं विनश्वर हो जायगा। अतः परमार्थ सत्ता एवं प्रत्यक् चैतन्यका भेद अनुभव-विरुद्ध है। इस भेदरहित उपलब्धिका एकमात्र द्वार है वह महापुरुष जो ऐक्यबोध की प्रचण्ड ज्वालामें अविद्या और उसके विलासको भस्मसात् कर चुका है।

कहना न होगा कि हमारे महाराज ऐसे ही जीवन्मुक्त महापुरुष थे। प्रत्यक्ष दर्शन के पूर्व भी सत्सङ्गियों द्वारा उनकी महिमा सुनकर तथा 'कल्याण'में उनके उपदेश पढ़कर मेरे हृदयमें उनके प्रति एक महान् आकर्षण था परन्तु उनके दर्शनका सौभाग्य तो तब प्राप्त हुआ जब वे स्वयं कृपाकरके प्रयागराज पधारे। उन दिनों मैं कथाके अतिरिक्त और कुछ नहीं बोलता था। कथामेंही उस चलते-फिरते ब्रह्मका दर्शन करनेके अनन्तर सायंकालीन सत्सङ्गमें मैंने उनसे प्रश्न किया—'पुनर्जन्म किस वस्तुका होताहै?'

मैंने अपने मनमें यह सोचा था कि वे वेदान्तियों और वेदान्तग्रन्थोंमें प्रसिद्ध यह उत्तर देंगे कि सत्रह तत्त्वोंवाले लिङ्ग शरीरकाही पुनर्जन्म होता है। साथही कहेंगे कि मनुष्य इस जन्म में जो सुख-दुःखरूप फल भोग रहा है इससे पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंकी सिद्धि होती है तथा इस जन्ममें किये जाने वाले कर्मोंके फल अभी देखनेमें नहीं आते, इसलिए आगामी जन्मकी सिद्धि होती है। ऐसा न मानने पर अकृताभ्यागम[1]और कृतविप्रणाश[2] दो दोषोंकी प्राप्ति होगी तथा ईश्वरमें पक्षपात और निर्दयता के दोषोंका प्रसङ्ग उपस्थित होगा। अतः पुनर्जन्म अवश्य स्वीकार करना चाहिये। इसके पश्चात् पूछनेके लिये मनही मन यह सोच रखा था कि लिङ्ग शरीरका ही जन्म होता है तो हुआ करे, मैं तो द्रष्टा हूँ, उससे मेरा क्या सम्बंध ? मैं (आत्मा) तो द्रष्टा हूँ, इसलिए मेरे लिएतो पुनर्जन्मके निवारण का प्रयत्न करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है।

परन्तु यह सब तो मेरा मनोराज्य था। उनका उत्तर था अश्रुतपूर्व ! उन्होंने कहा, "विचार पुनर्जन्म के निषेधके लिए

---

१. विना किये कर्मके फलकी प्राप्ति।

२. किये हुये कर्म के फलका नाश।

किया जाता है, सिद्धि के लिए नहीं।" इतना कहकर वे हँसने लगे। मैं इस अतर्कित उत्तर पर आश्चर्यचकित रह गया। बात कितनी सीधी-सादी किन्तु मर्मस्पर्शी है। अविद्या से सिद्ध वस्तु की उपपत्ति के लिए विचार को क्या आवश्यकता है ? उसकी तो निवृत्तिका ही प्रयत्न करना चाहिये।

(२)

उन्हीं दिनोंकी बात है,झूसीके सुप्रसिद्ध संत ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीके यहाँ एकवर्षीय नामयज्ञकी पूर्णाहुतिका समारोह था। मैं भी साधक रूपमें इस यज्ञका एक होता था। महाराजश्री के तत्त्वाधानमें इस महोत्सवका आयोजन हुआ था। अन्तमें प्रयाग पंचक्रोशी क़ी परिक्रमा हुई। बाबाके एक निजजन थे ब्रह्मचारी श्रीकृष्णानन्दजी। निजजन क्या,भक्तोंकी भावनाके अनुसार तो वे बाबाके पुत्रही थे। बाबामें भक्तोंका शंकरभाव था और ब्रह्मचारी जीको वे साक्षात् गणेशही मानते थे। आकृति-प्रकृतिसे भी वे गणेशजीही जान पड़ते थे। अधिकतर इसी नामसे उनकी प्रसिद्धि भी थी। एक दिन उनसे कुछ परमार्थ चर्चा होने लगी। गणेशजी ने पूछा, 'भगवान् कृष्णके उपासक विविध रूपोंमें उनकी उपासना करते हैं। कोई बालरूपमें, कोई किशोर रूपमें, कोई गोपीवल्लभ रूपमें और कोई पार्थसारथि के रूपमें। इन सबको क्या एक ही कृष्णके दर्शन होते हैं ?'

मैं–एक ही कृष्णके दर्शन क्यों होंगे ? भक्तके भावभेद के अनुसार श्रीकृष्ण भी अनेक होंगे।

गणेशजी–ऐसा कैसे हो सकता है ? इस प्रकार तो अनेक ईश्वर सिद्ध होंगे।

मैं–ईश्वर तो एकही है। परन्तु भगवान्‌का साकार विग्रह तो भक्तकी भावनाके अधीन है। वे भक्तके भगवान् हैं। इसी से

तो भावुक भक्त वृन्दाबनबिहारी, मथुरानाथ और द्वारकाधीशको अलग-अलग मानते हैं।

इसप्रकार कुछ देर हम दोनोंका परस्पर विचार-विनिमय होता रहा। गणेशजीका कथन था कि एक ही कृष्ण भक्तों की भावनाके अनुसार विभिन्न रूपोंमें दर्शन देते हैं और मैं कहता था कि परमार्थतत्त्वमें ईश्वरता तो आरोपित ही है और ईश्वरका व्यक्तित्व तो भक्तकी भावनाके अधीन है। अतः भक्तोंके भाव-भेदके अनुसार वे सब अलग-अलग हैं। फिर यही प्रश्न हमने श्रीमहाराजजीसे किया। उन्होंने कहा, 'अरे! प्रत्येक भक्तके कृष्ण अलग-अलग हैं—यही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक भक्तभी जब-जब दर्शन करता है उसे नवीन कृष्णकाही सक्षात्कार होता है, क्योंकि दृष्टि ही सृष्टि है। प्रत्येक दृश्य हमारी वृत्तिका ही तो विलास है। भगवद्दर्शनभी क्या बिना ही वृत्तिके होता है। अतः भक्त जब जब भगवदाकार वृत्ति करता है उसे नवीन भगवन्मूर्त्तिका ही दर्शन होता है। भगवान् तो एक भी हैं और अनेक भी। स्व-रूपतः वे एक हैं और भक्तोंके लिए अनेक।''

(३)

हमारे महाराजश्री तत्त्वनिष्ठ नहीं, स्वयं तत्वही थे। उनकी वाणी तत्त्वज्ञकी नहीं, स्वयं तत्त्वकीही वाणी होती थी। वे उसीकी भाषामें बोलतेथे। इन्हीं दिनोंकी बातहै। 'कल्याण'का वेदान्ताङ्क प्रकाशित होनेवाला था। उसके लिए आपके उपदेशोंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे कल्याण परिवारके कुछ सदस्य आये हुए थे। उनके तथा अन्यान्य जिज्ञासुओंके साथ आपका वेदान्त विषयक सत्सङ्ग चलता था। उसमें मैं भी सम्मिलित होता था। एकदिन मैंने पूछा, 'महाराजजी ! आत्मा तो अपना स्वरूपही है। अतः वह अपने से कभी परोक्ष हो ही नहीं सकता। फिर आत्मा का परोक्ष ज्ञान कैसे ?''

मैं तो समझता था कि आप कहेंगे, 'ज्ञान सर्वदा अपरोक्ष ही होता है।' परन्तु आपने बड़ा ही चमत्कारपूर्ण उत्तर दिया। बोले, "ज्ञान अपरोक्ष भी नहीं है रे! जो स्वयं है उसका क्या परोक्ष और क्या अपरोक्ष। केवल जिज्ञासुओंका भ्रम मिटाने के लिए ही परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञानकी कल्पना की जाती है।" मैं सुनकर चकित रहगया। मैंने इसप्रकारका खुला उत्तर पहले कभी नहीं सुना था। यद्यपि उस समय मुझे दृढ़ निश्चय था कि मैं तत्त्वज्ञानी हूँ। इसीप्रकार एकबार जब मैंने पूछा, "महाराजजी! जीवन्मुक्ति श्रेष्ठ है या विदेहमुक्ति?" तोआप बोले, 'भैया!इनका संकल्प ही अमंगल है।" ऐसी थी आपकी तत्वदृष्टि।

(४)

मैं पूर्वाश्रममें और संन्यास लेनेके पश्चात् भी अनेकों वर्ष श्रीमहाराजजी की सन्निधिमें रहा हूँ। वे मुझे नित्य नयेही जान पड़ते थे। उनका अनुग्रह क्षण-क्षणमें प्रकट होता रहताथा। वर्षों बीत जाने पर भी उनकी गूढ़ोक्तियों को सुनकर आश्चर्य होता था। हम ज्यों-ज्यों उनके निकट सम्पर्कमें आते थे त्यों-त्यों उनका स्वरूप और भी आश्चर्यमय प्रतीत होता था। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मतत्त्वके विषय में जो आश्चर्यरूपता की बात कही है वह उनके तो व्यक्तित्वके विषयनें ही चरितार्थ होती थी—

'आश्चर्यवद् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥'
(२।२९)

कारण कि वे अपने व्यक्तित्वको सर्वदा मिटा चुके थे। अब जो चरम और परम तत्त्व निषेधावधिरूपसे अवशिष्ट था वही भक्तोंकी भावनासे व्यक्तित्वके रूपमें भासता था। स्वयं अपनी दृष्टिमें तो वे सर्वातीत अथवा सर्व स्वरूप ही थे।

किसी जिज्ञासु ने पूछा, "भगवन् ! आप ब्रह्म हैं ?"

श्रीमहाराजजी—क्या तू ब्रह्म को आँखों से देख कर पूछ रहा है ?

जिज्ञासु—तब क्या आप ज्ञानी हैं ?

श्रीमहाराजजी—ज्ञान होने पर भी क्या ज्ञान का अभिमानी कोई धर्मी रहता है ?

जिज्ञासु—तब क्या आप अज्ञानी हैं ?

श्रीमहाराजजी—बावले हो। क्या अज्ञान कभी दृष्टि में आया है ?

जिज्ञासु—तब आप कौन हैं ?

श्रीमहाराजजी—तुम जितना देख रहे हो उसी के विषय में पूछो। तुम मुझे काम करता देखते हो। बस, मैं चराचर का सेवक हूँ।

हम लोगों को ऐसे उत्तर का अनुमान नहीं था। जिज्ञासु का मन श्रद्धा से झुक गया। उसने मन ही मन कहा, चराचर के सेवक तो भगवान् ही हैं, अथवा वे सन्त हैं जो उनसे एक हो चुके हैं।

(५)

श्रीमुनिलालजी आदि कुछ भक्त आपकी जीवनी लिखना चाहते थे। परन्तु आपके अलौकिक चरित्र का चित्रण कैसे किया जाय—यह उनकी समझ में नहीं आता था। एक दिन किसी ने आपसे पूछा, "प्रभो ! सन्तों की जीवनी कैसी लिखनी चाहिये ?" आप बोले, "सन्तों की जीवनी कागज पर नहीं, दिलपर लिखनी चाहिये।" सचमुच सन्तों की जीवनी कागज पर लिखने की वस्तु है ही नहीं। सन्त का जीवन तो सत्तत्त्व का जीवन है। वह अमर और एकरस है। उसका आविर्भाव हृदयमें ही होता है। जो सत

के जीवन की एक हल्की-सी झाँकी पा लेता है वह स्वयं सन्त हो जाता है।

(६)

महाराजश्री के सामने मैंने उनके आश्रम में बहुत दिन तक श्रीमद्भागवत आदि सद्ग्रन्थों की कथा कही है। एक दिन किसी प्रसङ्गवश मैंने कहा, "जीव अपने को भगवान् का भोग्य समझने लगे—इसी का नाम भक्ति है। भक्त की दृष्टि अपने सुख पर कभी नहीं होती, वह तो सर्वदा अपने प्रियतम को ही सुख प्रदान करना चाहता है।" कथा समाप्त होने पर सायंकाल में जब मैं आश्रम की छतपर आपके सत्सङ्गमें गया तो इसी प्रसंग को लेकर चर्चा चली। आप बोले, "भैया ! जीव का परम प्रेमास्पद तो अपना आत्मा ही है। वह भ्रम से भलेही किसी अन्यको अपना प्रियतम माने। जीव चेतन है, अतः वह कभी किसी का भोग्य या दृश्य नहीं हो सकता। वस्तुतः वही सबका भोक्ता या द्रष्टा है। जो जीव विषय का भोक्ता होता है उसे 'संसारी' कहते हैं और जो भगवान् का भोक्ता होता है वह 'भक्त' कहलाता है। इसी प्रकार समाधि का भोक्ता'योगी' कहा जाता है और जो भोक्ता एवं भोग्य का बाध कर देता है वह 'ज्ञानी' है। 'मैं भगवान् का भोग्य हूँ' इस भावना में जो दिव्य एवं अलौकिक रस है भक्त उसका भोक्ता ही है। 'मैं भोग्य हूँ' यह भावना तो उसकी भोग्य ही है। अतः 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' (बृ०उ० २।४।५) यह श्रुति समानरूप से सभी जीवों के स्वभाव का निर्देश करती है।"

(७)

श्रीमहाराज जी जिन लोगों के साथ वेदान्तचर्चा करते थे उनसे ब्रह्माभ्यास की बात प्रायः कहा करते थे। उनका कथन था कि तत्त्वज्ञान हो जाने पर भी निरन्तर ब्रह्माभ्यास में तत्पर रहना

चाहिये। परन्तु मेरी बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती थी। भला, जो कर्ता, कार्य, करण सभी से अतीत सर्वाधिष्ठानभूत स्वयंप्रकाश प्रत्यक्चैतन्य में परिनिष्ठित है उस तत्त्ववेत्ता के लिये किसी भी प्रकार के साध्य-साधन की बात कैसे कही जा सकती है ? जिसमें कर्तृत्व ही नहीं उसके लिये किस कर्त्तव्य का विधान किया जा सकता है ? अतः एक दिन मैंने एकान्त में पूछा, "महाराजजी ! तत्त्वज्ञ के लिये तो शास्त्र किसी भी कर्त्तव्य का विधान नहीं करता। फिर आप ब्रह्माभ्यास का प्रतिपादन किस दृष्टि से करते हैं ?" आप बोले, "भैया ! ये लोग कुछ जानते तो हैं नहीं। अभ्यास भी छोड़ देंगे तो साधनहीन हो जायेंगे। मैं इसीलिये ब्रह्माभ्यास पर जोर देता हूँ जिससे साधन में लगे रहने से इनकी निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर प्रगति होती रहे।" मैंने पूछा, "ब्रह्माभ्यास का स्वरूप क्या है ?" आप बोले, "ब्रह्म क्या अभ्यास की वस्तु है ? अरे ! सब प्रकार के अभ्यासों का निषेध ही ब्रह्माभ्यास है। मैं किसी भावनात्मक अभ्यास की बात थोड़े ही कहता हूँ।"

(८)

एक बार मैंने पूछा, महाराज जी ! ध्यान किसका करना चाहिये ?"

आप बोले, "अपना।"

मैं—'अपना' से क्या आशय ? क्या अपने आत्मा का ?

आप—आत्मा क्या किसी का ध्येय हो सकता है ? मेरा आशय है—अपने शरीर का।

मैं—शरीर का ध्यान करने से क्या लाभ होगा ? ध्याता जिसका ध्यान करता है अन्त में उससे उसका तादात्म्य हो जाता है। अतः शरीर का ध्यान करनेसे तो शरीरसे ही तादात्म्य होगा।

आप—तादात्म्य तो तब होता है जब ध्येय में उपादेय-बुद्धि होती है। मैं उपादेयबुद्धि रख कर शरीर का ध्यान करने की बात नहीं कहता। यदि उपादेयबुद्धि न रख कर शरीर का ध्यान किया जायगा तो वह इसी प्रकार अपने से पृथक् भासेगा जैसे घटद्रष्टा से घट। इस प्रकार अपने से शरीर का पार्थक्य अनुभव होने से तो असङ्गता ही बढ़ेगी।

(६)

श्रीभोलेबाबाजी एक सुप्रसिद्ध वेदान्तनिष्ठ सन्त थे। जब उनका देहावसान हुआ तो मैंने श्रीमहाराज जी से पूछा, "क्या श्रीभोलेबाबाजी की मुक्ति हो गयी होगी ?" आप बोले, "मुक्ति क्या मरने से होती है ? जो मुक्त है वह तो सर्वदा ही मुक्त है। जीना-मरना तो स्वप्न के समान केवल प्रतीतिमात्र हैं।"

(१०)

मैंने गुरुतत्त्व के सम्बन्ध में शास्त्रों में बहुत कुछ पढ़ा-लिखा था और सोचा-समझा भी था। परन्तु इस सम्बन्धमें महाराजश्री ने जो बात बतायी वह उसके पहले मेरी बुद्धि में उतनी स्पष्ट नहीं थी। उन्होंने कहा कि अधिकारी को भगवत्प्राप्ति अथवा परमार्थतत्त्व का साक्षात्कार कराने के लिये स्वयं पूर्णता ही आकारविशेष के रूप में साधक के हृदय में आविर्भूत होती है, बाहर का आकार तो केवल निमित्त मात्र ही होता है। सम्बन्ध सर्वथा मानसिक वस्तु है और वह मानसमूर्त्ति के साथ होता है इसलिये बाहर गुरुमूर्त्ति के मरने, बिछुड़ने या संसारी लोगों की दृष्टिसे पतित हो जानेसे भी उन बातों का सम्बन्ध अपनी मानसी मूर्त्ति के साथ किञ्चित् नहीं होता। अपनी वासना के अनुसार जितनी भी स्वप्नवत् सृष्टियाँ बनेंगी, जन्म-जन्मान्तर होंगे अन्तर-तल के गम्भीर प्रदेश में विराजमान वह गुरुदेव भी बार-बार

अपने शिष्य के साथ जन्म लेते रहेंगे। साधक के हृदय में विराजमान जो गुरुमूर्त्ति है वह तब तक उसी में रहेगी जब तक ग्रन्थिभेद होकर अन्तःकरण बाधित नहीं हो जाता अथवा प्रतिभास नाश होकर विदेह मुक्ति नहीं हो जाती। इसको यों कह सकते हैं कि यदि किसी साधक को एक बार ठीक-ठीक गुरुदेव की प्राप्ति हो गयी तो वे दोनों सर्वदा के लिये परस्पर बँध गये। दोनों साथ ही साथ मुक्त होंगे। शिष्य की मुक्ति हुए बिना उसके हृदय में विराजमान गुरुदेव की भी मुक्ति नहीं हो सकती।

कहना नहीं होगा कि उनके इस उपदेश के पूर्व इस संबंध में मेरी जानकारी इतनी स्पष्ट नहीं थी और तब मुझे उन महात्मा के वचनों के अर्थ का साक्षात्कार हुआ जिन्होंने अपने एक शिष्य से कहा था कि बेटा! जब तक तू मुक्त नहीं होगा, मैं मुक्ति स्वीकार नहीं करूँगा।

(११)

महापुरुष साधक के जीवन में बाह्यरूप से ही पथप्रदर्शन नहीं करते, वे उसकी अन्तश्चेतना में आविर्भूत होकर भी समय-समय पर आवश्यक स्फूर्ति प्रदान करते रहते हैं। इसी से साधकों का जिन सन्तों से आध्यात्मिक सम्बन्ध हो जाता है वे कभी-कभी स्वप्न और ध्यानादि के समय भी प्रकट होकर उन्हें पथ प्रदर्शित करते रहते हैं। श्रीमहाराजजी के भक्तों से ऐसे स्वप्नसम्बन्धी सैकड़ों अनुभव सुने गये हैं।

मेरी यद्यपि स्वप्नों में कोई विशेष आस्था नहीं थी तथापि दो-तीन बार मुझे भी उनके विषय में बड़े विचित्र स्वप्न देखने में आये। एक बार तो मैंने उन्हें श्रीकृष्णके समान कटि-काछिनी और मुकुट आदि धारण किये देखा। दूसरी बार ऐसा हुआ कि मेरे पितामहजीने कुछ भूमि खरीदी थी। उसका जब हम उपयोग

करने लगे तो उसमें प्रेतों ने कुछ बाधा उपस्थित की। उस समय मैंने स्वप्नमें देखा कि श्रीमहाराजजी उसी स्थानपर १ चबूतरेपर बैठे हैं और कह रहे हैं कि तुम इस भूमिको जोत-बो तो सकते हो, परन्तु इसकी पैदावार को अपने काम में मत लाना, उसे धर्मार्थ लगा देना। हमने ऐसा ही किया और फिर कोई उपद्रव नहीं हुआ।

तीसरी बार एक बड़ा ही विलक्षण स्वप्न देखा। मैंने स्वप्न में भी अपने को उसी कुटीमें देखा जिसमें कि मैं सोया हुआ था। वहाँ दो तख्त पड़े देखे। उनमें से १ पर मैं लेटा हुआ हूँ और दूसरे पर श्रीमहाराजजी आकर लेट गये। फिर देखा कि वे दोनों तख्त मिलकर १ होगये हैं और महाराजश्री मेरा आलिंगन किये हुए हैं। उस आलिंगनके द्वारा मैं मानो उनसे अभिन्न हो गया हूँ। उस अवस्था में मुझ वे ही दीखते थे, अपना आप मानो लुप्त हो गया था। इस प्रकार स्वप्न में मुझे उनसे अभिन्नताका अनुभव हुआ। इसके कुछ काल पश्चात् आपका निर्वाण हुआ। निर्वाणोत्सव समाप्त होनेपर मैं अपने कुछ साथियोंके सहित गोवर्धन की परिक्रमाको गया। परिक्रमा के मार्ग में कुछ समय के लिये मैं अकेला रह गया। सब साथी मुझसे बिछुड़ गये। उस समय स्वयं ही मेरे मन में कुछ मनोराज्य होने लगा। मैंने देखा—सामने से श्रीमहाराजजी आ रहे हैं। उन्होंने मुझे आलिंगन किया है और मैं उन से अभिन्न हो गया हूँ। कुछ देर यह स्थिति रही। फिर मैं सचेत हो गया और थोड़ी देर में ही मेरे साथी भी मिल गये।

(१२)

ऐसा था हमारे महाराजश्री का अलौकिक स्वरूप। उनके विचार का उत्कर्ष, चित्त को समाधि, जीवन की प्रेममयता और रहनी की सादगी पास रहकर देखनें योग्य थीं। भक्त लोग उनको सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् मानते थे। बहुतों के तो वे गुरुदेव ही नहीं इष्टदेव भी थे।

एक दिनकी बात है। अभी मैं संन्यासी नहीं हुआ था। रात्रि के समय आश्रमकी छतपर लेटा हुआ था। मेरे पास थे १ संन्यासी मित्र स्वामी निर्मलदासजी। हम दोनों ने निश्चय किया कि कहीं एकान्त में चलकर दोनों साथ-साथ रहें। प्रातः काल चार बजे हम दोनों वेदान्त के सत्संग में श्रीमहाराजजी के पास गये। आप बोले, "शान्तनु* ! तुम दोनों का साथ रहना ठीक नहीं है।"

मैंने मन ही मन सोचा—'क्या महाराजजी ने हमारी बात जानली है? यदि ऐसी बात है तो इस समय ही ये मुझे खाने के लिये कोई चीज दें, तव मैं समझूँगा कि ये मेरे मनकी बात जान गये हैं।' तुरन्तु आपने एक सेवक को पुकार कर कहा, "भैया! शान्तनु को इस समय भूख लगी है। कुछ लाओ तो।" सेवक कुछ सामग्री ले आया और मुझे प्रसाद में बहुत से केले और पेड़े मिले। मैं लज्जा और संकोच से दब गया। क्या प्रातःकाल चार बजे का समय भी भोजनके लिये उपयुक्त होता है? श्रीमहाराजजीके विषय में ऐसी एक नहीं, अनेकों घटनाएँ जीवन में देखी और सुनी हैं।

परन्तु सिद्धियों की बातको न तो वे महत्व देते थे और न मेरी दृष्टि में ही उनका विशेष महत्त्व है। वे तो अधिकतर ऐसी बातों को स्वीकार भी नहीं करते थे। हमारी दृष्टि तो उनका सब से बड़ा चमत्कार यह था कि वे सभी से प्रेम करते थे, सभी को अपना मानते थे और हममें से प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि उनकी सबसे अधिक कृपा उसी पर है। यद्यपि उनके समीपवर्ती लोगों के रुचि, स्वभाव, साधन एव विचारोंमें बहुत अधिक भेद था, तथापि वे सभीको अपने जान पड़ते थे। वे भक्त के लिये भक्त, ज्ञानी के लिए ज्ञानी, कर्मी के लिए कर्मी और योगीके लिये योगी

---

* लेखक महोदय का पूर्वाश्रम का नाम 'पं० शान्तनु बिहारी द्विवेदी' था।

थे। श्रीरामभक्त उन्हें रामरूप में देखते थे,श्रीकृष्णभक्त कृष्णरूप में और शैवों को उन्होंने शिवरूप में दर्शन दिये थे। सौ-दो सौ मील रहनेवाले भक्तों ने भी समय-समय पर ऐसा अनुभव किया कि श्रीमहाराजजीने प्रकट होकर उनके यहाँ भोग लगाया। भक्तों पर कोई आपत्ति-विपत्ति आ पड़ती तो वे उनके एकमात्र सहायक होते थे। मैं एक बार कर्णवासमें बीमार पड़ गया था। उस समय महाराज रातभर नहीं सोये,मेरे ही आस-पास चक्कर काटते रहे।

निरभिमानता की तो वे मूर्त्ति ही थे। "सबहिं मानप्रद आपु अमानो।" आप सर्वदा पैदल ही यात्रा करते थे। रास्ते में जब कोई आगे चलता दिखाई देता और कोई भक्त उससे रास्ता छोड़नेके लिए कहनेको आगे बढ़ता तो आप उसे डाँट देते अथवा उसके कहने से पहले ही रास्ता काटकर आगे निकल जाते। इस बात का आप बहुत ध्यान रखते थे किसी को तनिक भी कष्ट न पहुँचने पावे। यदि आश्रम में कहीं गन्दगी दीख जाती या बर्तन जूठे पड़े होते हो तो किसी से कुछ भी न कहकर स्वयं ही झाड़ू लगाने या बर्तन माँजने के लिए दौड़ पड़ते। उनकी सभी के प्रति समदृष्टि थी। किसी को भूखा वे देख नहीं सकते थे। कई बार समागत व्यक्ति को भोजन कराकर वे स्वयं भूखे रह जाते। अच्छा भोजन उनसे किया ही नहीं जाता था। खीर, पूड़ी, दूध, मिठाई और फल आदि में उनकी स्वाभाविक ही अरुचि थी। स्वयं तो सबको भोजन करा देनेके पश्चात् ही खाते थे। दूरवाले तो समझते थे कि ये गुरु हैं, पुजते हैं, धनी हैं, मौज से रहते हैं, परन्तु निकट वाले जानते थे कि वे एक-एक की पूजा में ही लगे रहते हैं, सबकी पूजा ही करते हैं। पास में एक कौड़ी नहीं रखते थे और कभी किसी से कुछ मांगते नहीं थे। कभी-कभी तो बिना कुछ ओढ़े-बिछाये पृथ्वी पर ही सो जाते थे। सचमुच वैराग्य की तो वे मूर्त्ति ही थे।

साधनकालमें आप कभी लेट कर नहीं सोते थे। पीछे भी कभी आपको दो-तीन घण्टेसे अधिक सोते हुए किसीने नहीं देखा। अपनी निन्दा सुनकर आपको प्रसन्नता होती थी और जो निन्दा करता उसे अपने समीप रखकर सबसे अधिक उसी का आदर-सत्कार करते थे। दूसरोंके साथ सम्बन्ध निभाना आप खूब जानते थे। जिससे जिस प्रकार पहले दिन मिले उसके साथ जीवनभर वैसा ही वर्ताव किया। किसी को बुलाना या हटाना तो आप जानते ही नहीं थे। ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसने आपके जीवन में कभी किसी विकार की छाया भी देखी हो। आपके मुखमंडल पर सर्वदा प्रसन्नता खेलती थी, रोम-रोम उत्साहसे फड़कता था। और आपकी चाल में अद्भुत मस्ती थी। वह ज्ञान, प्रेम और आनन्द की मूर्त्ति अब कहाँ देखने को मिलेगी ?

पूज्य स्वामी श्रीपीताम्बरदेवजी महाराज

पूज्य स्वामीजी अपने प्रेमद्वारा दूसरों को आकर्षित कर लेते थे। मेरा स्वभाव किसीके पास रहनेका नहीं है। इसीसे मैं प्रायः अलग एकान्तमें ही ठहरता हूँ। परन्तु स्वामीजीके प्रेमसे आकर्षित होकर मैं समय-समय पर उनके पास जाया करता था।

एकबार श्रीहरिबाबाजी के बाँध पर होली के अवसर पर विशाल महोत्सव हो रहा था। स्वामीजी भी वहीं थे। वहीं क्या थे ? उनके बिना तो वह उत्सव होता ही नहीं था। मैं भी पहुंच गया। अवसर पाकर बाबा मेरे सम्मुख कहने लगे, "**जिसके स्थान पर रहे उसके अनुकूल होकर रहना चाहिये।**" बात यह थी कि मुझे अपनी स्वतन्त्रताके अनुसार ही रहने का स्वभाव है। बाबा का अभिप्राय यह था कि जब हम हरिबाबाजी के बाँध पर हैं तब हमें उनके बनाये नियमों के अनुसार ही रहना चाहिये। यह बात उन्होंने सभी के हित की दृष्टि से कही थी।

श्रीवृन्दावन में स्वामीजी के आश्रम में नित्य ही रासलीला होती थी। मैं भी प्रायः नित्य ही वहाँ रास देखने के लिये जाता था। एक दिन स्वामीजी ने मुझसे पूछा, "आप किस भाव से रास देखते हैं ?" मैंने उत्तर दिया, "विकाररहित परब्रह्म परमात्मा ही माया से युक्त हो श्रीकृष्ण और गोपिकाओं के रूप में लीला कर रहे हैं; मैं उनसे अपने को अभिन्न अनुभव करके रास देखता हूँ।" यह उत्तर सुनकर स्वामीजी चुप हो रहे।

एक बार मैं स्वामीजी के पास रामघाट गया। उन दिनों उनके लिये भिक्षा यद्यपि श्रद्धालुओं द्वारा अपने-आप कुटिया पर ही आ जाती थी, तथापि संन्यासी को भिक्षा करनी चाहिये इस नियमको लक्ष्य करके वे हर सातवें दिन स्वयं भी भिक्षा करने के लिये गाँव में जाते थे। एक दिन जब वे भिक्षा करने चले तो मैं भी उनके साथ चलने लगा। परन्तु उन्होंने मुझे रोक दिया और स्वयं चले गये। उनके चले जानेके पश्चात् मेरे मनमें आया कि जब स्वामीजी भिक्षा करने गये हैं तो मैं ही क्यों रुकूँ ? यह सोचकर मैं भी चल पड़ा। परन्तु वे भिक्षा लेकर लौटते हुए रास्ते में ही मिल गये और मुझे हाथ पकड़कर लौटा लाये। मेरे लिये वहीं भिक्षा आ गयी। उनका ऐसा प्रेममय व्यवहार हृदय को आकर्षित कर लेता था।

एकवार मैं श्रीस्वामीजी के पास कर्णवास गया। सत्सङ्ग हो रहा था। सत्सङ्ग समाप्त होने पर वे सभी भक्तों को अपने हाथ से रोटी वाँटने लगे। थोडी देर वाद ही जब मैं वहाँ से उठ कर चलने लगा तो वे मेरे मन के समाधान के निमित्त बोले, "क्या करें ? यदि हम न वाँटें तो दूसरे लोग ठीक नहीं बाँटते, गड़वड़ कर देते हैं।" मैंने समझा कि कदाचित् मेरे उठकर चल देने से स्वामीजी ने मन में समझा है कि मैं यह सोचकर जा रहा हूँ कि संन्यासी को रोटी नहीं वाँटनी चाहिये। तब मैंने स्पष्ट कर दिया कि मेरे मन में ऐसी कोई शङ्का नहीं है कि संन्यासी होकर आप को रोटी नहीं वाँटनी चाहिये। आप तो सिद्ध पुरुष हैं। जो करते हैं वह ठीक ही है।

स्वामीजी की सिद्धियाँ मुख्य रूपसे नहीं थीं। गौणरूप से थीं। महापुरुष सिद्धियोंका मान नहीं करते। प्रत्युत परमार्थप्राप्ति में तो सिद्धियाँ विघ्नरूप ही हैं। उनमें सबसे वड़ी सिद्धि यही थी कि वे तत्त्ववित् थे, ब्रह्मवेत्ता थे।

दण्डिस्वामी श्रीनारायणाश्रमजी, कर्णवास

पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज निरन्तर अपने स्वरूप में स्थित रहते थे। उनको किसी भी वस्तु की स्पृहा नहीं थी। जैसे पत्थर की शिला के ऊपर कितना ही जल बहने लगे, अथवा विलकुल भी न रहे, वह ज्यों की त्यों रहती है, उसी प्रकार कितनी भी विभूति आ जायँ उन्हें स्पर्श नहीं कर सकती थी। वे उसमें आसक्त नहीं हो सकते थे। वे जैसे पहले थे वैसे ही विभूतियोंके आने पर भी रहे। कभी स्वरूपसे चलायमान नहीं हुए। अव भी वे वैसे ही हैं। हम उनके सम्बन्ध में क्या लिख सकते हैं। उनकी महिमा अनन्त है।

स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज, बम्बईवाले

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक सर्वेश्वर श्रीहरि की कृपा से सज्जन और दुर्जन सभी मिलते हैं। मैं मन्द वैराग्य होनेके कारण बम्बई से भाग कर अनूपशहर श्रीगङ्गाजी के तट पर श्री भोले बाबाजी के पास आया। चार-छः दिन रहने के बाद सुना कि रामघाट में श्री उड़ियाबाबाजी और बाँध पर श्रीहरिबाबाजी अच्छे सन्त हैं। तब मैंने रामघाट जाकर श्री उड़िया बाबाजी महाराज के दर्शन किये। उनके दर्शन से मुझे अपार सुख हुआ और यह भावना हुई कि ये श्रीरामकृष्ण परमहंस हैं। तब से बाबा को मैं निरन्तर गुरु और ईश्वर रूप से ही देखता रहा हूँ तथा उनके सामने अपने को स्वामी विवेकानन्द की श्रेणी में मानता हूँ। बाबा की कृपा से मुझे बड़ी-बड़ी बातें समझने को मिलीं। मुझे दीन हीन गरीब ब्राह्मण समझकर आप मुझ पर सदेव दया कृपा रखते थे। आपकी कृपा से मुझे बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

एक वर्ष आप कर्णवास में चातुर्मास्य कर रहे थे। मैं आपसे आज्ञा लेकर श्री वृन्दावन दर्शन करने के लिये पैदल गया। वहाँ मुझे अनुभव तो बड़े अच्छे हुए परन्तु अन्नका और ठहरनेका कोई ठिकाना नहीं था। एक महीना ठहरकर मैं कर्णवास लौट आया। बाबाने मुझसे पूछा कि वृन्दावनमें क्या देखा ? मैंने उत्तर दिया, 'प्रभो ! भगवान्‌के धाम में बड़ा ही सुख हुआ, परन्तु रहने और

खाने का कोई ठिकाना न लगा। इससे बहुत कष्ट हुआ।" इसके दूसरे वर्ष ही श्रीकृष्णाश्रम बना जो 'श्रीउड़ियाबाबा का आश्रम' नाम से भी विख्यात है और जहाँ आज भी श्रीरासलीला, कथा, कीर्त्तन और सत्सङ्ग का सदावर्त्त लगा रहता है।

मैं प्रायः बीस वर्ष बाबा की छत्रच्छाया में रहा हूँ और आज भी उन्हीं की छत्रच्छाया में हूँ। उनकी वाणी में बड़ा ही मिठास था। उनके उपदेश से सहस्रों नर-नारी कल्याणपथ पर अग्रसर हुए और हो रहे हैं। आप जैसा अधिकारी देखते थे उसे वैसा ही उपदेश करते थे। मेरे जैसोंके सामने प्रायः कहा करते थे कि जो साधु भिक्षा माँगने में शर्माता है वह आधा साधु है और ऐसा भी कहा करते थे—

"तब लग जोगी जगद्गुरु, जग सों रहत निरास।
जब आशा मन में लगी, जग गुरु जोगी दास॥"

आपके सहस्रों उपदेश 'कल्याण' आदि मासिक पत्रोंमे छपे थे, जो अब 'श्रीउड़िया बाबा के उपदेश' नाम से श्रीकृष्णाश्रम द्वारा पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए हैं।

बाबा को किसी भी सम्प्रदाय विशेष का आग्रह नहीं था। वे सभी सम्प्रदाय के महापुरुषों का आदर करते थे। एक वार सत्सङ्ग में जब श्रीहरिबाबाजी भी विद्यमान थे मैंने आर्यसमाज संस्थापक स्वामी दयानन्दजी पर कुछ कटाक्ष कर दिया। इस पर बाबा और हरिबाबाजी दोनों ही मुझ पर बहुत अप्रसन्न हुए और बोले, "तुमने स्वामी दयानन्द को क्या समझ रखा है? मैं तो चुप रह गया।

एकबार बम्बई में एक वृद्ध मारवाड़ी सेठ ने मुझसे पूछा, "आप उड़ियाबाबाजी के पास बहुत रहते हैं, सो उड़ियाबाबाजी महाराज क्या बताता है?" मैंने कहा, "वैराग्य।" तब सेठजी

बोले, "दस-बीस माला तो मैं जप सकता हूँ, पर वैराग्य कठिन है।" जब मैंने यह बात बाबा को सुनायी तो वे बहुत हँसे।

एक दिन वृन्दावन आश्रम के कथामण्डप में सायंकाल के समय पंखे चल रहे थे। जब अँधेरा हो आया तो किसी ने बिजली का बटन दबाया। परन्तु किसी कारणवश बिजली नहीं जली। तब आप बटन दबानेवाले से बोले, " अरे बेवकूफ ! पहले पङ्खा बन्द कर तब न बिजली जलेगी ?" इस सरलता पर सभी हँसने लगे।

एक समय आप खुरजामें सेठ सूरजमल बाबूलाल के बाग में ठहरे हुए थे। साथ में अनेकों सन्त और भक्त भी थे। मैं भी था। आपको बाल्यकाल से यही मालूम था कि बिना टिकट स्टेशन पर जाते ही आदमी पकड़ लिया जाता है। एक दिन आपके साथ सब लोग कहीं निमन्त्रण में जा रहे थे। पल्टू बाबा ने कहा, "स्टेशन से हो कर सीधा रास्ता है।" तब आप बड़े जोर से बोले, "अरे पल्टू ! तू सबका गिरफ्तार करा देगा।" सेठ सूरजमल भी साथ थे। उन्होंने कहा, "महाराज जी ! स्टेशन में हर समय नहीं पकड़ते। फिर आपको तो कौन पकड़ सकता है।"

अत्यन्त महान् होने पर भी बाबा में ऐसी सरलता थी।

दण्डिस्वामी श्रीतत्त्वबोध तीर्थ 'गार्डस्वामी'

मैं पूर्वाश्रम में सन् १९१५ के लगभग रामघाट की इमली-वाली कुटी में गायत्रीका पुरश्चरण कर रहा था। एक दिन पूर्व की ओर से श्रीमहाराज जी पधारे। मैंने आपसे भिक्षा के लिये प्रार्थना की। आपने स्वीकार कर लिया। मैंने प्रार्थना की कि मेरे साथ ही घर पधारें। आप बोले, "तुम चलो, मैं आ जाऊँगा।" मैंने कहा, "आपने घर तो देखा नहीं है,कहाँ ढूँढ़ते फिरेंगे ? अतः साथ ही चलिये।" फिर बोले, "तुम चलो मैं आ जाऊँगा।"

मैं चल दिया। रास्ते में घूम-घूम कर देखता जाता था कि आ रहे हैं या नहीं। परन्तु आते दिखायी न दिये। घर पहुंचकर मैंने लोटा-धोती रखा और भिक्षा की व्यवस्था कर बाहर देखने गया तो आप दरवाजे पर उपस्थित मिले। उस समय मैं कुछ नहीं समझ सका कि बिना घर देखे वे स्वयं ही कैसे पहुंच गये। परन्तु पीछे अनुभव हुआ कि उनमें ऐसी शक्ति थी। मैंने उन्हें भिक्षा करायी और फिर स्वयं प्रसाद पाया।

उसके पश्चात् बाबा से मेरा सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मैं उस समय रेलवे में गार्ड था। मुझे स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि कभी संन्यास लेना पड़ेगा। यह एकमात्र श्रीमहाराजजी की अहैतुकी कृपा ही है कि उन्होंने मुझे दण्डि-स्वामी बना दिया। बाबाके पास स्वार्थी और परमार्थी सभी प्रकार के लोग आते थे। वे स्वार्थियों का स्वार्थ सिद्ध करते थे, और परमार्थियों का परमार्थ।

लीला संवरण के बाद भी कई बार स्वप्न में उनके दर्शन हुए हैं। एकबार स्वप्न में ही उन्होंने कहा था कि अपने नियमों का दृढ़ता से पालन करते रहो। उनकी सर्वदा ही बड़ी कृपा रही है। उनकी कृपा से मेरे जीवन में अनेकों लाभ हुए हैं, जिनका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

❀

स्वामी श्रीविश्वबन्धुजी 'सत्यार्थी'
अलहदादपुर (अलीगढ़)

पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी के प्रथम दर्शन मुझे खुरजा में सन् १९२१ ई० में हुए थे। उन दिनों मैं तिलक पाठशाला सीकरा में अध्यापनकार्य करता था। एक प्रेमी सज्जन ने मुझे उनके खुरजा पधारने की सूचना दी और मैं तुरन्त चला आया। उस समय जब तक वे खुरजा में रहे मैं बराबर उनकी सेवा में रहा। एक दिन घूमते-घूमते बाबा सिद्धेश्वर मन्दिर गये। साथ में मैं भी था। वहाँ उन्होंने मुझे सिद्धासन और भ्रुकुटि के मध्य में दृष्टि रखकर ध्यान करने की पद्धति बतायी और कहा कि ढाई घण्टा दृष्टि स्थिर होने पर आसन उठ जाता है तथा सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

सन् १९२१ के बाद मैं प्रायः प्रतिवर्ष उनके चरणों में जाता रहा हूँ। इससे मुझे जो लाभ हुआ है उसका अनुमान तो मैं भी नहीं कर सकता।

एक बार मैं बाबा के दर्शनार्थ कर्णवास गया। वहाँ मैं खुरजा से पैदल ही गया था, इसलिए बहुत थक गया था। पहुँचते ही मालूम हुआ कि बाबा तो अनूपशहर चले गये हैं। मैं उसी समय अनूपशहर को चल दिया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते रात्रि हो

गयी। अतः बाबा के चरणों में प्रणाम किया और एक वृक्ष के नीचे जा पड़ा। उन्हें यह बात असह्य हो उठी। मुझे तलाश कराकर वहीं प्रायः एक सेर दूध भिजवाया। वे हम पर माता-पिता के समान प्यार करते थे।

मैंने कई बार अपने हाथ से बनाकर उन्हें भोजन कराया था। वे मेरे बनाए भोजन को बड़े प्रेम से पा लेते थे। इससे मैं कृतकृत्यता का अनुभव करता था। उनके सत्सङ्ग से मैं इस प्रकार पला जैसे जल से सींचे जाने पर धीरे-धीरे वृक्ष बढ़ता है। अब जब कभी रामघाट-कर्णवास आदि स्थानों में अनुभव किये उस दृश्य का स्मरण करता हूँ तो उस आनन्द के लिये बड़ा ही छटपटाता हूँ, तड़पने लगता हूँ। पर अपने वश की बात तो है नहीं, इसलिए हताश होकर चुप रह जाता हूँ।

बाबा के यहाँ भण्डारे तो प्रायः होते ही रहते थे। एक बार रामघाट में मैंने उनसे कहा, "बाबा ! इन भण्डारों में कुत्तों और बन्दरों को नित्य ही भगाया जाता है, एक दिन इनकी भी दावत होनी चाहिए।" बाबा ने तुरन्त मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कहा कि जिस दिन यहाँ से उठेंगे उस दिन इनकी भी दावत होगी। फिर मैं तो चला आया, परन्तु मैंने सुना था कि वहाँ कुत्तों और बन्दरों की बड़ी अद्भुत दावत हुई थी। उसमें उन्हें पत्तल परोसकर खिलाया गया था। उसमें न जाने कहाँ-कहाँ के कुत्ते और बन्दर आकर सम्मिलित हो गये थे और उनकी बड़ी भारी भीड़ जमा हो गई थी।

बाबा को अपनी निन्दा सुनकर प्रसन्नता होती थी। एक बार मैंने निन्दकों का प्रतीकार किया तो बाबा मुझसे बोले, "बेटा ! बस यही स्थिति है ? अरे ! हमको अपनी स्थिति से चलायमान नहीं होना चाहिये।" मुझे लज्जित होना पड़ा। मैंने स्वयं बाबा

की स्थिति देखी थी। वे आत्मनिष्ठा की मूर्ति थे। उन्हें कोई हिला नहीं सकता था। उनका आत्मज्ञान अलौकिक था। उन्हें गीता का यह श्लोक बहुत प्रिय था—

'नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥*(१४।१९)

एक बार मैंने पूछा कि बाबा ! आत्मरति किसे कहते हैं ? इसका उन्होंने बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। बोले "बेटा ! सब प्रकार की रीतियों के अभाव को ही आत्मरति कहते हैं।" इस उत्तर की यदि व्याख्या की जाय तो इसकी विशेषता का पता लग सकता है। परन्तु विचारशील स्वयं ही इसका अनुभव करें। मैं तो इसे यहीं छोड़ देता हूँ। विशेष लिखने की प्रेरणा नहीं है।

---

*जब पारदर्शी पुरुष सत्व, रज, तम इन तीन गुणों को ही कर्तृत्व का हेतु अनुभव करता है, अर्थात् गुणों के सिवा किसी और को कर्ता नहीं समझता तथा गुणों से परे आत्मतत्व का साक्षात्कार कर लेता है, तब वह मेरी स्वरूपता को अर्थात् भगवान के सादृश्य को प्राप्त कर लेता है।

स्वामी श्रीसनातन देवजी, वृन्दावन

संसर्गका सूत्रपात

(१)

सन् १९२२ ई०की बात है, एक दिन श्रीऋषिजी ने[1] कहा, "एक बहुत अच्छे महात्मा हरसहायमलके बाग में[2] ठहरे हुए हैं। लोग उन्हें 'उड़िया बाबा' कहते हैं।" मैं इस समय से प्रायः एक वर्ष पूर्व स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण कालेज छोड़ चुका था और इस प्रकार विद्यार्थी जीवन से विदाई लेकर काम-काज की खोज में रहता था। इस बाह्य दृष्टिसे ही नहीं, आन्तरिक दृष्टि से भी यह मेरे जीवन का परिवर्तन-काल (Turning Point)था। कालेज के एक वर्ष में ही मेरे जीवन में एक नवीन परिवर्तन हुआ। उससे पहले मैं अपने जोवन में एक प्रसिद्ध साहित्यसेवी और समाज-सुधारक बनना चाहता था। परन्तु भगवत्कृपा से इस वर्ष मुझे भगवान् बुद्ध, श्रीचैतन्य महाप्रभु, स्वामी रामतीर्थ और महात्मा गाँधी—इन चार महापुरुषों को जीवनियाँ और उपदेश पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसका प्रभाव मेरे चित्त

---

१. वर्तमान श्रीविश्वबन्धुजी। उस समय इनका नाम श्रीझम्मन-लालजी था। परन्तु इनकी साधुजनोचित वृत्ति के कारण इनके विद्यार्थी जीवन से ही हम लोग इन्हें 'ऋषिजी' कहते थे।

२. यह बाग खुरजा में है।

पर यह पड़ा कि उसकी अभिरुचि प्रधानतया आध्यात्मिकता की ओर हो गयी और चरित्रनिर्माण में भी जहाँ पहले बाह्य व्यवहार पर अधिक दृष्टि थी वहाँ आन्तरिक शोधन की प्रधानता हो गयी। इस स्वाध्याय और सुधार में सबसे अधिक प्रेरणा मुझे मिली थी श्रीऋषिजी से ही। अतः उनकी बात का स्वभाव से ही मेरे हृदय में बड़ा आदर था। उस समय तक यद्यपि साधु-संन्यासियों के पास जाने का मेरा स्वभाव नहीं था, तथापि ऋषिजी के कहने पर मैं उसी दिन अथवा दूसरे रोज हरसहायमल के बाग में गया।

वहाँ मैंने देखा एक श्यामवर्ण पतले-दुबले मध्यमकाय महात्मा गुदड़ी बिछाये बैठे हैं। उनके पास जो दर्शनार्थी आते हैं वे कुछ मिष्टान्न या फल आदि भी लाते हैं। परन्तु वे स्वयं उनमें से कुछ भी ग्रहण नहीं करते, सब आने-जानेवालों को ही बरता देते हैं। शरीर दुबला-पतला होने पर भी उसमें एक अपूर्व ओज और तेज है। दर्शकों का आपके प्रति अद्भुत आकर्षण है। हर समय कुछ सत्सङ्ग-चर्चा भी चलती रहती है। दिन भर आने-जाने वालों का ताँता लगा रहता है,किन्तु रातको वहाँ कोई नहीं रह सकता। ब्रह्मचारी बद्रीप्रसाद, जिनके साथ आप खुरजा पधारे थे, पास ही किसी दूसरे स्थानमें रहते थे। यह ज्येष्ठ का महीना था, परन्तु रात्रि में आप कमरे के सारे दरवाजे बन्द करके भीतर ही रहते थे। इन दिनों आपका ध्यानाभ्यास बहुत बढ़ा हुआ था, अतः शीतोष्ण का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। अधिकांश रात्रि ध्यान-समाधि आदि में ही व्यतीत होती थी। उसको गुप्त रखने के लिये ही आपकी यह तीव्र तितिक्षा थी।

उस समय तक महात्माओं से मिलने और बातचीत करने का तो मेरा स्वभाव था नहीं। मैं केवल आपके दर्शनों के लिये

आता था। आप इन दिनों माधूकरी ही करते थे, किसी का निमन्त्रण आदि स्वीकार नहीं करते थे। एक दिन मध्याह्नोत्तर काल में मैं कुटी पर गया हुआ था। आप तब तक भिक्षा करके लौटे नहीं थे। भिक्षा के पश्चात् बस्ती में ही किसी भक्त के यहाँ ठहर गये थे। थोड़ी देर में आप पधारे। मैंने चरणस्पर्श किये। आप भी ठहर गये और खड़े-खड़े ही बोले-"तू क्या करता है ?"

मैं—अभी तो कुछ नहीं करता। प्राय: एक वर्ष हुआ कालेज छोड़ा है, किसी काम की खोज में हूँ।

महाराजजी—क्या करने का विचार है ?

मैं—मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता जो धर्म या देशके विरुद्ध हो। सरकारी नौकरी करनेका भी मेरा विचार नहीं है।* व्यापारादिमें लोग प्राय: मिथ्या भाषण का आश्रय लेते हैं। अतः मेरा विचार तो किसी राष्ट्रीय विद्यालय या गुरुकुल आदिमें अध्यापन अथवा किसी समाचारपत्रमें सम्पादनकार्य करनेका है।

महाराजजी—इसके लिये कुछ प्रयत्न भी किया है ?

मैं—हाँ, गुरुकुल वृन्दावन में कोई स्थान मिल जाने की सम्भावना है। वहाँ के प्रधानाध्यापक मेरे मित्र हैं।

बस, यही श्रीमहाराजजीसे मेरी पहली बातचीत हुई थी। उस समय आपने मुझे गुरुकुल की नौकरी करने के लिये अनुत्साहित ही किया था। सम्भवत: उसीदिन सायंकालमें मैं फिर गया। अनेकों भक्तजन बैठे हुए थे। उनमें खुरजाके सुप्रसिद्ध दानी और धर्मनिष्ठ सेठ गौरीशंकर गोइनका भी थे। उन्होंने प्रार्थना की,

---

* सन् १९२१ के सत्याग्रह में सरकारी नौकरियों का बहिष्कार किया गया था। वे ही संस्कार मुझे भी सरकारी नौकरी करने से रोक रहे थे।

"महाराजजी, कल भिक्षा के लिये दास के घर की ओर पधारनें की कृपा करें।"

महाराजजी—हाँ, जाऊँगा तो उधर भी हो आऊँगा।

सेठजी—किस समय पधारेंगे ? मुझे मालूम हो जाय तो मैं भी वहाँ उपस्थित रहूँ।

महाराजजी—मुझे तुम्हारी क्या आवश्यकता है ? जाऊँगा तो स्वयं ही रोटी ले आऊँगा।

इस पर सेठजी चुप हो गये। अनेक प्रकार का सत्सङ्ग हो रहा था। इस समय मुझे भी कुछ पूछने की इच्छा हुई। परन्तु स्वयं प्रश्न करने का साहस न हुआ। पं०रमादत्तजीवैद्य मेरे पास बैठे हुए थे। उन्हीं से मैंने प्रश्न कराया। वे बोले, "महाराजजी, ये पूछते हैं कि मृत्यु क्या है ?"

इन दिनों मेरे चित्त में यह समस्या कभी-कभी खलबली पैदा करती रहती थी, अतः मैंने यही बात पुछवायी। इसका श्रीमहाराजजी ने जो उत्तर दिया वह मुझे अब स्मरण नहीं है। परन्तु यह आपके प्रति मेरा पहला प्रश्न था, इसलिये यहाँ इसका उल्लेख कर दिया है।

रात्रि को सब लोग अपने-अपने घर चले गये, सबेरे मैं कुटी पर पहुँचा तो वह सूनी पड़ी थी और ब्रह्मचारी बद्रीप्रसाद सिर लटकाये उदास बैठे थे। बाबा रात ही में उठ कर चले गये थे। उन दिनों यही आपका स्वभाव था कि बिना कोई समय निश्चय किये आना और बिना किसी को सूचना दिये चले जाना अब मालूम हुआ कि आपने सेठ गौरीशङ्करजी को क्यों ऐसा गोलमोल उत्तर दिया था।

(२)

यह श्री महाराज जी से मेरा प्रथम मिलन हुआ। इससे

मुझे दो लाभ हुए—(१) श्रीचरणों के प्रति आकर्षण और (२) भक्तवर श्री केदारनाथ जी से परिचय। खुरजा में भक्त केदारनाथ जी एक सुप्रसिद्ध साधुसेवी और सत्सङ्गी थे। गृहस्थों में ऐसे सत्पुरुष विरले ही होते हैं। मैंने उस समय तक आपका नाम भी नहीं सुना था। किन्तु अब श्रीमहाराजजीके पास आपके दर्शन करके मेरा चित्त आपकी ओर आर्कषित हुआ और मुझे आपका सत्संग करने की रुचि पैदा हो गयी। धीरे-धीरे मैं आपके संसर्ग में आने लगा। फिर संसर्ग सत्संग में परिणत हुआ और आगे चल कर तो उनके साथ मेरा घनिष्ट सम्बन्ध ही पैदा हो गया।

थोड़े दिनों में मेरी काम-काज की समस्या भी हल हो गयी। मैंने अरहर की दाल का कारखाना कर लिया। इधर श्री भक्तजी के सत्सङ्ग और महापुरुषों के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहने से मेरी आध्यात्मिक अभिरुचि भी बढ़ गयी थी। परन्तु अपने लिये कोई साधनमार्ग निश्चित नहीं हो पाया था। किन्हीं महात्मा में ऐसी श्रद्धा भी नहीं थी जो आत्मसमर्पण करके उनसे अपना मार्ग निश्चय कर लेता। चित्त बार बार श्रीमहाराजजी की ओर ही आर्कषित होता था। परन्तु उनका कोई पता ठिकाना मालूम नहीं था। और उन दिनों इस विषय में विशेष खोज करने का साहस भी नहीं हुआ था। इस प्रकार प्रथम दर्शन को अब प्रायः चार साल बीत चुके थे।

दैवयोगसे एकबार श्रीभक्तजी गङ्गातटपर अनूपशहर ठहरे हुए थे। मैं भी आपके पास पहुँच गया। वहाँ सुना कि इन दिनों श्रीमहाराजजी कर्णवासमें हैं। वहाँ से आठ मील ही तो जाना था। वस, एक बैल-गाड़ी किरायेपर की गयी और उसमें हम दोनों के अतिरिक्त भक्तजीके छोटे भाई ला०बाबूलालजी और श्रीरामलालजी कोठीवाले इस प्रकार कुल चार आदमी कर्णवासको चल

दिये। वहां पहुंचे तो देखा. श्रीमहाराजजी पं० किशोरीलाल के बगीचेका धर्मशाला के बीचवाले कमरेमें एक लम्बी चौकी पर लेटे हैं और अनेकों भक्त आपके आस-पास बैठे हुए खिलवाड़-सा कर रहे हैं। हम पहुँचे तो आप उठकर बाहर बरामदेमें बैठ गये और फिर परमार्थ-चर्चा होने लगी।

इस समयतक मुझे तो कोई प्रश्न आदि करना आता नहीं था, श्रीभक्तजीके साथ ही महाराजजी की बात होती रही, वे ही हम सबके अगुआ थे। किन्तु मेरे चित्तमें प्रश्न उठते न हों—ऐसी बात नहीं थी। कुछ दिनोंसे श्रीरामकुमार दारोगाके[1] उपदेश से मैं हर समय मनही मन द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करने लगा था। परन्तु इतनेसे ही चित्त सन्तुष्ट नहीं था। उसे एक निश्चित और शीघ्रातिशीघ्र लक्ष्यकी प्राप्ति करानेवाले साधनकी अपेक्षा थी। परन्तु इनसब गुरुजनोंके सामने श्रीमहाराजजीसे ऐसी कोई प्रार्थना करनेका साहस नहीं हुआ। तथापि इस समय आप जो बातें कह रहे थे वे मुझे ऐसी लगती थीं मानो मेरेही लिए कह रहे हैं, उनमें मुझे अपनी स्थितिका उल्लेख और कर्त्तव्यका निर्देश दिखायी देता था। इसके सिवा इस समय मुझे एक और बड़ा विलक्षण अनुभव हुआ। मेरा चित्त आरम्भसे ही बड़ा नीरस-सा है, किसी भी व्यक्तिके प्रति मेरा विशेष आकर्षण नहीं होता। परन्तु इस समय श्रीमहाराजजी के प्रति चित्त ऐसा आकर्षित हो रहा था कि बार-बार उन्हें आलिगन करनेकी इच्छा होती थी।

बस, इतना अनुभव लेकर ही सबके साथ मैं भी वहांसे लौट चला। रास्ते में हमलोग आपसमें श्रीमहाराजजीके विषयमें

---

१. ये बरेलीके रहनेवाले एक प्रेमी सज्जन थे और अपने कार्य से अवकाश ग्रहण करके जहां तहां विचरते रहते थे।

ही चर्चा करने लगे। भक्तजो तो आपकी अद्भुत निष्ठा और विरक्तिपर मुग्ध ही थे। ला०रामलालजी कोठीवाले आर्यसमाजी विचारोंके थे। परन्तु इससमय वे भी कह रहे थे कि महाराजजी के हृदयमें आनन्दका ऐसा उद्रेक जानपड़ता है कि मानो वह वहां न समा सकनेके कारण बाहरभी छलक रहा हो। उसके प्रभावसे समीपवर्ती लोग भी आनन्दमें मग्न हो जाते हैं। मैं तो उनके बच्चेकी तरह था। जब मैंने उनसे अपने मनकी बात कही कि मेरा चित्त तो बार-बार उनका आलिंगन करनेको होता था तो उन्होंने मुझे झिड़क दिया। शायद वे मोहवश मुझे एक त्यागी-विरागी संतकी आसक्तिमें फँसा देखना नहीं चाहते थे।

चलते समय श्रीमहाराजजीने हमें शीघ्र ही अनूपशहर पधारनेका आश्वासन दिया था। अतः चित्तमें यह सन्तोष थाकि अब कुछ दिन निरन्तर सत्सङ्गका सुअवसर प्राप्त होगा। प्रायः एक सप्ताहमें आप अनूपशहर पधारे और माताकी गढ़ीवाली कुटी में आसन किया। यहां जीवनमें पहलीबार मैंने भक्त प्यारेलालाजी को आपकी पूजा करते देखा। अब नो बराबर आपके पास मेरा आना-जाना रहता ही था। अतः मैंने अपने लिये कोई निश्चित साधन बतानेकी प्रार्थनाकी। परन्तु आप टाल-टूलही करते रहे। मेरी मुख्य समस्या यह थी—मैंने कुछ भक्तिग्रन्थों को तो देखा ही था। महाप्रभु श्रीगौरांगदेव का जीवनचरित (Lord Gaurang) भी पढ़ चुका था और इन्हीं दिनों भक्तवर अश्विनीकुमारदत्तका 'भक्तियोग' भी पढ़ा था। इन ग्रन्थोंमें मैंने भक्तिके अश्रु, कम्प आदि अष्ट सात्त्विक भावोंकी बात पढ़ी थी। उससे कुछ काल पूर्व मैंने पूज्य श्रीहरिबाबाजीके भी दर्शन किये थे। उनके संकीर्तनोंमें उन दिनों लोगोंको बड़े-बड़े भावावेश होते थे। श्रीभक्तजी को भी मैंने घण्टों रोते देखा था। परन्तु मुझे नतो संकीर्तनमें ही

कोई विलक्षण आनन्द आता था और न कभी कोई सात्त्विक भाव ही होता था। अपना चरित्र मैं बहुतोंसे अच्छा समझता था और कभी-कभी कोई ऐसी बातभी कह देता था जिसे सुनकर दूसरोंको अश्रुपात होनेलगते थे। परन्तु मेरे चित्तपर उसका ऐसा कोई प्रभाव नहीं होता था। अतः मैंने श्रीमहाराजजीसे यही प्रश्न किया कि मुझे भावावेश क्यों नहीं होता और किस प्रकार मुझे ऐसी स्थिति प्राप्त होसकती है। परन्तु आपने इसका कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं दिया। यही कहकर टालते रहे कि तुम जो कुछ करते हो वही करते रहो।

अब होलीका पर्व समीप था। बाँधपर पूज्य श्रीहरिबाबाजी उत्सव आयोजन कर रहे थे। वहांसे उन्होंने चार आदमी श्रीमहाराजजीको लेनेके लिए भेजे। दूसरेही दिन श्रीमहाराजजी ने अपने भक्तपरिकरके सहित बाँधके लिए प्रस्थान किया। मैं और भक्तजो भी आपके साथ पैदल ही चले। वहाँ हमने दोनों महा-पुरुषोंका बड़ाही अद्‌भुत मधुर मिलन देखा। श्रीहरिबाबाजी तो बहुत देरतक मानो भावसमाधिमें डूबे-से बैठे रहे। मैंने बाँधका यह उत्सव जीवनमें पहलोही बार देखा था। वहाँ तो भगवन्नाम और भगवत्प्रेमकी मानो निरन्तर झड़ी लगी हुई थी। इस समय ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजीभी यहीं विराजमान थे। उनसे मेरा बच-पनका प्रेम था। अभी संकीर्तनादिमें उनकी कोई रुचि या श्रद्धा नहीं थी। वे इसे ग्रामीण और अशिक्षित लोगोंका साधन समझते थे। इसी प्रश्नको लेकर कभी-कभी श्रीमहाराजजी से उनकी बातचीत भी होती थी।

अस्तु, होलीके पश्चात् उत्सवकी समाप्ति हुई। श्रीमहा-राजजीने वहाँसे हरिद्वारके कुम्भमें पहुँचनेके लिए प्रस्थान किया और हम सब अपने-अपने घरोंको लौट आये।

(३)

यह सन् १९२६ ई० की बात है। मैं वाँध से एक नवीन प्रकारका अनुभव लेकर लौटा था। मैंने लोगोंको संकीर्तनानन्दमें मग्न होकर इसप्रकार नृत्य और प्रलाप करते कभीनहीं देखा था। अतः अपनेमें जो भावुकताका अभाव था वह और भी अधिक खटकने लगा। कभी-कभी चित्तमें ऐसे प्रश्नभी उठा करते थे कि यह विश्व क्या है ? मैं कौन हूँ ? यह सब कहांसे प्रकट हो गया? इस विश्वरचनाका प्रयोजन क्या है' इत्यादि। कभी-कभी तो यह जिज्ञासा बहुत बेचैन कर देती थी। ऐसा लगता था कि यह समस्या हल न हुई तो जीवन व्यर्थ ही है। कभीतो ऐसा अनुभव होता कि भले ही त्रिलोकीका राज्य मिल जाय और बड़ीसे वड़ी सिद्धि प्राप्त हो जाय तो भी यह जाने विना कि मैं कौन हूँ मेरा चित्त शान्त नहीं हो सकता। ऐसी थी उन दिनों मेरे चित्त को अवस्था।

श्रीभक्तजी का सत्सङ्ग तो अत्र नित्य हो होता था। उन्हें मैं कोई न कोई पारमार्थिक ग्रन्थ सुनाया करता था। कभी-कभी अपने समाधानके लिए परस्पर बातचीतभी हो जाती थी। उनके विचार और भक्तिभावसे तो मैं प्रभावित था,परन्तु उनकी बातों से मेरी सन्देहकी वेदना शान्त नहीं हो पाती थी। पूज्य श्रीमहाराजजी चैत्रके आरम्भमें हरिद्वार गये थे और लौटती बार खुरजा आने की बात कही थी। परन्तु ज्येष्ठ समाप्त हो गया तबभी वे नहीं आये। मनमें उनके दर्शनोंकी वड़ी लालसा थी। उनका कोई निश्चित पता-ठिकानाभी नहीं था जो पत्रद्वारा कोई बात मालूम कर सकें। चित्तमें तरह तरह की आशंकाएँभी होने लगती थीं। परन्तु आशा यही थी कि अबकी बार श्रीमहाराजजी मिलेंगे तो

उनसे अपने मानस-रोगकी कोई अमोघ औषधि अवश्य मिल जायगी। यह श्लोक बार-बार याद आता था—

'एको हि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥*

इसे स्मरण करके सोचता था कि इसबार मैं श्रीमहाराज जीको वहीं प्रणाम करूँगा जिससे पुनः जन्म न लेना पड़े।

उन दिनों अर्वाचीन महात्माओंमें मेरी सबसे अधिक श्रद्धा थी परमहंस श्रीरामकृष्णपर। एक रात स्वप्नमें मैंने देखा कि परमहंसदेव हमारे घर आये हैं। परन्तु मैं देखता हूँ कि उनका वेष तो श्रीपरमहंसदेवका-सा है परन्तु हैं श्रीमहाराजजी। दूसरे दिन दोपहरको मैं श्रीभक्तजीके पास बैठा हुआ था। उसी समय किसीने आकर कहाकि ऊधोजीको छत्रीपर श्रीहरिबाबाजी पधारे हैं। किन्तु मेरे मनमें हुआकि श्रीहरिबाबाजी नहीं श्रीउड़ियाबाबा जी ही पधारे होंगे। तुरंत ही हम दोनों दर्शनोंको चल दिये। वहां पहुँचनेपर मालूम हुआ कि श्रीउड़ियाबाबाजी ही आये थे, किन्तु अब वे हरसहायमलके बागमें चले गये हैं। हम सीधे वहीं पहुँचे। वहाँ बाबाको देखतेही हमारे हृदय हरे हो गये। मैंने अपने जीवनमें पहलीबार उन्हें साष्ठांग प्रणाम किया। उस समय उस प्रणाममें मेरा वही भाव था जो मैंने पहलेसे सोच रखा था।

अब तो पहलेकी अपेक्षा श्रीमहाराजजीका सुयश कुछ अधिक फैल चुका था। इसलिए स्थानीय ही नहीं, अनूपशहर आदि बाहरके स्थानोंसे भी भक्तगण आते रहते थे। सत्सङ्ग भी

---

* श्रीकृष्णको किया हुआ एक ही प्रणाम दश अश्वमेधों के समान है। इनमेंभी दश अश्वमेध करनेवालेका तो पुनः जन्म होता है, किन्तु श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाले का फिर जन्म नहीं होता।

पहलेकी अपेक्षा अब अधिक खुलकर होता था। मैं दिनमें कई बार दर्शनोंके लिए जाताथा। परन्तु श्रीमहाराजजीकी कुछ बातों का उल्टा-सुल्टा अर्थ लगानेके कारण आपके प्रति मेरी श्रद्धा कुछ शिथिल हो चली थी। एक दिन आपने कोई ऐसी बात कही जिससे मैंने समझा कि बाबा अपने प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा समझते हैं। मुझे उन दिनों सत्यका बड़ा आग्रह था। अतः मेरे मनमें यह हुआ कि मुझे किसी प्रकार बाबाके प्रति अपनी श्रद्धाकी शिथिलता प्रकट कर देनी चाहिए। इसी उद्देश्यसे मैंने आपसे पूछा- "महाराजजी! क्या आपने कोई ऐसे महात्मा देखे हैं जिन्हें निर्विकल्प समाधि हो गयी हो ?"*

महाराजजी-हाँ, देखे हैं, परन्तु तुम विश्वास कैसे करोगे? देखो, भैया ! जब तक तुम्हारी किसी एक महापुरुषमें पूर्ण श्रद्धा नहीं होगी तब तक तुम्हारा मार्ग नहीं खुल सकता।

मैं—महाराजजी ! यह तो मैं भी समझता हूँ कि यदि किसी पामरके प्रति भी मेरा ठीक-ठीक गुरुभाव हो जाय तो भी मेरा कल्याण हो सकता है। परन्तु यह बात मेरे वशकी तो नहीं है।

महाराजजी—सो तो ठीक है।

एक दिन भक्तजीके साथ आपका कुछ सत्सङ्ग हो रहा था। प्रसङ्गवश उन्होंने कहा, "महाराजजी! ज्ञानका प्रधान साधन तो विचार है। परन्तु मुन्नीलालका[1] तो यह आग्रह है कि बिना निर्विकल्प समाधि हुए ज्ञान हो नहीं सकता। आप इन्हें इस विषय में कुछ समझाने की कृपा करें।"

* इससे मेरा तात्पर्य यह था कि मैं आपकी तो ऐसी स्थिति नहीं समझता।

१. मेरा घर का नाम।

श्रीमहाराजजी मुझसे बोले, "क्यों रे ! तेरा क्या विचार है, तू अपनी बात कह।"

मैं—महाराजजी ! मैं तो यह समझता हूँ कि ज्ञान कोरी बात बतानेसे नहीं हो सकता। जबतक मुर्दे या सिरकटा का स्वांग* न हो तब तक ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

महाराजजी—अरे ! ज्ञान क्या किसीको होता है ? आज तक सृष्टिमें क्या कोई भी ज्ञानी हुआ है ? (भक्तजीसे) भक्तजी! तुम इस बात पर ध्यान देना।

श्रीमहाराजजीकी यह गूढ़ोक्ति उस समय मेरी समझमें कुछ नहीं आयी। इसके पश्चात् और भी कुछ बातें हुईं, परन्तु अब वे मुझे स्मरण नहीं हैं।

इसी प्रकार प्रायः पन्द्रह दिनतक हम लोग श्रीमहाराजजी के सत्सङ्गका आनन्द लेते रहे। मैंने दो-एक बार अपने लिए कोई साधन पूछा, परन्तु आप टालही करते रहे। अब गुरुपूर्णिमा आयी। खुरजामें श्रीमहाराजजीकी केवल यही गुरुपूर्णिमा हुई है। अभी भक्तिपरिकर बहुत नहीं बढ़ा था। अनूपशहर, रामघाट, हाथरस और रबूपुराके पच्चीस-तीस भक्तगण बाहरसे आये थे। आप नित्यप्रति प्रातःकाल सिद्धेश्वर महादेव पर चले जाते थे। वहीं पूजनादिका निश्चय हुआ और उसके पश्चात् वहीं सबके लिए प्रसादकी व्यवस्था की गयी। श्रीभक्तजीके यहाँ से सब लोगों के लिए पक्का भोजन बनकर आ गया और मैंने कुछ आम मँगा लिये।

---

* मुर्देका स्वांग अर्थात् निर्विकल्प समाधि और सिरकटाका। स्वांग—भगवद्विरह असह्य होनेपर सिर काटनेके लिए तैयार हो जाना

मैं सवेरे ही सिद्धेश्वर पहुँच गया था। इन दिनों नीमकरोरीके महात्माभी खुरजा आयेहुए थे। उनकी सिद्धियोंकी कुछ प्रसिद्धि थी। वे भी इससमय सिद्धेश्वरपर ही थे श्रीमहाराजजी उनसे कुछ बातें करते रहे। भक्तजीकी आज विचित्र अवस्था थी। वे घरसे तो सिद्धेश्वरके लिएही चले, किन्तु मार्गमें भावमग्न हो जानेके कारण रास्ता भूलकर दूसरी ही ओर निकल गये। जब चेत हुआ तो लौटकर निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचे। वे तालावके किनारे एकान्तमें श्रीमहाराजजीको अपनी वे सब बातें सुना रहे थे। इसी समय मैं भी वहां पहुँच गया। बस अपनी बात समाप्त करके उन्होंने श्रीमहाराजजीसे कहा, "भगवन्! इस मुन्नीने मुझे बहुत ग्रन्थ सुनाये हैं। आप कृपा करके इसे भी कोई साधन बताइये।" ऐसा कहकर वे उठ गये और अब वहाँ मैं और श्रीमहाराजजी ही रह गये।

आज मेरा भाग्योदय हुआ। मैंने इतने दिनोंसे कई बार श्रीमहाराजजीसे अपने लिए कोई साधन पूछा था। परन्तु वे बराबर टाल ही करते रहे। इसका क्या कारण था, सो तो वेही जानें। आज बोले, "मेरे विचारसे तुम्हारी प्रवृत्ति साकारोपासना में नहीं हो सकती। तुम्हारी बुद्धि तर्कप्रधान है। इसके लिए तो शुद्ध श्रद्धाकी आवश्यकता है। सो, रूप और नाममें तो तुम्हारी श्रद्धा हो सकती है, किन्तु लीला और धाममें होनी कठिन है। तुमतो गीताके इस श्लोकपर विचार किया करो—

'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवच।
नित्यः सर्वंगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥' (२।२४)

इसके लिए द्रष्टा और दृश्यका विवेक होना परम आवश्यक है। देखो जिसप्रकार तुम संसारकी सब चीजोंको देखते हो उसी प्रकार

इस शरीर को भी तो देखते हो। इसी तरह मनके संकल्प-विकल्प बुद्धि के निश्चय और सुख-दुःख आदि भी तुम्हारे दृश्य ही हैं। और यह नियम है कि दृश्य से द्रष्टा सर्वथा भिन्न होता है। अतः तुम शरीर, मन एवं बुद्धि आदि सभी से भिन्न हो। इसलिये इनके किसी भी व्यापार से तुम्हारा कोई हानि-लाभ नहीं हो सकता। बस, तुम उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय अपने को इनसे असङ्ग देखा करो। तुम्हारा यह अभ्यास इतना दृढ़ हो जाना चाहिये कि जिस प्रकार तुम घड़े को अपने से भिन्न देखते हो उसी प्रकार तुम्हें यह शरीर भी दिखायी दे।"

मैं—महाराजजी ! जब इस प्रकार शरीर अपने से भिन्न दिखायी देने लगेगा तब तो इसे कोई काटे-कूटेगा तो उससे भी कोई उद्वेग नहीं होगा ?

महाराजजी - हाँ, दृढ़ अभ्यास होने पर तो ऐसा ही होगा। तुम अभी यही अभ्यास करो। जब इसमें तुम्हारी कुछ स्थिति हो जायगी तब तुम्हें और भी साधन बताया जायगा। फिर तो तुम्हें यह सारा विश्व आकाश में बादल के समान सर्वथा असत् और अपनी ही दृष्टि का विलास जान पड़ेगा।

बस, आज गुरुपूर्णिमा को यही श्रीमहाराजजी ने मुझे प्रथम दीक्षा दी। परन्तु यह बात तो मुझे बड़ी कठिन-सी जान पड़ी। मैं तो कोई ऐसी युक्ति चाहता था जिससे भगवान्‌में मेरा प्रेम बढ़ जाता और मुझे भी अश्रुपात आदि सात्त्विक भाव होने लगते। इतने ऊँचे साधन का तो मैं अपने को अधिकारी नहीं मानता था। परन्तु यह तो मेरी समझ थी। शिष्य के यथावत् अधिकार को तो तत्त्वदर्शी गुरुदेव ही जानते हैं।

अस्तु। इसके पश्चात् सब लोगों ने श्रीमहाराजजी का पूजन किया, फिर पंक्ति में बैठकर एक साथ प्रसाद पाया और

कुछ देर विश्रास करके वहाँ से हरसहायमल के बाग को लौट आये। दोपहर पश्चात् मैं श्रीभक्तजी के घर गया। उन्होंने पूछा, "क्यों, श्रीमहाराजजी ने तुम्हें कोई साधन बताया ?"

मैंने सब बातें सुनाकर कहा, "साधन तो बताया, परन्तु मुझे तो यह अपनी योग्यता से परे जान पड़ता है। भला, जब मैं अपने को शरीरादि से परे अनुभव करने लगूँगा तो और शेष ही क्या रहेगा। अभी मेरी ऐसी योग्यता कहाँ है। मैं तो चाहता था कोई भजन की युक्ति बता देते।"

भक्तजी—हाँ, बात तो ठीक है। अब तुम महाराजजी से फिर प्रार्थना करो कि भगवन्, यह तो बहुत ऊँची बात है, मुझे तो आप कोई भजन की सरल-सी युक्ति बताइये।

मैं—अब तो उनसे पुनः कुछ कहने की मेरी इच्छा नहीं होती। इतनी बार पूछने पर तो उन्होंने यह बताया है।

इस प्रकार अब और कोई बात पूछने की ओर से मैं निराश हो गया। इसके कुछ देर पश्चात् मैं बाजार की ओर गया। जब मैं बाजार में चल रहा था उस समय अकस्मात् मेरी मनोवृत्ति समाहित हो गयी और मुझे ऐसा लगने लगा मानो शरीर स्वयं ही चल रहा है और मैं उसे तटस्थ रूप से देख रहा हूँ। इस विचित्र अवस्था में मुझे बड़ी ही निश्चिन्तता और शान्ति का अनुभव हुआ तथा ऐसा जान पड़ा कि यदि यह दृष्टि बनी रहे तो फिर कुछ भी हुआ करे उसकी मुझे क्या परवाह। बस; इतने ही से मुझे निश्चय हो गया कि यह साधन मेरे लिये ठीक है, मुझे इसका अभ्यास करना चाहिये।

श्रीमहाराजजी दूसरे दिन प्रातःकाल ही खुर्जा से जाने वाले थे। अतः रात्रि में मैं बहुत देर तक उन्हीं के पास रहा।

जब सब लोग चले गये तो मैंने उन्हें सब बातें बतायीं और इस विषय में मेरे चित्त में जो अन्य शङ्काएँ थीं उनका समाधान कराया।

इस प्रकार श्रीमहाराज जी के साथ मेरे सम्पर्क का सूत्र-पात हुआ। फिर तो मैं उनके पास बार-बार जाने लगा और कुछ ही दिनों में वे ही मेरे एकमात्र पथप्रदर्शक हो गये। मैं व्यावहारिक और पारमार्थिक सभी विषयों में उनसे सलाह लेता था और यथासम्भव उनकी आज्ञा का अनुसरण करता था। मेरा भावी जीवन तो उन्हीं का कृपाप्रसाद है। इसमें जो कुछ विकास हुआ है वह सब उन्हीं की देन है और जितनी त्रुटियाँ हैं वह मेरे प्रमाद, आलस्य और अश्रद्धा के परिणाम हैं। मेरा चित्त आरम्भ से ही बड़ा नीरस है। श्रीमहाराजजी कहा करते थे, "तेरा चित्त सूखी लकड़ी की तरह है, इसमें द्रवता की बहुत कमी है। साधक का चित्त तो जतु (लाख) की तरह होना चाहिए, जो साधन की आँच लगते ही पानी की तरह पिघल जाय और विषयों की ठण्ड के सामने काठ की तरह कड़ा हो जाय।" परन्तु उन्होंने इस सूखी लकड़ी का भो सदुपयोग कर लिया। उनके सदुपदेशों के औजारों ने इसे पादुकाओं के रूप में घड़ दिया, जिससे इसे भी उनके चरणों में स्थान मिल गया। शरण में आने पर भला महा-पुरुष किसे आश्रय नहीं देते ?

बाबा श्रीरामदासजी

(श्रीबुद्धिप्रकाश जी उदासीन) पटना

प्रथम दर्शन

आज से लगभग २५-३० वर्ष पूर्व की बात है उस समय मेरी आयु बीस वर्ष से ऊपर हो चुकी थी। मेरे हृदय में एक ऐसे सन्त के दर्शन की उत्कट लालसा जाग्रत हुई जो मुझे निरन्तर भजन में प्रवृत्त कर दें। इसी उद्देश्य से मैंने चित्रकूट, अयाध्या, काशी आदि अनेकों तीर्थस्थानों में भ्रमण किया। कई सन्तों का सङ्ग किया और उनकी सेवा भी की। परन्तु कहीं भी मेरी श्रद्धा न जमी। इस प्रकार खोजते खोजते जब मैं निराश हो गया तो मुझे प्यारेलाल नाम के एक सज्जन मिले। उनसे मैंने श्रीमहाराजजी की गुणगरिमा सुनी तब मैं उन्हींके साथ श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट गया। उनके दर्शनमात्र से मुझे ऐसा लगा मानो मुझे अपनी खोयी हुई निधि मिल गयी। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो मैं साक्षात् श्रीशङ्कर भगवान् के दर्शन कर रहा हूँ। मेरी सारी थकान उतर गयी।

श्रीमहाराजजी की आज्ञा पाकर प्यारेलालजी ने प्रश्न किया,—महाराज ! क्या आजकल भी प्रभु के दर्शन होते हैं ?

श्रीमहाराजजी—हाँ अवश्य होते हैं और बहुतों को हुए भी हैं।

मैं---क्या मुझे भी हो सकते हैं ?

श्रीमहाराजजी---हाँ।

मैं---किस प्रकार ?

श्रीमहाराजजी---मैं करा दूँगा।

मैं---मैं चाहता हूँ कि मुझे भजन में अत्यन्त प्रीति हो जाय और मैं निरन्तर भजन किया करूँ।

इससे श्रीमहाराजजी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले, "भजन से प्रेम चाहने वाले तो एक तुम्हीं मिले हो।"

फिर आपने अपने एक अनन्य भक्त गार्ड साहब के यहाँ ठहरने का मुझे आदेश दिया। उन दिनों श्रीमहाराजजी का अटल नियम था कि रात्रि में उनकी कुटिया में और कोई नहीं रह सकता था। रात्रि को दस बजे प्रति दिन पं० वंशीधरजी आरती करके महाराजजी को शयन करा देते थे और सब लोग उन्हीं के साथ गाँव में चले जाते थे। पण्डितजी बहुत गरीब ब्राह्मण थे, परन्तु महाराजजी में उनकी अनन्य भक्ति थी। एक बार उन्होंने दीपावली के अवसर पर पैसे का अभाव होने के कारण अपनी थाली-लोटा बेचकर बाबा की कुटी पर दीपक जलाये थे। मैं दिन के समय तो कुटिया पर रहता था और रात्रि को सोने के लिये गार्ड साहब के घर चला जाता था। इस प्रकार सात दिन बीत गये। फिर आपने जप के लिए मुझे एक मन्त्र बताकर अपना ही ध्यान करने का आदेश दिया और कहा कि तुम खुर्जा जाकर भक्त केदारनाथ का सत्संग किया करो। साधु वेश धारण मत करना। इससे अभिमान बढ़ जाता है और भजन से वञ्चित होना पड़ता है—ऐसा मैंने कई बार देखा है। तुम तीन वर्ष तक स्वयं अपने हाथ से बनाकर रोटी खाओ और नियम से भजन करो।

भक्त केदारनाथजी के पास

भक्त केदारनाथजी खुर्जा के रहने वाले एक सद्गृहस्थ महापुरुष थे। वे बड़े सन्तसेवी थे और बिना सन्तों को भोजन कराये कभी स्वयं भोजन करना नहीं चाहते थे। उनके पास पहुँच कर मैंने श्रीमहाराजजी की आज्ञा सुनायी तो उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु छलछला आये और वे बोले,"मैं हरिद्वार से लौटने वाले सन्तों का प्रतिवर्ष सत्सङ्ग करता हूँ। चालीस वर्षों से मेरा यह नियम चल रहा है। उस सत्सङ्ग के फलस्वरूप ही मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए हैं, मुझे तो महाराजजी साक्षात् भगवान् शङ्कर और विष्णु रूप ही जान पड़ते हैं। जब मुझे पहली बार उनके दर्शन हुए तो मैंने उनसे वेदान्त सम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। इस पर वे बोले—'भक्तजी ! मुझे आत्मज्ञानी तो बहुत मिलते हैं, परन्तु आत्मप्रेमी कोई नहीं मिलता,' बस, तबसे मेरे मन में तो महाराजजी की वही बात घर कर गयी है।"

भक्तजी के पास मैं तीन वर्ष रहा। उन्हीं के यहाँ मुझे मुन्नीलालजी के दर्शन हुए। ये प्रति दिन भक्तजी को दो घण्टे तक भक्ति या ज्ञानसम्बन्धी किसी ग्रन्थ की कथा सुनाया करते थे। इस समय ये स्वामी सनातनदेव के नाम से विख्यात हैं। मैं कभी-कभी इनके या भक्तजी के साथ श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ जाया करता था। श्रीमहाराजजी का उन दिनों ऐसा नियम था कि वे वेदान्त की चर्चा गुप्तरूप से केवल जिज्ञासुओं के आगे ही करते थे। उस समय भक्तिमार्गियों को वे एकान्त में भजन करने के लिये भेज देते थे। पीछे तो आप मेघवृष्टि के समान सभी के सामने वेदान्त का भी प्रतिपादन करने लगे। बाबू रामसहायजी ने इसका विरोध भी किया तो आपने कहा कि बादल जिस प्रकार ऊसर भूमि का विचार न करके सर्वत्र समान भावसे वृष्टि

करता है उसी प्रकार सब लोग वेदान्त चर्चा सुनाने पर भी इसे वे ही ग्रहण कर सकेंगे जो इसके अधिकारी होंगे। मुझे तो श्रीमहाराजजी केवल नामकी महिमा ही सुनाया करते थे। किन्तु भक्तजी ने मुझे कुछ वेदान्त भी पढ़ा दिया था। अतः फिर महाराजजी भी मेरे सामने भक्तिके साथ वेदांतचर्चा भी करने लगे।

तीन वर्ष बीत जाने पर मेरा मन निरन्तर श्रीमहाराजजी के पास रहने के लिये उतावला हो उठा। अतः मैं खुर्जा से उनके पास कर्णवास चला आया। महाराजजी ने पाँच-सात दिन पश्चात् मुझे पुनः भक्तजी के पास जाने की आज्ञा दी। परन्तु मुझ से इस आज्ञा का पालन न हो सका। मैं श्रीसियाराम ब्रह्मचारी के साथ गङ्गा तट पर विचरने के लिये निकल पड़ा। हम दोनों विचरते हुए श्रीकाशीजी पहुँचे। वहाँ श्रीसियाराम ने दण्ड ग्रहण किया और मैंने एक उदासीन सन्त से साधुवेश ग्रहण कर लिया। यहां से सियारामजी तो रेलद्वारा दिल्ली चले गये और मैं पुनः गङ्गातट पर विचरता कर्णवास पहुँच कर श्रीमहाराजजी के चरणों में उपस्थित हो गया।

उन दिनों कर्णवास में लम्बेनारायण स्वामी का भण्डारा था। पूज्य श्रीमहाराजजी और श्रीस्वामी निर्मलानन्दजीके तत्त्वावधानमें यह उत्सव हो रहा था। श्रीमहाराजजीने मुझे देखा और पाँच-सात दिन तक आप बिलकुल चुप रहे फिर बोले, "बेटा! क्या तू पहले साधु नहीं था, जो अब साधुवेश में मेरे सामने आया है।" किन्तु ऐसा कहने पर भी वे मुझपर थे प्रसन्न। उस समयकी उनकी मधुर मुसकान मेरे लिये उनके अविचल आश्रयका संदेश थी। तबसे मैं सदा ही उनका एक अङ्ग बनकर रहा हूँ और आज उनके अभावमें अपनेको एक अनाथ बालक-सा पा रहा हूँ। उसके पश्चात् प्रायः चौदह वर्ष तक मैं बराबर उन्हीं के साथ रहा हूँ।

भक्त केदारनाथजी बहुत वृद्ध थे। उनका शरीर रोगग्रस्त हो गया। तथापि गुरुपूर्णिमा पर वे श्रीमहाराजके दर्शनार्थ रामघाट गये। किन्तु प्रभुकी इच्छा ! इस वर्ष वहाँ आगमनकी पूर्ण सम्भावना होनेपर भी श्रीमहाराजजी नहीं आये। भक्तगण निराश होकर अपने-अपने घर लौट आये। मैं श्रीभक्तजीके साथ खुर्जा आ गया। कुछ भक्त श्रीमहाराजजीको खोज करने लगे। पिलखुवाके पास सिखेड़ामें मुन्नीलाल आदि चार भक्तोंको आपके दर्शन हुए। परन्तु सबके बहुत प्रार्थना करने पर भी आप रामघाट की ओर चलने को तैयार न हुए। तथापि दूसरे दिन प्रातः काल ध्याना वस्था से उठते ही आप बोले, "मैंने भक्त केदारनाथको आज स्वप्नावस्था में बीमार देखा है। अतः मैं उनसे मिलनेके लिये खुर्जा जाऊँगा।" बस, वहाँ से कुछ भक्तों के साथ आप खुर्जा पधारे। भक्तजी की शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं थी। दो आदमियों के उठाने से वे खाट से उठ सकते थे। परन्तु महाराजजीके पहुँचने पर वे स्वयं खाट से उतरकर नाचने लगे। उन्होंने श्रीमहाराज जीके चरणस्पर्श किये और विधिवत् उनकी पूजा की। महाराज जीने उस समय उन्हें वेदान्तकी ही चर्चा सुनायी तीन-चार दिन ठहरकर आप रामघाट की ओर चल दिये। चलते समय मुझ से कहा, "भक्तजी का शरीर सोलह दिन और रहेगा। तुम यहीं रहकर इनकी सेवा करो।"

मैंने सहर्ष श्रीमहाराजजीकी आज्ञाका पालन किया। ठीक सोलहवें दिन दोपहरके दो बजे भक्तजीका निर्वाण हुआ। उनका त्रयोदशा होनेपर मैं श्रीमहाराजजोके पास रामघाट चला आया।

श्रीमहाराजजो की चर्या

अब मैं निरन्तर श्रीमहाराजजीकी सेवामें रहकर उनके श्रीमुख से भक्ति और ज्ञानकी चर्चा सुनने लगा। आपमें अलौकिक आकर्षण

था। भक्तजन आपका दर्शन पाकर मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। आने वाले लोगों में मुझे किसीमें भी जाने की इच्छा दिखायी नहीं देती थी। महाराजजी जहाँ ठहरते वहाँ से जब चलने लगते तो उस स्थान के निवासियोंको उनका वियोग असह्य हो जाता था। उनके चेहरों पर अपार खेद दिखायी पड़ता था, मानो उनकी निधि उनसे छीनी जा रही हो। आपके साथ कुछ साधु, सन्त और ब्रह्मचारी भी रहा करते थे। उनमें यद्यपि मैं अत्यन्त अल्पशिक्षित था, तथापि मुझ पर आपकी अपार कृपा थी। आपका किसीसे रंचक-मात्र भी भेदभाव नहीं था, सभी से अत्यन्त स्नेह रखते थे।

आपका सत्संग सवेरे प्रायः तीन बजे से ही आरम्भ हो जाता था। उस समय के सत्संगमें अभ्यास और वैराग्य की चर्चा ही प्रधानतया रहती थी। फिर नौ बजे से दस बजे तक आप श्रीगीताजीके दो श्लोकों पर प्रवचन करते थे। वह प्रवचन क्या था मानो आप जिज्ञासुओं के हृदय में अपना अनुभव ही उड़ेलते थे मध्याह्नोत्तर तीन बजेके समय पुनः सत्संग प्रारम्भ होता था। उस समय पहले भक्तजन मिलकर श्रीरामचरितमानस का गायन करते थे और फिर किसी भक्त या संतचरितकी कथा होती थी। पीछे इस समय श्रीमद्भागवतकी कथा होने लगी। श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि भक्तों के चरित्र सुननेसे उनके गुणोंको अपनेमें लाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। अतः भक्तचरित अवश्य सुनने चाहिये। जब तक भक्तों के चरित्र से प्रेम नहीं होगा और उनकी सेवामें रुचि नहीं होगी तब तक कोई संत या भक्त नहीं बन सकता।

प्रायः देखा जाता था कि जिसकी जिस मार्ग में श्रद्धा होती थी महाराजजी उसकी उसी निष्ठाको पुष्ट कर देते थे। वे ज्ञान-मार्गियों से कहते कि एक सैकण्ड भी आत्मचिंतन से खाली मत

रहो—'क्षणमात्रं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।" प्रेमी भक्तोंसे कहते कि भक्त तो वही है जो एक क्षणके लिये भी प्रभुके नामका वियोग सहन नहीं कर सकता—'सा हानिः तन्महच्छिद्रं सा चान्ध-जड़मूढता। यन्मुहूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्।।' इसी प्रकार कर्मकाण्डी पण्डितोंसे कहते थे कि जो ब्राह्मण संध्यावन्दन नहीं करता वह शूद्रतुल्य हो जाता है तथा जो ब्राह्ममुहूर्त्त में नहीं उठता उसका समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है।

संसारमें साधुओंकी दो कोटियाँ हैं। एक आचार्य कोटि और दूसरी अवधूत कोटि। श्रीमहाराजजी में दोनों कोटियों के लक्षण विद्यमान थे। जब वे सत्संगमें परमार्थका प्रतिपादन करते थे तो अवधूत कोटिके जान पड़ते थे और व्यवहार करते समय आचार्य कोटिके प्रतीत होते थे। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें परिच्छि-न्नता और अपरिच्छिन्नता दोनों साथ-साथ प्रतीत होती हैं। उनकी कमरमें एक वित्तेकी रत्नजटित स्वर्णकरधनी पड़ी रहती थी, परन्तु जब माता यशोदाने उन्हें बाँधना चाहा तो सारे गोकुलकी रस्सियाँ मिलाने पर भी ओछी रहीं। इन प्रसङ्गोंसे जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी परिच्छिन्नता और अपरिच्छिन्नता साथ-साथ सूचित होती हैं उसी प्रकार श्रीमहाराजजीके जीवनमें निवृत्त और प्रवृत्ति दोनों मार्गोंका विलक्षण सम्मिश्रण जान पड़ता है।

प्रयागयात्रा

ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराज बाबाके प्रेमियोंमें अग्र-गण्य हैं। उनके यहाँ झूसी में एक वर्ष तक अखंड संकीर्तन यज्ञका अनुष्ठान हुआ। उसकी पूर्णाहुतिके समय प्रयागकी अर्धकुम्भी भी थी। श्रीब्रह्मचारीजीकी बड़ी उत्कण्ठा थी कि इस पर्व पर पधार-कर श्रीमहाराजजी पूर्णाहुति के महोत्सव की शोभा बढ़ावें। इसके लिये उन्होंने आपसे प्रेमपूर्ण आग्रह किया। यद्यपि इतनी

लंबी पैदलयात्रा कोई सामान्य कार्य नहीं थी,तथापि ब्रह्मचारीजीके प्रेमने विजय पायी और आप बीस-पच्चीस भक्तोंको साथ ले गढ़-मुक्तेश्वर से झूसी के लिये चल पड़े। यह यात्रा सैकड़ों मील की थी। सौभाग्य से मैं भी इस यात्रा में आपके साथ था।

श्रीमहाराजजीके साथ पैदल यात्रा का आनन्द भी विलक्षण था। मैं देखता था कि चलते समय कभी चुप्पी सधती तो दो-दो तीन-तीन घंटेतक सब लोग मीलों चुपचाप चले जाते, कोई भी कुछ न बोलता। और यदि सत्संग छिड़ जाता तो मीलों सत्संगमें ही निकल जाते। मालूम ही न पड़ता कि हम इतनी दूर चले आये हैं। भक्ति और ज्ञानको ऐसी धारा प्रवाहित होती कि उसमें सब लोग निमग्न हो जाते। श्रीमहाराजजीका एक मिनट भी बेकार नहीं जाता था और न वे अपने पास रहने वालों को ही समय का दुरुपयोग करने देते थे। जो सुकुमार प्रकृति के लोग कभी पैदल नहीं चले थे वे भी आपके साथ पन्द्रह-पंद्रह मील चलनेपर भी नहीं थकते थे। दिन या रात्रिमें जहाँ भी आप विश्राम करते वहीं दर्शनार्थियोंको भीड़ लग जाती थी। भोजनके लिये विविध प्रकारके पदार्थ उपस्थित हो जाते थे। इस पैदल यात्रामेंभी हम महाराजजी को पैर फैलाकर सोते हुए नहीं देखते थे। दिन भर की थकानके कारण जब सब लोग निद्रा देवीकी गोदमें सो जाते तब भी आप सिद्धासन लगाकर रात्रिभर ध्यानस्थ बैठे रहते थे। अधिकसेअधिक मैंने यही देखा कि दोनों केहुनियोंको दोनों घुटनों पर टेककर हस्त तलपर ठुड्डी रखकर विश्राम कर लेते। कभीकभी यदि ब्राह्ममुहूर्त्त का समय हो जाता और हमलोग सोते रहते तो आप कहते, "अरे रामदास! ओ सियाराम! अरे भैया! उठो। भजन करो, ध्यान करो। यह मनुष्यजन्म सोनेके लिये थोड़े ही मिला है।" इसप्रकार अपने कृपापात्रों पर सदैव कृपादृष्टि रखते थे। प्रातःकाल

अँधेरेमें ही चल देते थे और नौ-दस बजे तक चलकर ठहर जाते थे। फिर भोजनकी व्यवस्था होती। कभी-कभी सायंकालमें भी दो घंटे चलते और कहीं रात्रिको ठहर जाते। भिक्षाका प्रबन्ध प्रायः गाँववालोंकी ओरसे हो जाता था अथवा हम लोग सामान माँग लाते और दो-तीन ब्रह्मचारी मिलकर भोजन वनाते थे।

यात्रामें श्रीमहाराजजी प्रायः किसी वृक्षके तले विश्राम करते थे। हमलोग कुछ पत्ते इकट्ठे करके आसन लगा देते, उसी पर आप विराज जाते। कभी-कभी आपसमें खूब विनोद भी होता था। हमलोगोंको पृथक-पृथक वृक्षोंके नीचे आसन लगानेकी आज्ञा थी। सायंकालमें जब कहीं ठहरना होता तो हमलोग झटपट घने-घने वृक्षोंके नीचे अपना-अपना आसन लगा लेते और पल्टू बाबाके लिये सूखा ठूँठ छोड़ देते। जब उन्हें कोई स्थान न मिलता तो वे श्रीमहाराजजीके पास पहुंचकर हमारी शिकायत करते। बाबा उनसे अपने पास ही आसन लगानेको कह देते। तब हम उन्हें अपने लिये चुने हुए स्थानोंमेंसे ही कोई जगह दे देते थे।

यात्रामें भी श्रीमहाराजजीके तीनों समय के सत्संग का कार्यक्रम नियमानुसार चलता रहता था। बीच-बीचमें कीर्तनभी होता था। कासगंज, सोरों और फर्रुखाबाद आदि मुख्य-२ स्थानों में तो आपको ४-५ दिन तक ठहरना पड़ा। वहाँ तो उत्सवका-सा रूपही बन गया। आपके दर्शनार्थ जो लोग एकत्रित होते थे उनमें सभी वर्गके व्यक्ति होते थे और उन सभीके साथ आपका जो स्नेहपूर्ण व्यवहार होता था उससे जान पड़ता था मानो आप संन्यासी वैरागी,उदासीन, गृहस्थ और ब्रह्मचारी आदि सभी के अपने हैं। बस सत्संग एवं कथा कीर्तनादिकी धूम मच जाती और ज्ञान तथा भक्तिकी गङ्गा-यमुना प्रवाहित होने लगतीं। गढ़मुक्तेश्वरसे कासगंजतक भक्तोंके सहित आपकी भिक्षाकी व्यवस्था गोरहाके रईस

ठाकुर कञ्चनसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी ने की। वे दोनों ही श्रीमहाराजजीके अनन्य भक्त हैं।

कासगंज से चलकर आप सोरों पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का बाल्यकाल व्यतीत हुआ था और जहाँ उन्होंने श्रीनरहरिदाससे भगवान् रामका चरित्र सुना था। वहाँ से आगे सहवाजपुर पड़ा। यहाँ अमरसा वाले स्वामी श्रीरामानन्दजी सरस्वतीसे भेंट हुई। श्रीमहाराजजीसे मिलकर वे बड़ेही प्रसन्न हुए। ऐसा जान पड़ता था मानो दोनोंका पहलेसे ही परिचय हो। वहाँ तीन दिन विश्राम करके फर्रुखाबाद पहुँचे। यहाँ ब्रह्मचारी चन्द्रसेनजी मिले। इन्होंने कांग्रेस के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राममें कार्य किया था और कई बार जेलभी जा चुके थे। श्रीमहाराजजी से मिलने पर ये इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने गुरुभावसे उन्हें आत्मसमर्पण कर दिया। आगे चल कर ये दण्डिस्वामी आत्मबोध तीर्थ के नामसे प्रसिद्ध हुए। फर्रुखाबादसे आगे सरैयापुर तक इन्हींने सबके भोजन की व्यवस्था की। फर्रुखाबादके अन्य प्रेमियोंमें पं० लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री, बाबू मथुराप्रसाद दीक्षित, पं० श्यामसुन्दर (बड़े बाबूजी), पं० रामचन्द्र (छोटे बाबूजी) और पं० शीतलदीनजीके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी उच्चकोटिके भगवद्भक्त थे। यहाँ सहस्रों नर-नारियोंने श्रीमहाराजजीके दर्शन और सत्संगसे लाभ उठाया।

फर्रुखाबादसे आगे चलने पर एक दिन सायंकाल में एक बगीचेमें विश्राम हुआ। चाँदनी रात थी, सब लोग अपने-अपने काममें लग गये। सुखरामजी लोटेमें जल लेकर शौच के लिये चले उनके साथ ही दस कदमकी दूरी पर एक प्रेत भी चलने लगा। सुखरामने यद्यपि समझ लिया कि यह प्रेत है तो भी वे निर्भय रहे। शौचकृत्यसे निवृत्त होकर वे लौट आये और उनके

साथ प्रेत भी लौटकर कुएँ पर पहुंचा । यहाँ ब्रह्मचारी रमाकांत जी, जो पीछे महर्षि कार्तिकेयके नामसे प्रसिद्ध हुए, संध्योपासन के लिये जल खींच रहे थे । उस प्रेतने उनके समीप जाकर अपने मुँह से हाथ लगाकर जल पिलाने का संकेत किया । वे झट से बोले, "अरे ! मैं संध्याके लिये जल खींच रहा हूँ, इसमें से नहीं पिला सकता ।" वे जल लेकर चलेतो उसने फिर दूसरीबार जल पिलाने का संकेत किया । तबभी उसे उन्होंने जल न पिलाया । कहते हैं, जल पिलानेसे प्रेतकी शक्ति अपने ऊपर काम करने लगती है,अतः ऐसे अवसर पर प्रेतको जल नहीं पिलाना चाहिये । फिर वह पल्टू बाबाके पास पहुंचा । कभी उनके सिरहाने जाता, कभी पायताने और कभी बीचमें रहता । वे उठकर बैठ गये और भजन करने लगे । तब प्रेत श्रीमहाराजजीके पास पहुंचा । वे वृक्षोंकी गुमटीके नीचे बैठे हुए थे । प्रेत कभी इस वृक्षसे उस वृक्ष पर और कभी उस परसे इस पर आता । कभी वृक्षोंको पकड़कर झकझोर देता। इस प्रकार जब उसने बहुत ऊधम मचाया तो महाराजजी बोले "अरे रामदास ! सियाराम ! यहाँ आओ । भैया ! यह प्रेत तो बहुत ऊधम मचा रहा है ।" सब इकट्ठे हो गये । सुखरामने कहा, "महाराज!यह मेरे साथभी शौचस्थान तक गया था ।" रमाकांत बोले, "भगवन् ! मुझसे इसने पानी पिलाने के लिये हठ किया था । पल्टूबाबा कहने लगे, "कृपालु!मुझ भी यह तंग कर रहा था ।" तब सभी लोग भजन करने लगे । इससे थोड़ी ही देर में वह प्रेत चला गया ।

इससे आगे जब आप सरैयापुर पहुंचे तो वहाँ स्वामी श्रीहीरानन्दजी मिले । ये महाराजजीके पूर्व परिचित और अत्यन्त प्रेमी थे । महाराजसे मिलने पर आपको अपार आनन्द हुआ और सम्पूर्ण मंडलीकी सुविधाके विचारसे आप महाराजसे चार-पाँच मील आगे-आगे चलने लगे । इस प्रकार कानपुर तक प्रायः सौ

मील चलकर आपने सत्रके भोजनकी सुन्दर व्यवस्था की। इससे महाराजके प्रति आपका अपूर्व अनुराग प्रकट होता है। कन्नौज में आपने बाबाको पाँच-छः दिन ठहराया। वहाँ पं० गणेशदत्तशास्त्री आदि आपके अनेकों प्रेमी थे। उन्होंने महाराजजीका सत्संग करके अपने को धन्य माना।

यहाँसे आगे कानपुरमें हम सब लोग श्रीगङ्गाजी की रेती में ही ठहरे। यह समाचार जब सेठ कमलापतिकी धर्मपत्नी ने सुना तो वे तुरन्त महाराज के दर्शनों को आयीं। ये सेठानी सुप्रसिद्ध उद्योगपति सेठ पद्मपति सिंहानिया की माताजी हैं। पहले से ही साधुसेवामें इनकी बहुत रुचि है। श्रीमहाराजजी को देखकर ये अत्यन्त भावविभोर हो गयीं, मानो उनको पूर्वपरिचिता हों। उन्होंने श्रीमहाराजजीका अपूर्व स्वागत किया और अत्यन्त आग्रह करके कई दिन कानपुरमें रोके रखा। यहाँभी सहस्रों नर-नारियों ने आपके दर्शन और सत्संग से लाभ उठाया।

कानपुरसे चलकर हम लोग फतहपुर पहुंचे। यहाँ के एक सुप्रसिद्ध वकील श्रीशंकरलालजीने आपका बड़े समारोहसे स्वागत किया। ये अपनेको श्रीमहाराजजीका शिष्य मानते थे। इनके शिष्यत्व ग्रहण करनेकी घटना बडी विचित्र है, एक रात्रिमें इन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर श्रीमहाराजजी ने बताया कि मैं रामघाट में रहता हूँ। वकीलसाहब उठकर दूसरेही दिन रामघाट गये और वहाँ आपको देखकर श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया।

फतहपुर तक तारकोलकी सड़क पर चलनेके कारण श्रीमहाराजजीके तलवे घिस गये थे और उनमें रुधिर झलकने लगा था अतः वकील साहब की धर्मपत्नी और पुत्री ने आपके चरणों में मखमल की गद्दियाँ बाँध दीं। वहाँ तीन दिन ठहरकर आपने

पुनः यात्रा आरम्भ की और विभिन्न स्थानोंमें ठहरते एकादशीके दिन प्रयागराज पहुंचे। यहाँ अनूपशहर वाले पं० शिवशङ्करजी कई दिनों से आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यद्यपि मेले की बहुत भीड़ थी तथापि दैवयोग से अनायास ही उनसे हमारी भेंट हो गयी। श्रीमहाराजजीको देखते ही वे हर्षोल्लाससे उछल पड़े और उन्होंनेही हम सबके फलाहारकी व्यवस्था की। फलाहारके पश्चात् सब लोग झूसी में ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी के आश्रम पर पहुंचे।

श्रीब्रह्मचारीजी का महाराजजी के प्रति बड़ा अनुराग था। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह पर ही आप झूसी पधारे थे। ब्रह्मचारीजीने अपूर्व प्रेमका परिचय दिया और स्वागत-सत्कारके पश्चात् सबको यथायोग्य विश्राम कराया। ब्रह्मचारीजी नित्यप्रति स्वयं डोंगी खेकर बाबाको त्रिवेणीस्नान कराने के लिये ले जाया करते थे। साथही दूसरी डोंगियोंपर अन्यान्य भक्तगण जाते थे। श्रीगङ्गाजी में जाते और आते समय हरिनामसंकीर्तन की अलौकिक शोभा होती थी।

श्रीब्रह्मचारीजी के यहाँ कीर्तन, कथा एवं सत्संग की बड़ी सुन्दर दिनचर्या थी। श्रीमहाराजजी वहाँ के प्रत्येक कार्यक्रम में सम्मिलित होते थे। एक ओर तैलधारावत् अखण्ड संकीर्तन चलता रहता था तथा दूसरी ओर कथा-प्रवचनादिका कार्यक्रम रहता था। ब्रह्मचारीजी नित्यप्रति नये-नये विद्वान् और महात्मा-ओंको लाकर उनके प्रवचन कराते थे। इसी जगह हमें पहले-पहले श्रीमद्भागवतके प्रकांड पण्डित श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी की कथा सुनने को मिली। इनकी कथा सुनकर श्रीमहाराजजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने महाराजजी से वेदसम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। उनके आपने ऐसे स्पष्ट उत्तर दिये कि पण्डितजीका चित्त सदाके लिये आपकी ओर आकर्षित हो गया। आगे चलकर आप ही

संन्यास लेनें पर स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रीमहाराजजीका निर्वाण होने पर आपही उनके आश्रमके ट्रस्टाधिपति हुए। इनके अतिरिक्त श्रीजयरामदासजी 'दीन' और बाबा रामदासजी ग्वालियरवालोंके भी रामचरितमानस पर बड़े विलक्षण प्रवचन होते थे। इनमें दोनजी तो पूर्वपरिचित थे, परन्तु बाबा रामदासजीसे यहीं परिचय हुआ और वह प्रेमसंबन्ध ऐसा जुड़ा जो अन्ततक अक्षुण्ण बना रहा। स्वामी श्रीकरपात्रीजी और विरक्तप्रवर श्रीरामदेवजी मेले के बीच में ठहरे हुए थे। ये दूसरे-तीसरे दिन अवकाश पानेपर श्रीमहाराजजीसे मिलनेके लिये आते रहते थे।

विरक्तमण्डल की कुटियायें झूसी से प्रायः तीन मील दूर थीं। एक दिन श्रीमहाराजजी करपात्रीजीको साथ लेकर विरक्तों से मिलनेके लिये गये। उस समय उनके साथ प्रायः पाँच सौ मनुष्य होंगे। वहाँके प्रायः सभी गण्य-मान्य विरक्त महाराजजीसे परिचित थे। उनमें स्वामी श्रीऋषभदेवजी, श्रीसच्चिदानन्दजी, श्रीजीवन्मुक्तजी और श्रीमंगलहरिजी आदिके नामविशेष उल्लेखनीय हैं। बाबा इन सबकी कुटियाओं पर जाकर इनसे मिले। आपने श्रीकरपात्रीजीसे सत्संग चलानेके लिये कोई प्रश्न करने का संकेत किया। श्रीकरपात्रीजीने पूछा, "जीवके कल्याण का प्रधान साधन क्याहै?"इस पर श्रीऋषभदेवजी बोले, "कल्याण तो सर्वत्याग से होता है, आप लोग तो इतनी भीड़ लेकर आये हैं। इसमें कल्याण कहाँ ?तब करपात्रीजीने हँसकर कहा, "महाराज! जब विवेक द्वारा सम्पूर्ण प्रपञ्च का निषेध हो गया तो इन मच्छरोंसे हमारी क्या हानि हो सकती है?"इसी प्रकार कुछ देर सत्संग चलता रहा। तदनन्तर महाराजजी कुटीपर लौट आये इसी प्रकार आप प्रत्येक मण्डलेश्वर के कैम्प में जाकर उनसे मिले।

साधु-महात्माओं का वृहद् भण्डारा था। उसमें आठ-दस मण्डलेश्वर भी एकत्रित हुए थे। श्रीमहाराजजी भी आमन्त्रित होकर गये। आपके साथ गीताप्रेस गोरखपुरके संस्थापक श्रीजयदयालगोयन्दकाभी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने उपस्थित महात्माओं के आगे यह प्रश्न रखा कि ज्ञान हो जानेपर अविद्यालेश रहता है या नहीं ? प्रायः सभी मण्डलेश्वरों का यही मत था कि यदि अविद्यालेश नहीं रहेगातो ज्ञानीके प्रारब्धका भोग कैसे होगा और गुरु-शिष्य परम्परा भी कैसे चलेगी ? इसलिये भगवान् शङ्कराचार्यने अविद्यालेश को स्वीकार किया हैं और इसे मानना भी चाहिये। यही प्रश्न जयदयाल ने श्रीमहाराजजी से भी किया। आप इसके उत्तर में चुप रहे। किन्तु जब आपका उत्तर सुनने के लिये अत्यन्त उतावलेहोकर उन्होंने एकान्तमें फिर आपसे यही प्रश्न कियातो आप बोले, "भैया ! उत्तर तो हो गया। फिर क्या पूछते हो ? रज्जुका ज्ञान हो जानेपर भी क्या उसमें अध्यस्त सर्पकी पूँछ रह जाती है ? इसपर जयदयालजीने पुनः आपत्ति की, "भगवान् शंकराचार्यजीने तो माना है।" तब महाराजजी बोले, "भगवान् शंकराचार्य स्वप्न पुरुष थे या स्वप्नद्रष्टा ?" यह उत्तर पाकर श्रीजयदयालजी गद्‌गद् हो गये तथा चुप हो रहे।

श्रीब्रह्मचारीजी के यहाँ जो अनुष्टान चल रहा था उसकी पूर्णाहुति हरिहाटके महोत्सवके साथ हुई। उस समय जगह-जगह भजन, कीर्तन, सदुपदेश, कथा, प्रवचन तथा भगवल्लीलाओं का क्रम चलता था। अन्तमें अनुष्ठानमें ब्रती साधकोंने श्रीमहाराजके सम्मुख भविष्यमें भी नामजप करते रहनेकी प्रतिज्ञा करके अपना मौन खोला तथा स्वामी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वतीने दीक्षान्त भाषण दिया।

उत्सव के पश्चात् श्रीब्रह्मचारीजी ने सन्तमण्डली के साथ बहुत दिनोंसे लुप्त हुई तीर्थराज प्रयागकीपरिक्रमा करनेका विचार

प्रकट किया। यह परिक्रमा प्रायः पच्चीस मीलकी थी। श्रीमहाराजजीने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर क्या था ? श्रीमहाराजजीका सम्पूर्ण परिकर, बाबा श्रीरामदासजीका संत-समाज और ब्रह्मचारीजीकी कीर्तनमण्डलीके अतिरिक्त और भी सहस्रों नर-नारी परिक्रमा में सम्मिलित हो गये। प्रस्थानके पूर्व ब्रह्मचारीजीके कोषाध्यक्षने बताया कि उनके पास केवल डेढ़ आना शेष है। परन्तु ब्रह्मचारीजी तो प्रभुपर निर्भर रहनेवाले थे। उन्हें इसकी क्या चिन्ता हो सकती थी। उन्होंने तो 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव' बोलकर कूचका आदेश दे दिया। बस, यात्रा आरम्भ हुई और मार्गमें स्थान-२ पर कथा, कीर्तन, सत्संग, भजन, प्रवचन, रासलीला, रामलीला, आदि की अपूर्व धूम मची रही। इस प्रकार तीन चार दिनमें वह यात्रा सम्पूर्ण हुई। खर्चेका सब प्रबन्ध स्वयं ही होता रहा।

काशी और अयोध्यामें

प्रयाग-परिक्रमाके पश्चात् श्रीमहाराजजी काशी पधारे। वहाँ हम लोगोंके ठहरनेकी व्यवस्था खुरजावाले सेठगौरीशंकर गोइनका की ओरसे ज्ञानवापीके समीप उन्हींकी कोठीमें थी। सेठजी यद्यपि इस समय बाहर गये हुए थे, किन्तु उनके आदेशानुसार उनके मुनीमने सब व्यवस्था बड़ी श्रद्धा और प्रेमपूर्वक की थी। प्रातः-काल दो-ढाई मील चलकर हम सब लोग अस्सीघाटसे आगे नित्य-कृत्यसे निवृत्त होते थे और वहाँसे लौटते समय भगवान् विश्व-नाथ और अन्नपूर्णाके दर्शन करते थे।

इन दिनों हिन्दूविश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार थे अनूपशहरवाले पं०गङ्गाशंकर मेहता। ये हमारे श्रीमहाराजजीके पूर्वपरिचित और प्रेमी थे। इन्होंने हम सबको ले जाकर विश्वविद्यालय दिखाया। वहाँका पुस्तकालय भी बड़ा विशाल था। उसमें संसार के सभी

देशोंकी पुस्तकें संगृहीत थीं। हमने उस पुस्तकालयकी छतपर बै-कर संकीर्तन किया। मेहताजीनेही महामना पं०मदनमोहन माल-वीयको श्रीमहाराजजीके आगमन की सूचना दी। सुनते ही श्री-मालवीयजी मेहताजीके स्थानपर पधारे। दोनों महापुरुष परस्प-लिपट गये और प्रेमाश्रु बहाने लगे। इन दिनों श्रीमालवीयजं दशाश्वमेध घाटपर हरिजनों को 'ॐ नमःशिवाय' मन्त्रकी दीक्ष दिया करते थे। इस विषयमें उन्होंने पुराणोंसे अनेकों प्रमा संगृहीत किये थे। उस पुस्तककी कई प्रतियां उन्होंने श्रीमहाराजजं को भेंट कीं।

इस प्रकार कुछदिन काशीमें रहकर आप पुनः प्रयाग लौट आये। अब चैत्रमास आरम्भ होने पर श्रीब्रह्मचारीजीने अयोध्य चलनेकाप्रस्ताव रखा। तदनुसार श्रीमहाराजजो,ब्रह्मचारीजी औ ग्वालियरवाले बाबा रामदासजीने अपने-अपने भक्तमंडल सहि अयोध्याको प्रस्थान किया। सब मिलाकर पचास-साठ मूर्त्ति होंगे। मार्गमें जहाँ भी ठहरते महाराजजीके भक्तमंडल और बाबा राम-दासजीके विरक्तमंडलकी वृक्षोंके नीचे अलग-अलग रसोई बनत तथा साथ मिल-जुलकर संकीर्तन एवं सत्संग होता। इस यात्रा भी बड़ा अलौकिक आनन्द रहा।

इस प्रकार कई दिनकी यात्राके पश्चात् हम अयोध्या पहुंचे। यह श्रीरामनवमी का अवसर था। सड़कोंपर अपार भीड़ थी। श्रीमहाराजजी विचारने लगे कि इस भीड़ में होकर कैसे जायें। इतने ही में किशनसिंह दरोगाने घोड़ेसे उतरकर आपके चरणोंमें प्रणाम किया। ये अतरौलीके पास एक गाँवके रहनेवाले थे और इनका सारा घर ही श्रीमहाराजजीका अनन्यभक्त था। इन दिनों ये फैजाबाद में थे। और इनकी नियुक्ति मेलाका प्रबन्ध करने के लिये अयोध्यामें थी। वे बोले, "मैं तो कई दिनोंसे आपकी प्रतीक्षा

कर रहा था।" बस, वे सब भीड़को हटाते हुए आगे-आगे चले और हम सब लोग बड़ी सुविधासे हनुमतनिवास पहुंच गये। यहीं एक स्वतंत्र मकानमें हम सब ठहरे। यहाँ रहकर हमने यथासमय हनुमानगढ़ी, कनक भवन और जन्मस्थान आदि सभी प्रमुख स्थानोंके दर्शन किये।

अयोध्याके अनेकों संतोंसे भी आप उनके स्थानों पर जाकर मिले। उनमें स्वामी श्रीरामवल्लभाशरणजी, श्रीमौनीबाबाजी और श्रीअंजनीनन्दनशरणजी (शीतलःसहायजी) के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। श्रीरामवल्लभाशरणजी उस समय अयोध्याके प्रमुख सन्त थे। वे बहुत बड़े विद्वान्, तेजस्वी और भगवान् के अनन्य भक्त थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। अब वे बहुत वृद्ध हो गये थे और उनके स्थानकी व्यवस्था उनके प्रधान शिष्य श्रीरामपदार्थदासजी वेदान्ती करते थे। जिस समय श्रीमहाराजजी जानकीघाटपर उनके स्थानमें गये उस समय वेदान्तीजीकी कथा हो रही थी।

श्रीमौनीबाबाकी छावनी सरयूतटपर अयोध्याके दक्षिण में थी। कहते हैं, एकबार इनके गुरुजीके यहाँ बहुत बड़ा भण्डारा था। ये सरयूस्नानको गये हुए थे। जब लौटे तो स्थानका फाटक बन्द पाया। वहाँ बहुतसे दरिद्रनारायण (कंगले) भी इकट्ठे हो गये थे। इनके फाटक खुलवानेपर वे सब भी भीतर घुस गये। कंगलोंको भीतर आया देख सन्तोंकी पंगत प्रसाद छोड़कर खड़ी हो गयी। इससे इनके गुरुमहाराजको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने इन्हें आदेश दिया कि तुरन्त हमारे सामने से चले जाओ। वे क्या करते? भीगे कपड़े पहने उल्टे पाँव वहाँ से चले आये और सरयूतट पर बारह वर्षतक मौन रहकर तपस्या करने लगे, इससे इनकी बड़ी ख्याति हो गयी और एक राजा इनका शिष्य हो गया

फिर तो जैसी साधुसेवा गुरुजीके स्थानपर होती थी वैसी ही इनके यहाँ भी होने लगी। इस समय इनकी आयु सौ वर्षके लगभग थी और ये बहुत बीमार थे। बोलनेकी भी शक्ति नहीं थी। इन्होंने लेटे-लेटेही श्रीमहाराजजीको नमस्कार किया। इनके स्थानपर 'श्री राम जय राम जय जय राम' की अखण्ड ध्वनि होती रहती थी।

मानसपीयूष के सम्पादक श्रीअंजनीनन्दनशरणजी भी बड़े विलक्षण महात्मा थे। वे जैसे भगवत्प्रेमी थे वैसे ही सन्तप्रेमी भी थे। उनका नियम था कि वे केवल सन्तोंका उच्छिष्ट प्रसादही पाते थे। एक दिन उन्होंने परिकर सहित श्रीमहाराजजीको आमन्त्रित किया। तरह-तरहके व्यञ्जन तैयार करके सबको भोजन कराया और फिर हाथोंमें थाली लेकर सब सन्तोंसे उच्छिष्ट प्रसाद की भिक्षा माँगी। भगवान्की आरती करते समय वे ऐसे प्रेम-विह्वल हुए कि आरतीकी थालीभी दूसरोंको सँभालनी पड़ी। जब श्रीमहाराजजी वहाँसे चलने लगे तो आप उनके चरणों पर सिर रखकर साष्टाँग पड़ गये। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उन्होंने महाराजजीके पैर न छोड़े तो महाराजजीने ब्रह्मचारीजीकी ओर देखा। वे क्या करते, बस, अंजनीनन्दनशरणजीके चरणों पर सिर रखकर वे साष्टांग पड़ गये। इस पर अंजनीनन्दनशरणजीके एक भक्त ब्रह्मचारीजीके चरणोंपर सिर रखकर बैठ गये। कोई किसीको छोड़ता नहीं था। यह अद्भुत प्रसङ्ग देखकर श्रीमहाराजजी के सब भक्त कीर्तन करते हुए इस दण्डवतशृङ्खलाकी परिक्रमा करने लगे। कुछ देर में यह शृङ्खला खुली। तब सब लोग कीर्तन करते अपने निवासस्थान पर आये।

अयोध्या में रहते हुए श्रीमहाराजजी जिस घाट पर सरयू-स्नानके लिये जाते थे वहाँ श्रीसीता और रामके दो स्वरूप भी रहते थे। उनका स्वाभाविक ही आपसे बहुत प्रेम हो गया।

अयोध्यामें जहाँ कहीं उनकी झाँकी होती वे श्रीमहाराजजीको भी बुलाते थे। ये दोनों स्वरूप जैसे सुन्दर थे वैसे ही दयालु भी थे। एक बार उन्होंने एक वैष्णव साधुको उदास देखा। उदासी का कारण पूछने पर साधुने बताया कि मैं श्रीरामेश्वरजीकी यात्रा के लिये जाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा तो बहुत उत्कट है परन्तु पासमें पैसा है नहीं। यह सुनकर स्वरूप चुप हो रहे। रात्रि को उन्होंने उस साधुके वस्त्रों में रामेश्वरकी यात्रा के लिये पुष्कल रुपये बाँध दिये। रुपयोंकी पोटली देखकर वह साधु बहुत प्रसन्न हुआ और उसी दिन यात्राके लिये चला गया।

अलीगढ़ निवासी बाबू रामस्वरूप केला के बड़े भाई श्री-मक्खनलाल केला उस समय जिला बस्तीमें डिप्टी कलक्टर थे। वे एक दिन सम्पूर्ण भक्तमण्डलके सहित श्रीमहाराजजी को सरयू के दूसरे तटपर जिला बस्तीके अन्तर्गत हरैया तहसीलके विक्रमज्योति डाक बँगलेपर ले गये। इसके लिये उन्होंने दो नौकायें भेजी थीं। उन्हींके द्वारा वहाँकी यात्रा हुई। जिस डाक बँगलेपर अँग्रेजों का निवास और अँग्रेजी विलासिता का बाहुल्य रहा था। उसी पर भगवान्‌कीपूजा, सन्त-महात्माओंकी सेवा, भगवन्नाम कीर्तन और कथा-सत्संगादिका शुभ सयोग देखकर श्रीब्रह्मचारीजी आनन्दावेश में विह्वल होकर रोने लगे। उस दिन एकादशी तिथि थी। अतः सभी को श्रीकेलाजीने फलाहारी भोजन कराया।

अयोध्यासे प्रस्थान करने पर सायंकालमें सब लोग गुप्तार-घाट पर ठहरे। यह स्थान अयोध्यासे प्रायः तीन मील फैजाबादके समीप सरयूतटपर है। यहाँका दृश्य बड़ा सुन्दर है। इसी स्थानसे भगवान् रामने प्रजाजनके सहित परमधाम साकेतलोकको प्रस्थान किया था। यहाँ सुप्रसिद्ध संत श्रीनारायणस्वामीके कृपापात्र श्री-मौनी बाबा मिले, जो टाटकी लँगोटी लगाते थे। उनके प्रेमपूर्ण

आग्रहसे यहाँ श्रीमहाराजजी दो-तीन दिन रुके। श्रीनारायणस्वामी जीकी माताजी तथा भाईने सम्पूर्ण भक्तगण के भोजनादि की व्यवस्था की।

लखनऊ की ओर

ब्रह्मचारियोंके कुछ प्रेमियों ने झूसी में ही श्रीमहाराजजी से लखनऊ पधारने की प्रार्थना की थी। आपने उन्हें वहाँ जाने का वचन भी दे दिया था। अतः अब श्रीमहाराजजीकी सम्मति से आपने अपने भक्तपरिकर सहित लखनऊ की ओर प्रस्थान किया। जब लखनऊ प्रायः १८ मील रहा तब एक दुर्घटना हो गयी। मार्ग में दोपहर के समय एक बगीचे में विश्राम हुआ। वहाँ ब्रह्मचारी रमाकान्त और मास्टर राधावल्लभ मिलकर रोटी बनाने लगे। उस बगीचेमें डंगारा मधुमक्खियों का छत्ता था। धूँआ लगने से वे क्षुब्ध हो गयीं और सबको काटने लगीं। लोग इधर-उधर दौड़-कर अपने को बचाने लगे। जिन्होंने बचनेके लिये पानीमें डुबकी लगायी उनके आस-पास भी मक्खियाँ मँडराती रहीं और जब उन्होंने पानीसे सिर निकाला तभी उनके डंक मार दिया। श्रीमहा-राजजीको भी कई जगह मक्खियोंने काटा। भक्तोंने उनके ऊपर कम्बल डाल दिया और कहा कि भागिये। वे उठकर जैसेही भगे कि गिर गये। इससे उनके घुटने में बहुत चोट लगी। लखनऊ पहुँचने पर डाक्टरोंने मधुमक्खियोंके डंक निकाले और उस चोट की भी चिकित्सा की।

जिस दिन मधुमक्खियोंने महाराजजी को काटा उसी रात फतहपुरके तत्कालीन पुलिस सुपरिण्टैण्डैण्ट ने स्वप्नमें यह घटना देखी। उन्होंने फोन द्वारा इस स्वप्नकी सूचना महाराजजीके भक्त सरकारी वकील श्रीशकरलालजीको दी। सुनते ही वे मोटरद्वारा आये और वैसीही घटना देखकर आश्चर्यचकित हो गये। जिस सड़कसे श्रीमहाराजजी लखनऊ पहुंच रहे थे उसीपर सेठ जमना-

लाल बजाज के साथ महात्मा गाँधीजी लखनऊ की ओर से टह-
लने के लिये आ रहे थे। श्रीब्रह्मचारीजी ने आपसे पूछा कि
महात्माजी से मिलाऊँ ? परन्तु इस स्थिति में आपने महात्माजी
से मिलने की अनिच्छा प्रकट की। अतः मिलना न हो सका।

लखनऊ में ब्रह्मचारीजी के एक प्रेमी भक्त प्रोफेसर लुम्बा
थे। उनके नवनिर्मित भवन में प्रवेश करके श्रीमहाराजजी ने
उसका उद्घाटन किया। लुम्बाजी का सारा परिवार ही अत्यन्त
भगवद्भक्त और सन्तप्रेमी था। यहाँ श्रीमहाराजजी और उनके
परिकर को पुराने शहर के एक मन्दिर में ठहराया गया था।
वहीं विशेष रूप से सत्सङ्ग एवं कथा-कीर्तनादि भी होते थे।
दर्शनार्थियों की भीड़ से मन्दिर खचाखच भरा रहता था। श्री
महाराजजी के सत्सङ्ग और बाबा रामदास जी की रामचरित-
मानस की कथा से वहाँ सहस्रों नर-नारियों ने लाभ उठाया।
इस प्रकार प्रायः दस दिन तक वहाँ सन्त समागम की धूम रही।

इन दिनों यहाँ अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक अधि-
वेशन था। अतः कांग्रेस के प्रायः सभी प्रधान नेता लखनऊ में
आये हुए थे। वरहजवाले बाबा रामदासजी की सहायता से मुनि-
लालजी ने महात्मा गाँधीजी के साथ श्रीमहाराजजी की भेंट का
समय निश्चित्त किया। इस समय श्रीब्रह्मचारी जी कहीं बाहर
गये हुए थे। अतः महाराजजी स्वामी ब्रह्मचैतन्यपुरी, बाबा राम-
दास और मुनिलाल को साथ लेकर महात्माजी के निवास-स्थान
पर गये। सेठ जमुनालालजी ने भेंट की व्यवस्था की। महात्मा
जी ने खड़े होकर सन्तों का अभिवादन किया। परन्तु सामान्य
कुशल प्रश्न के सिवा और कोई विशेष बात नहीं हो सकी। यह
महात्माजी के यहाँ रामचरितमानस के गान का समय था। गान
समाप्त होने पर एक सज्जन महात्माजी को कुछ आय-व्यय का
लेखा सुनाने लगे, अतः सब लोग समय समाप्त हुआ समझकर

वहाँ से उठ आये।

लखनऊ से बाबा रामदासजी तो ग्वालियर चले गये और ब्रह्मचारीजी सनातन धर्म सभा के उत्सव में कानपुर। महाराज जी को जिला आगरे में खाँड़ा पहुँचना था। अतः वे अपने परिकरसहित वहाँ के लिये चले।

खाँड़े का ब्रह्मसत्र

लखनऊ से खाँड़े तक की यात्रा भी बड़ी अलौकिक थी। परन्तु यहाँ स्थानाभाव के कारण उसका विवरण नहीं दिया जा सकता। खाँड़ा जिला आगरे में चमरौला स्टेशन के समीप एक गाँव है। यहाँ पं० चोखेलाल, घूरेलाल और प्यारेलाल आदि कुछ वेदान्तनिष्ठ सत्संगी प्रतिवर्ष कुछ महात्माओं को आमन्त्रित करके ब्रह्मसत्र किया करते थे। इस वर्ष उन्होंने इस आयोजन में श्री महाराजजी को भी आमन्त्रित किया। आपने उसमें सम्मिलित होना स्वीकार करते हुए उनसे कहा कि इस वर्ष का सत्र अपूर्व होना चाहिये। अतः इस बार उन्होंने बड़ी तैयारी की थी और वहाँ की जनतामें भी बड़ी जागृति थी। सत्रमें पधारनेके लिये आस-पास के सभी प्रमुख संत आमन्त्रित किये गये थे। जो महापुरुष पधारे उनमें पण्डित स्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी,स्वामी निर्मलानन्दजी, श्रीकरपात्रीजी, परमहंस रामदेवजी, विरक्त श्रीसच्चिदानन्दजी और बालब्रह्मचारी पं०जीवनदत्तजीके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। श्रीमहाराज जी भी कई स्थानों में होते ठीक समय पर खाँड़ा पहुँच गये। उनके पहुँचते ही उत्सवकी शोभा बहुत बढ़ गयी नित्यप्रति दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ आती थी और जबतक जनता उनके दर्शन नहीं कर लेती थी तबतक कोई कार्यक्रम आरम्भ नहीं हो पाता था। दर्शनार्थियों की सुविधाके लिये आपको ऊँचे तख्त पर विराजमान करा दिया जाता था। फिर भी चरणस्पर्शके लिये इतना संघर्ष होता था कि कई तख्त टूट गये। इस धक्का-मुक्कीमें

एक वुढ़िया आपके पैरपर गिर गयी। तवसे उस चरणमें नाड़ीका कोई ऐसा व्यतिक्रम हो गया कि कई वर्षों तक जलन-सी होती रही और आपको विशेष चलने में भी कठिनता हो गयी।

इस उत्सव में योगवासिष्ठ, उपनिषद्, गीता और उपदेश-साहस्री आदि वेदान्तग्रन्थोंपर प्रवचन होते थे। सायंकाल में चार से छः बजे तक वेदान्तसम्बन्धी प्रश्नोत्तर होते थे, जिनके लिये सभी को छूट थी। कोई भी सज्जन अपनी समस्या रख सकते थे, उसपर उपस्थित महापुरुष अपना-अपना विचार व्यक्त करते थे। इस उत्सवमें अवागढ़के राजासाहव श्रीसूर्यपालसिंह अपनी कीर्तन-मण्डली के सहित आये हुए थे। वे नित्यप्रति बैण्डबाजे के साथ श्रीमहाराज के सामने कीर्तन किया करते थे। उत्सवकी समाप्ति पर महाराज उनकी प्रार्थना से अवागढ़ पधारे। यह उत्सव सच-मुच वहुत सफल हुआ। पं०चोखेलाल आदि स्वभाव से ही अत्यन्त सन्तप्रेमी हैं। उन्होंने सन्तों की सेवा भी खूब की।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

इसके कुछ वर्षों पश्चात् श्रीवृन्दावनधाम में [महाराज जी का आश्रम बना। उसकी नीव व्रजमण्डल के सुप्रसिद्ध संत श्री ग्वारिया बाबाजी से रखवायी गयी थी। आश्रम हो जाने पर उसका उद्घाटनोत्सव ऐसी धूमधाम से हुआ कि जैसा श्रीमहा-राजजी के जीवनकाल में न तो उससे पहले ही हुआ था और न उसके पश्चात् ही। श्रीवृन्दावन धाम में भी हमने ऐसा विशाल उत्सव और कोई नहीं देखा।

किन्तु इस उद्घाटन समारोह के कुछ दिन पूर्व मुझ से एक अपराध बन गया था। मैंने जब अपना अपराध स्वीकार कर लिया तो श्रीमहाराजजी ने तीन वर्षों के लिये अपने चरणों से

अलग करके मुझे कठोर दण्ड दिया। मैंने बहुत प्रार्थना की और अनेक प्रकार से रुदन भी किया, परन्तु आपने उसपर कुछ भी ध्यान न दिया। इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे प्रभु जैसे दयालु और कृपालु थे वैसे ही निजजननिष्ठुर भी थे। बाबूराम सहायजी ने मेरे लिये बहुत बहस भी की परन्तु हमारे लिये तो इस बार आप अत्यन्त कठोर बन गये। श्रीगोसाईंजी ने भी कहा है—

'जदपि परम दुख पावहि, रोवइ बाल अधीर।
व्याधि नास हित जनति पै, गनति न सो सिसु पीर॥'

संस्कृत के किसी कविकी भी उक्ति है—'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।' इसको गोसाईं जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर, समुझि परै कहु काहि॥'

श्रीमहाराजजी के चरणों से बिछुड़ने पर हमारी दशा मणिविहीन फणीके समान हो गयी। उस व्याकुलतामें मेरे भीतर ऐसी प्रेरणा हुई कि अब मुझे केवल प्रभु का ही सहारा लेना चाहिये। अतः मैंने पुनः श्रीमहाराजजीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पाँच हजार विष्णुसहस्रनाम-पाठ करनेका संकल्प किया।

उन दिनों मैं अत्यन्त दुःखी था। फिर भी अपने अनुष्ठान को नियमानुसार करता, मैं कर्णवाससे विचरता भगवानपुर पहुँचा वहाँ स्वामी श्रीशास्त्रानन्द जी महाराज अपनी कुटी पर ही थे। आप श्रीमहाराजजी के अत्यन्त प्रेमी हैं और श्री महाराजजी भी आपसे अत्यन्त स्नेह रखते थे। मैंने सोचा कि यदि मैं आपसे मिलूँगा तो आप मुझ से श्रीमहाराजजी का समाचार और उनसे अलग होकर मेरे विचरने का कारण अवश्य पूछेंगे और मुझे उस

का उत्तर देना एक जटिल समस्या होगी, अतः मैं उनके पास न जाकर वहाँ से तीन मील दूर बुगरासी नामक गाँव में चला गया और पाँच महीने तक वहीं अपना अनुष्ठान करता रहा।

इन्हीं दिनों श्रीवृन्दावनके आश्रमका उद्‌घाटनोत्सव आरम्भ होनेवाला था। उसके लिये विभिन्न महानुभावोंके पास निमन्त्रण पत्र गये थे। स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजीको लानेके लिये उनके पास एक आदमी भी आया था। उसके साथ आप बुगरासी होते हुए श्रीवृन्दावन जा रहे थे। आपको मेरे विषयमें लोगोंसे यह सूचना मिल चुकी थी कि बुगरासीमें एक सन्त आये हुए हैं, जो दिनभर केवल पाठ करते रहते हैं, केवल रात्रि के समय ही एक-आध बातचीत करते हैं? पूछने पर अपना कोई परिचय नहीं देते, कहते हैं कि मैं पूर्व से विचरता हुआ आया हूँ।

श्रीशास्त्रानन्दजीने इस सन्तसे मिलनेका यह अच्छा अवसर समझा। अतः वे मेरी कुटीपर आकर खड़े हो गये। मैंने देखते ही आसन से उठकर उनका चरणस्पर्श किया। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा, "ओहो! रामदासजी ही अच्छे सन्त के नामसे यहाँ विख्यात हो रहे हैं—यह तो मुझे मालूम ही नहीं था। आपके श्रीमहाराजजीकी कुटियापर वृन्दाबनमें महान् उद्घाटनोत्सव होनेवाला है। आप भी साथ-साथ चलिये।" मैंने कहा, "श्रीमहाराजजी! मुझसे अप्रसन्न हैं। अतः जब तक वे वहाँ आने की आज्ञा न करें तब तक मैं जाने में असमर्थ हूँ। आप उन से मेरी चर्चा करें और मेरी ओरसे प्रार्थना भी कर दें।" आपने मुझ से पुनः पुनः चलने का आग्रह किया तो भी मैं वृन्दावन न जा सका। अन्तमें आपने वहाँके लिए प्रस्थान किया। इस समय मेरे चित्तकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी।

श्रीशास्त्रानन्दजी ने वृन्दाबन पहुँचते ही मुझे न बुलानेका

कारण पूछा। इस पर श्रीमहाराजजी यह कहकर चुप हो गये कि मैं कब मना करता हूँ चाहे कोई आवे, कोई जाय। जब उत्सवका सातवाँ दिन था तब महाराजजी ने अपने भक्तोंसे कहा, "बेटा ! उत्सवने तो बड़ा विशाल रूप धारण कर लिया।" आपको प्रफुल्लित पाकर श्रीचैतन्यदेवजीने कहा, "इस समय रामदासजी की अनुपस्थिति खटकती है। यदि आपकी आज्ञा हो तो उन्हें भी बुला लिया जाय।" श्रीमहाराजजी ने कहा, "तू अपनी ओर से आदमी भेजकर उसे तुरन्त बुला ले।" तब चैतन्यदेवजी ने मुझे लाने के लिये एक ब्रह्मचारी को भेजा। श्रीमहाराजजी का शुभ संदेश पाकर मैं तो हर्षोल्लास से उछल पड़ा। मेरे तन-मन की सुधि जाती रही और मैं तुरन्त वहां से चल दिया। मोटर और रेलद्वारा यात्रा करके मैं वृन्दावन स्टेशनपर पहुँचा और वहां से किसी प्रकार गिरता-पड़ता आश्रमके भीतर पहुँच श्रीमहाराजजी के चरणों में लोटकर रोने लगा। किन्तु महाराजजी ने मेरी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया और न मेरी राजी-खुशी ही पूछी। संध्या समय चैतन्यदेवजीसे कह दिया कि रामदासको किसी अच्छी कुटी में ठहरा दो और उसके खाने-पीने पर ध्यान दो।

अब मैं आनन्दपूर्वक उस समारोह का सुख लेने लगा। फाटकके बाहर ही संकीर्तन के लिये एक पृथक् मण्डप बना था। उसमें हर समय प्रायः सौ व्यक्तियों द्वारा अखण्ड संकीर्तन होता रहता था। आश्रमके भीतर जो मण्डप था उसमें प्रातःकाल प्रमुख वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजदासजी द्वारा श्रीमद्भागवतका साप्ताहिक प्रवचन होता था। मध्याह्नोत्तर अनेकों सन्त और विद्वानोंके प्रवचन होते थे तथा रात्रि में विभिन्न रासमण्डलियाँ प्रभु की सरस रासलीलाओंका अनुकरण करती थीं। इन दिनों पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज भी वृन्दाबन में ही मिर्जापुरवाली धर्मशालामें ठहरे

हुए थे। उन्हें भी उत्सवके लिए आमन्त्रित किया गया। उस पर आपने कहा कि यदि श्रीमहाराजजी हमारी दो बातें स्वीकार करें तो मैं उत्सव में सम्मिलित हो सकता हूँ—प्रथम तो श्रीहरिबाबा जी संकीर्तन के आरम्भ में जो ओंकारकी ध्वनि करते हैं वह न करें, क्योंकि शूद्र और स्त्रियोंको ओंकारके उच्चारणका अधिकार नहीं है और संकीर्तनमें तो सभी सम्मिलित होते हैं। दूसरी बात यहकि कथा या प्रवचनके समय वक्ताके आसनपर कोई ब्राह्मणेत्तर न बैठें। उनका यह सन्देश पं० श्रीलालजी याज्ञिक लाये। वे ही उत्सवके मञ्चव्यवस्थापक थे। उनसे श्रीमहाराजजी ने कहा, "भैया! संत के मुख से जो भी निकलता है उसे रोकने में कौन समर्थ है? श्रीहरिबाबाजी जो कुछ करते हैं सो सब उचित ही है। जहाँ तक आसन पर बैठने की बात है वहाँ मेरे विचार से तो सभी सन्त पूजनीय हैं। किसे छोटा या बड़ा कहें। हमारे यहाँ तो सभी सन्त आसनपर बैठकर उपदेश देंगे। करपात्रीजी से कहना कि मैंने तो उन्हें बालक की हैसियत से बुलाया था न कि आचार्यकी हैसियतसे। वे कितने ही बड़े हों मेरी दृष्टि में तो आज भी वही बालक हैं जो नरवर पाठशालासे रामघाटमें मेरे पास आते थे।"पं०श्रीलालजीसे यह उत्तर पाकर श्रीकरपात्रीजीने कहा,"मैं बाबाके लिये तो बालक ही हूँ किन्तु मुझे शास्त्रमर्यादा का पालन तो करना ही होगा।" अतः वे उस उत्सवमें सम्मिलित नहीं हुए।

प्रायः दस दिनमें इस समारोहकी पूर्णाहुति हुई। उस समय बड़ा अपूर्व भण्डारा हुआ। श्रीमहाराजजी कमरमें दुपट्टा बाधकर स्वयं ही सब आगन्तुकोंका निरीक्षण करते थे। उनकी वह अद्भुत छवि देखते ही बनती थी। यद्यपि आगन्तुकोंकी संख्या अपार थी तथापि रात्रिको सोनेके समय श्रीमहाराजजो प्रत्येक व्यक्तिकी सुधि लिया करते थे। किसे भोजन मिला है, किसे नहीं मिला? किसे

सोने के लिये स्थान है, किसे नहीं है ? इत्यादि समस्त बातों का निरीक्षण वे स्वयं करते थे। यह उनकी परम दयालुता थी।

इस प्रकार यह अपूर्व और अद्भुत समारोह हुआ। किन्तु इसके समाप्त होते ही आप रात्रिके दो बजे हाथ में कमण्डलु ले वहांसे चल दिये। आस-पास सैकडों आदमी सोये पड़े थे, किन्तु आपके जानेकी आहट किसीको न मिली। यह आपको कोई नई बात नहीं थी। उन दिनों तो आप जब कहीं जाते तो इसी प्रकार चल देते थे। आपके चले जानेपर मैं वृन्दाबनसे चलकर ब्रह्माण्ड-घाट आ गया और पूर्ववत् अपना अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। इस प्रकार दस-बारह मास मैं ब्रह्माण्डघाटमें ही रहा। फिर बहुत दिनों तक मथुरा जिले के विभिन्न ग्रामों में विचरता रहा। बीच-बीच में जब विशेष विरह सताता तो एक-दो दिन के लिये श्रीमहाराजजी के पास जाकर दर्शन कर आता था।

मेरा तो अनुभव है कि जो भजन हमने विछोहके इन तीन वर्षोंमें किया वह पन्द्रह वर्षों तक श्रीमहाराजजी के साथ रहकर नहीं किया। मैं तो यही कहूँगा कि प्रभुपथके पथिकोंके लिये सयोग की अपेक्षा वियोग कहीं अधिक लाभदायक है। यद्यपि वियोग में घवड़ाहट और बेकली बहुत रहती है तथापि यह बेकली ही तो भजन का प्राण है। इसी से किसी कविने कहा है—'जो मजा है इन्तजारी में। वह न पाया वस्ले यारी में।' हाँ, आवश्यकता है वियोग के समय सहन-शीलता और धैर्यकी।

ब्रह्माण्डघाटके समीप ही श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव रहा करते थे। मैं उनसे मिलता रहता था। वे जब कभी श्रीमहाराजजी के समीप जाते तो उनके चरणोंमें मेरी व्यथा वर्णन करते। उनसे श्रीमहाराजजी कहा करते थे, "मैं अन्तस्तल से रामदास से बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि वह एकान्तमें रहकर भजनमें तल्लीन है। परन्तु

मैंने जो तीन सालका नियम किया है वह उसे अवश्य पूरा करना है। यह इसलिये है कि वह खूब भजन करे।" श्रीमहाराजजी की ये बातें सुनाकर गोविन्ददासजीने उन दुःखके दिनोंमें मुझे जो सुख पहुंचाया था उस उपकारको मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। किसी प्रकार वे विपत्तिके दिन कटे और पुनः सुखका सूर्य उदय हुआ। श्रीमहाराजजीकी हमपर प्रसन्नता हुई। वे वड़ो प्रसन्नता और हँसी के साथ मुझसे भक्ति और ज्ञानसम्बन्धी बातें करते, परन्तु मेरे मुख पर उदासी ही छायी रहती।

उन दिनों श्रीमहाराजजी कर्णवास में विराजमान थे। एक दिन सायंकालमें टहलकर लौटते समय आप पक्के घाटपर श्री-गोविन्ददासजी वैष्णवकी कुटियामें घुसकर बैठ गये। साथ में जितने लोग थे सबको अपनी कुटियापर चलने का आदेश दिया और गोविन्ददासजीके द्वारा मुझे अपने पास बुलाया। तब आपने गोविन्ददासजीसे कहा, "अब तो मैं रामदाससे बहुत प्रसन्न हूँ, फिर भी रामदास उदास क्यों रहा करता है?" गोविन्ददासजीने मुझे भी अपने हृदयकी बात श्रीमहाराजजीसे कहनेके लिये कहा। मैंने प्रार्थना की, "प्रभु! आपने हमें थोड़ेसे अपराधपर इतना कठोर दण्ड दिया। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे साथ अन्याय किया गया है।" श्रीमहाराजजीने मुझसे डाँट कर कहा, "अरे! हमें तू अन्यायी बताता है।" मैंने अपना मस्तक नीचा कर लिया और कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर पश्चात् आप फिर बोले, "अरे! तू मेरा है या नहीं?" मैंने कहा, "हाँ, प्रभु! आपका हूँ।" तब आप बोले, "तो फिर मैं तुझे कितना ही दण्ड दूँ, तुझे बोलनेका क्या अधिकार है?" मैंने श्रीमहाराजजी के चरणोंपर गिरकर दो आँसू अर्पण किये। उस दिन मुझे मालूम हुआ कि निजजनपर प्रभु इतने निष्ठुर क्यों होते हैं। अब मैं दण्ड-

सम्बन्धी सभी बातोंको भूल गया और श्रीमहाराजजीसे प्रसन्नता-पूर्वक खूब प्रश्नोत्तर करने लगा। श्रीगोस्वामीजी ने ठीक ही कहा है—

मुनि शाप जो दीन्हा, अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।'

गुरुदेवकी सन्निधिमें

एकबार मुझे श्रीमहाराजजीके साथ कानपुरके समीप बरुआ-घाटमें श्रीज्ञानाश्रमजीके स्थान पर जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीज्ञानाश्रम स्वामीमें हमारे महाराजजीका गुरुभाव था। उनके पास पहुंचकर आपने जब उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने आपसे पूछा, "पूर्णानन्द तुम प्रसन्न चित्त तो हो?" श्रीमहाराजजी ने कहा, "जी हाँ, महाराज! सब आपकी कृपा है।" ज्ञानाश्रमजीने पूछा, "पूर्णानन्द! तुम्हारी तो अलीगढ़-बुलन्दशहरकी तरफ वड़ी ख्याति हो रही है। नरवरके ब्रह्मचारी यहाँ आकर मुझसे कहा करते हैं।"

श्रीज्ञानाश्रमजी के सामने आप जिज्ञासुभावसे चुपचाप बैठे रहते थे। बहुत कम बोलते थे। जब वे लेट जाते तो आप उनके चरण दबाते रहते थे। मैं प्राय: देखता था कि आप श्रीज्ञानाश्रम स्वामीके दोनों चरणोंको अपनी गोदमें रख रात्रिके १२ बजे तक उनमें तेलकीमालिश करते रहते थे।वे कई बार कहते कि पूर्णानंद-जाओ, सो जाओ, तो भी आप उनके चरणोंको छोड़ते नहीं थे। जब उन्हें पूर्णतया निद्रा आ जाती तो आप उनके तख्त के नीचे लेट जाते थे।

इस प्रकारका व्यवहार हमने तीन-चार रोजतक देखा। फिर आपने हमसे कहा, "तुम लोग प्रात:काल चार बजे चले जाना और अमुक स्थानपर मुझसे मिलना। उस रात आप दो बजे तक उनके

चरण दबाते रहे, फिर गुदड़ी और कमण्डलु लेकर उक्त स्थान पर चले गये। जब हम प्रातःकाल चार बजे उठे और श्रीज्ञानाश्रम स्वामीको दण्डवत् करने के लिये गये तो उन्होंने आँखों में आँसू भरकर कहा, "अरे भाई ! पूर्णानन्द तो चले गये।" श्रीमहाराज जीसे आप अत्यन्त स्नेह रखते थे।

इस घटना के द्वारा हमें तो यही जान पडा कि श्रीमहाराज-जीने स्वयं गुरुसेवा करके हमें गुरुभक्तिका पाठ पढ़ाया था। आप कहा करते थे कि हम और निर्मलानन्द दो-तीन वर्ष इनके पास रहे हैं। जब ये सो जाते थे तो हम इनके आश्रम की सब सेवा कर लिया करते थे। उन दिनों हम इनके पूर्ण अनुयायी होकर रहे थे। जब हम चले गये तो लोग कहते थे कि वे तुम्हारी याद करके रोते थे।

ग्वालियर का उत्सव

ग्वालियरवाले बाबा रामदासजीने श्रीमहाराजजीसे कई बार प्रार्थना की थी कि कभी ग्वालियर पधारें। एकबार उनके स्थानपर एक विशाल उत्सव का आयोजन हुआ। उसमें रासमण्डली के सहित श्रीहरिबाबाजी तथा वृन्दावनधामके कई वैष्णव संत और आचार्य भी पधारे। तब श्रीमहाराजजीने भी कुछ भक्तपरिकरके सहित वहाँ के लिये पैदल यात्रा की। इस यात्रा में बड़ा आनन्द रहा। श्रीमहाराजजीका गीताप्रवचन और उपदेश भी नित्य नियमसे होता रहा। दण्डिस्वामी सिद्धेश्वराश्रमजीने वह प्रवचन नोट कर लिया था। बाबा रामदासजीका उस ओर बड़ा प्रभाव था और उन्होंने गाँव-गाँवमें इस बातका प्रचार कर दिया था कि श्रीउड़िया बाबाजी वृन्दावनसे पैदल आ रहे हैं। अतः प्रत्येक ग्राममें हमारा बड़े उत्साहसे स्वागत हुआ। इस प्रकार बड़े आनन्दसे विचरते हम ग्वालियरके समीप करहमें श्रीरामदास बाबाके आश्रमपर पहुंचे।

बाबा रामदासजीके गुरुमहाराज बड़े भजनानन्दी महापुरुष थे। उनके दर्शन करके मैं गद्गद् हो गया। उनकी आयु भी उस समय अस्सी वर्षसे कम न होगी। तथापि उनके ओठों पर हर समय राम नाम विद्यमान रहता था। नामस्मरणके सिवा और आपको कोई काम ही नहीं था। आपने श्रीमहाराजजीको प्रणाम किया और प्रेमानन्द से गद्गद् हो गये।

इस उत्सव का कार्यक्रम तो अन्य उत्सवों के समान ही था। प्रातः-सायं पूज्य श्रीहरिबाबाजीका संकीर्तन, मध्याह्नसे पूर्व श्री-रासलीला और मध्याह्नोत्तर श्रीरामानुजदास आदि वैष्णवाचार्यों के प्रवचन। किन्तु यहाँ जनताकी भीड़का कोई पारावार न था। उत्सव गर्मीके दिनोंमें एक पर्वतीय प्रदेशमें हो रहा था। वहाँ तीन मीलतक पानीका कोई ठिकाना नहीं था। तीन मील दूर चम्बल नदी थी। वहींसे मोटरद्वारा पानी मँगाया जाता था। व्यवस्था इतनी सुन्दर थी कि अपार जनता होने पर भी पानीका कोई कष्ट अनुभव नहीं हुआ। इस उत्सवका अन्नभण्डार भी अपूर्व था। इसमें हजारों मन खाद्य सामग्री एकत्रित हुई थी। सैकड़ों मन आटा, सैकड़ों मन गुड़ और सैकड़ों टीन घीके थे। मालपुआ पूड़ी, शाक, मिठाई हर समय तैयार होती रहती थी। कोई भी हो बिना रोकटोक प्रसाद पा सकता था। बड़े महाराजकी आज्ञा थी कि कोई भी दर्शनार्थी बिना प्रसाद पाये न जाय। जब बाबा राम-दासजीने उनसे कहा कि महाराज! भीड़ अधिक है यदि सबको प्रसाद दिया गया तो सम्भव है कमी पड़ जाय, तो वे बोले, "अरे! संतोंके भण्डारेमें कभी किसी चीजकी कमी नहीं होती। और यदि मानलो, कमी हो भी गयी तो इसमें हमारा क्या बिगड़ता है। साधुके पास रहे तो खूब खाओ, नहीं तो घुघनी और जल-पर ही समय बिताओ।"

जिस दिन भण्डारा हुआ उस दिन पच्चीस गाँवों के आदमी उसकी व्यवस्थामें लगे हुए थे। उन्होंने बाबा रामदास के बहुत कहने पर भी स्वयं भोजन नहीं किया। कहा कि हम तो भण्डारा समाप्त हो जाने पर कल महाप्रसाद लेंगे। इस उत्सवमें स्थानीय अफसरोंका भी पूर्ण सहयोग देखा गया।

उत्सव समाप्त होनेपर श्रीहरिबाबाजी और अन्यान्य सन्त-जन मोटर द्वारा वृन्दावन चले गये, और श्रीमहाराजजीने अपने परिकरसहित पैदल प्रस्थान किया। मार्ग में एक विचित्र घटना हुई। उससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि महापुरुषके दर्शनका बड़े दुर्दान्त दुष्टोंपर भी तत्क्षण कैसा प्रभाव पड़ता है। सामने से एक क्रूर प्रकृतिका व्यक्ति कन्धेपर बन्दूक रखे आ रहा था। निकट आनेपर उसने बन्दूक अलग रख दी और श्रीमहाराजजीको साष्टांग प्रणाम की। महाराजजीने पूछा, "भाई! तू अपने साथ बन्दूक क्यों रखता है?" उसने कहा, "महाराज मैं यहाँके डाकुओं का सरदार हूँ। ग्वालियर राज्यने मुझे पकड़ने वालेको दो हजार रुपया इनाम देने की घोषणा कर रखी है। अतः मैं अपनी रक्षाके लिये हर समय बन्दूक अपने साथ रखता हूँ। इसे इस समय आपको दण्डवत् करनेके लिये ही मैंने अपनेसे अलग किया था।"

इसी प्रकार विचरते हुए हम सब लोग होलीपुरा पहुंचे। यह गाँव जिला आगरामें यमुनाजीके समीप है। वहाँ उस समय एक हाईस्कूल था, जो अब कालेज हो गया है। उस हाईस्कूल के हैडमास्टर और श्रीछैलबिहारी अष्ठाना नामक एक मास्टर श्रीमहाराजजीके भक्त थे। छैलबिहारीजीकी पत्नीका देहान्त हो चुका था और वे शेष जीवन भजन-साधनमें ही व्यतीत करना चाहते थे। स्वामी प्रबोधानन्द और मुझसे भी उनका विशेष प्रेम था। उन्होंने आग्रह करके श्रीमहाराजजीको चार-पाँच दिन होलीपुरामें रोक

लिया। एक दिन सायंकालमें श्रीमहाराजजीके साथ टहलते हुए हम लोग जंगलकी ओर गये। वहां कुछ दूरसे हमें खजानची साहवकी आवाज सुनायी दी वे कह रहे थे, 'टीले पर तेंदुआ बैठा है; आगे मत जाना।" हमने नेत्र उठाकर देखा तो सचमुच हमें सामने एक तेंदुआ दिखायी दिया। वह पूँछ उठाये खड़ा था और क्रोध भरी दृष्टिसे हमारी ओर देख रहा था। ऐसा जान पड़ता था मानो वह छलाँग मारकर आना ही चाहता है। उसे देखकर श्रीमहाराजजीके साथ होनेके कारण हम लोग शान्त और निर्भय रहे। बस कुछ ही देरमें वह हिंस्र जीव छलांग मारकर दूसरी ओर चला गया और खजानची साहवके सहित हम लोग अपने स्थानपर लौट आये। श्रीमहाराजजीके प्रभावसे उस दिन किसी को कोई क्षति नहीं पहुँची।

होलीपुरामें सत्सङ्गका बड़ा अपूर्व आनन्द रहा। फिर कई स्थानों में होते हुए हम सव वृन्दावन लौट आये।

पंजाब यात्रा

श्रीमहाराजजीका स्वास्थ्य कुछ समय से वहुत शिथिल हो गया था। वाँधके पिछले उत्सव पर भी जव वे समयपर न पहुंचे तो श्रीहरिवावाजी और माँ आनन्दमयीने वृन्दावन आकर उनसे मोटरद्वारा वहाँ चलनेका आग्रह किया। प्रभु तो प्रेमपरवश थे। उनके प्रेमपूर्ण आग्रहसे उन्होंने सवारीपर न चढ़नेका अपना नियम त्याग दिया और वे मोटरद्वारा वाँधपर गये। अभी इस घटनाको प्रायः दस मास हुए थे कि पूज्य श्रीहरिबाबाजी और माँने पंजाब यात्राका प्रोग्राम बनाया। श्रीमहाराजजी अस्वस्थ थे, इसलिये यद्यपि इस यात्रामें जानेकी उनकी रुचि नहीं थी, तो भी बाबाकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने भो जाना स्वीकार कर लिया। उनके साथ

हम आठ-दस साधु भी इस यात्रामें सम्मिलित कर लिये गये।

इस यात्राका पहला पड़ाव था दिल्ली। यहाँ कुदसिया घाट-पर हम सवके ठहरनेकी व्यवस्था की गयी। यहींपर रासलीला और सत्सङ्गादि भी होते थे। दिल्लीके असंख्य नर-नारी इस उत्सवमें आते थे। कुछ प्रमुख नागरिकोंने श्रीमहाराजजीको ले जाकर राष्ट्रपतिभवन और ससदसदन भी दिखाये। तीन दिन तक खूब धूमधाम रही। यहाँसे लारियों द्वारा कुरुक्षेत्र जाना था। एक लारीमें श्रीमहाराजजी, उनके साथी और रासमण्डलीवाले विठाये गये। इसी प्रकार अन्य दो लारियोंमें श्रीहरिवावाजी और माँ आनन्दमयी अपने-अपने भक्तोंके साथ सवार हुए। मार्गमें मैंने श्रीमहाराजजीसे हाथ जोड़कर कहा, "प्रभु ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, अव आपके साथ हम लोग मोटरों में ही यात्रा किया करेंगे। अव तक तो आप पैदल चलते थे, इसलिये दूर ले जाने वालोंको कहनेमें संकोच होता था। मोटरमें चलने से तो अव आपको ले जाना सबके लिये सरल हो गया।" इसपर श्रीमहा-राजजी उदास चित्तसे बोले, "बेटा ! देखो, इस यात्रामें क्या होता है ?" प्रभुके इन वचनोंमें करुणा थी।

अस्तु। हम लोग कुरुक्षत्र पहुँचे और वहाँ गीताभवन में उतरे। वहाँ हमने गीतापाठ किया और श्रीमहाराजजीने दो श्लोकों पर प्रवचन किया। यहाँ रात्रिके समय कीर्तनके पश्चात् श्रीहरि-बाबाजीके मुखसे ऐसी बात निकली कि मैं तो बाबाके हाथमें भी झाँझ देखना चाहता हूँ। बस,प्रेमपरवश प्रभुने दूसरे ही दिन छबि-कृष्णसे झाँझ ले लीं और कीर्तनके समय कभी-२ बजाने भी लगे।

यहाँ एक दिन ठहरकर अम्बाला छावनी गये और वहाँ से खन्ना। अम्बालेमें दो दिनका प्रोग्राम रहा। खन्ना इस यात्राका प्रधान विश्राम स्थान था। यहाँ एक अपूर्व सन्त श्रीत्रिवेणी पुरीजी

महाराज विराजते थे। अवधूत कृष्णानन्दजीका उनमें गुरुभाव था और उन्होंने ही इस यात्राकी व्यवस्था की थी। यहाँ नौ दिनतक बड़ा अद्भुत समारोह रहा। अब आगे बढ़नेके विषयमें विचार होने लगा। इस यात्रामें प्रायः सौ व्यक्तियोंका समुदाय था। बाबा को इच्छा थी कि आगे पच्चीस-तीस व्यक्ति ही जाँय। शेष सब को लौटा दिया जाय। इन लौटाये जानेवालोंमें श्रीमहाराजजीके साथी साधुलोग भी थे। हमलोग श्रीमहाराजजीका साथ छूटनेकी सम्भावनासे बहुत दुखी थे और श्रीमहाराजजीको भी अन्तःकरण से यह प्रस्ताव पसन्द नहीं था। परन्तु अपनी ओरसे वे व्यवस्था में कोई दखल देना नहीं चाहते थे।

इसी बीचमें एक दिन कुछ प्रमुख व्यक्तियोंने सरहिन्द की यात्रा की। यह वह स्थान है जहाँ मुसलमान शासकों ने गुरु-गोविन्दसिंहजीके दो पुत्रोंको उनकी माताके सामने दीवारमें चुनवा दिया था। इस स्थानको देखकर श्रीमहाराजजीके नेत्रोंसे जल बहने लगा और स्वाभाविक ही उनके मुखस निकला, "वाह! हमारे देश की कैसी धर्मनिष्ठा थी?" उनका शरीर अस्वस्थ तो था ही। कुछ ज्वर भी हो गया। चलने-फिरनेमें काफी कठिनता अनुभव होती थी। परन्तु फिर भी आपने अपनी ओरसे यात्राको आगे बढ़ानेमें कोई अड़चन उपस्थित नहीं की। किन्तु इस समय माँ श्रीआनन्द-मयीका ध्यान आपकी ज्वरसन्तप्त मुखाकृति की ओर गया। उन्होंने तथा श्रीआंजनेय ब्रह्मचारी आदि ने बाबाको यात्रा स्थ-गित करनेकी सलाह दी। तब बाबाने भी वहींसे लौटनेका निश्चय कर लिया। सब लोगोंको रात्रिकी गाड़ीसे ही वृन्दावन भज दिया गया तथा श्रीमहाराजजी और मां सोलनके राजा साहबकी कारसे और श्रीहरिबाबा एक अन्य कार द्वारा वृन्दावन लौट आये।

वृन्दावन लौट आने पर दस-बारह दिनतक श्रीमहाराजजीको

बड़ा तीव्र ज्वर रहा। उससे मुक्त होने पर वहीं होली का उत्सव हुआ और फिर मां श्रीआनन्दमयी काशी चली गयीं।

महासमाधि

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीको अमृतसरके भक्तवृन्द बुला रहे थे। वहाँ जानेकी आज्ञा लेनेके लिये वे मातृमण्डल में गये। श्रीमहाराजजी लेटे हुए थे। वे उदासीन भावसे बोले, 'अच्छा, भैया! जाओ।" यह उनके लिये अन्तिम आज्ञा हुई। ब्रह्मचारी आंजनेय, स्वामी प्रबोधानन्द और मुझसे आप बोले, "काशी में माँ आनन्दमयीके यहाँ शंकरजीकी प्रतिष्ठा है। तुम लोग पैदलही वहाँ चले जाओ। हम मोटरसे आकर वहाँ मिलेंगे, हमने माँ को वहाँ आनेका वचन दे रखा है।" हम लोगोंका चित्त वृन्दावन से उचाट हो रहा था और हम श्रीमहाराजजीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीसनातनदेवजी हाथरस चले गये थे। कभी-कभी श्रीमहाराजजी हमसे कहा करते थे, "बेटा! बड़े अपसकुन हो रहे हैं, न जाने क्या होने वाला है।" एकदिन आपकी कुटियाके ऊपर गिद्ध बैठा था आप बोले, "इसका बैठना किसी बड़े अनिष्ट का सूचक है।" हनुमानजीके मन्दिरका पुजारी पूजाका पारस मल रहा था। उस समय अचानक उसके सिरपर कौआ बैठ गया। जब उसने श्रीमहाराजजी को यह घटना सुनायी तो वे बोले, "तेरे इष्टदेवका कोई अनिष्ट होने वाला है।" पुजारी घबड़ाकर बोला, "महाराज ! मेरे इष्टदेव तो आप ही हैं।" आपने कहा, जा भगवान् का स्मरण कर।"

एक बार मुझे और प्रबोधानन्दजीको बुलाकर पूछा कि तुम लोग नित्य कितना जप करोगे। मैंने कहा, "मैं नित्य प्रति बारह हजार प्रणव-जपकर सकता हूँ।"प्रबोधानन्दजी बोले, 'मैं छः हजार प्रणव जप सकूँगा।"श्रीमहाराजजीने हँसकर पूछा,"क्योंतूछःहजार ही क्यों जप सकेगा?" इसपर उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "भगवन्!

मेरा शरीर रोगी रहता है।" बस, महाराजजीने हम दोनोंके नाम अपनी डायरीमें लिख लिये और हमसे कहा, "नित्य प्रति जप और स्वाध्याय किया करो।" हम लोग उस समय यह न समझ सके कि महाराजजी हमें यह अन्तिम उपदेश दे रहे हैं।

प्रयागमें ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी चैत्रके नवरात्रमें उत्सव कर रहे थे। उसमें सम्मिलित होनेके लिये चैत्र कृ० १३ के सायंकाल में श्रीहरिबाबाजीने वहाँके लिये प्रस्थान किया। श्रीमहाराजजीने उनकी मोटर तक जाकर उन्हें विदा किया। दूसरे दिन चतुर्दशी आयी। इधर शरीरकी अस्वस्थताके कारण बहुत दिनोंसे आपका गीताप्रवचन बन्द था। आज पुनः प्रारम्भ होने वाला था। हम लोगोंने गीतापाठ किया। आपने दो श्लोकोंपर बड़ा अद्भुत आर जोरदार प्रवचन किया। ज्यों-ज्यों आपके शब्द जोरदार होते जाते थे मेरे हृदयमें एक प्रकारकी जलन-सी बढ़ती जाती थी। मैं नहीं समझता था कि आज यह जलन क्यों हो रही है। मैं नित्य की भाँति रोटी खाकर अपनी झोंपड़ीमें विश्राम करनेके लिये चला गया। परन्तु आज निद्रा आती ही न थी वरन् उसके स्थान में हृदयमें जलन ही जलन मालूम होती थी।

तीन बजे सत्संगकी घण्टी बजी और मैं श्रीमहाराजजी को कुटियापर आ गया। उनके साथ मैं सत्संगभवनमें पहुँचा। पहले नित्यनियमानुसार 'श्रीराम जय राम जय जय राम' की ध्वनि के साथ श्रीरामचरितमानसका पाठ हुआ। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी आनन्दजीने 'भागवती कथा' सुनानी आरम्भ की। श्रीमहाराजजी ध्यानस्थ होकर बैठे हुए थे। स्वामी अद्वैतानन्दजी मोरछल से मक्खियाँ उड़ा रहे थे। इतनेही में आश्रमके एक सेवक ठाकुरदास ने आकर उनसे मोरछल माँगा। उन्होंने नहीं दिया। ठाकुरदास एक काला कम्बल ओढ़े हुए था। मोरछल न मिलनेपर वह लौट गया। इसके पाँच-साँत मिनट बाद ही उसने लौटकर गड़ासे से

श्रीमहाराजजीके सिर पर दो प्रहार किये। जब वह तीसरा प्रहार करने वाला था। उसी समय श्रीमहाराजजीके पास बैठी बहिनजी ने उनके सिरपर अपना हाथ रखकर उस दुष्टको प्रहार करने से मना किया। परन्तु उसने एक न सुनी और बहिनजीके हाथ को घायल करते हुए तीसरा प्रहार भी कर डाला। अब तक श्रीमहा-राजजी अचल भावसे बैठे रहे। अब वे मूर्च्छित होकर गिरे और वह दुष्ट भाग खड़ा हुआ। तब कुछ लोगोंने तो श्रीमहाराजजोको सँभाला और कुछ उसके पीछे दौड़े। उन्होंने कुछ दूर पर ही उसे पकड़ लिया और रोषमें आकर उसी गड़ासे से मार डाला। कुछ मिनटोंमें श्रीमहाराजजी सचेत हुए और उन्होंने पूछा, "यह सब क्या हो रहा है?" मैंने कहा, "प्रभु! कुछ भी नहीं हो रहा।" उस समय प्रभुकी ऐसी दशा देखकर और लोग तो रो रहे थे, परन्तु मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा था। न मुझे रुलाई आती थी और न कुछ बोल ही सकता था। प्रभुकी प्रेरणासे ही मैंने उस समय उच्च स्वरसे तीन बार ॐकारकी ध्वनि की। बस, उस ध्वनिको सुनते-२ ही श्रीमहाराजजी हम लोगोंसे विदा हो गये। हम अभागे देखते ही रह गये, कुछ भी करते न बना।

श्रीमहाराजजी अन्तर्धान क्या हुए हमारी तो सारी निधि ही खो गयी। आज उनके अभावमें मैं अपने को एक अनाथ बालक-सा पाता हूँ।

श्रीमहाराजजी अपने पार्थिव विग्रह से भले ही हम लोगोंके बीचमें न हों, परन्तु अपने अजर-अमर चिन्मय स्वरूपसे तो वे सदा अपने भक्तोंका कल्याण करते रहते हैं और करते रहेंगे। इन शब्दोंके साथ अपनी लेखनीको विश्राम देता हूँ और इस लेख में अपनी अल्पज्ञताके कारण यदि मुझसे कोई भूल हुई हो तो उसके लिये श्रीमहाराजजीसे क्षमा चाहता हूँ।

स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी, ब्रजवासी

वृन्दावन

महापुरुषोंका प्रादुर्भाव संसारकी शृङ्खलामें बँधे हुए प्राणियोंको मुक्त करनेके लिये होता है। यद्यपि अधिकांश लोग 'मुक्ति' का अभिप्राय मृत्युके पश्चात् प्राप्त होने वाली कोई गति विशेष समझते हैं, परन्तु वास्तवमें इसका तात्पर्य है दुःखकी आत्यन्तिकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति। अतः मानवको चरम सुखकी अनुभूति कराकर उसे कल्याण और सुयश का अधिकारी बनाने वाले व्यक्ति ही 'महापुरुष' माने गये हैं। भगवान् राम, श्रीकृष्णचन्द्र, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, शङ्कराचार्य, वैष्णव आचार्यगण स्वामी हरिदास एवं महात्मा गान्धी—ये सब ही महापुरुष माने जाते हैं। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव जातिके हितमें ही सर्मपित कर दिया था। जीवनको परार्थ उत्सर्ग करने वाले इन सन्तोंके चरणोंमें नतमस्तक होकर संसार अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता है। हमारे श्रीउड़िया बाबाजी भी इसी कोटिके एक सन्त महापुरुष थे।

प्रथम दर्शन

जब कभी साधुओं की चर्चा चलती तो अलीगढ़ के एक लालाजी पूज्य उड़िया बाबाजीके विषयमें तरह-२ की बातें बताया करते थे। उनके मुखसे महाराजश्री के ज्ञान, वैराग्य, तप, त्याग आदिकी अद्भुत घटनायें जब कर्ण-कुहरोंके द्वारा हृदयका स्पर्श करतीं तो मेरा मन उनके दर्शनोंके लिये लालायित हो उठता था। ऐसी इच्छा होती थी कि मैं अभी उड़कर वहाँ पहुँच जाऊँ

और अपनेको श्रीमहाराजजीके चरणोंमें समर्पित कर दूँ। परन्तु हृदयकी स्थिति थी डाँवाडोल ही। एक ओर तो दर्शनोंकी लालसा थी और दूसरी ओर था सांसारिक मोह का वन्धन। कभी-कभी वड़ी कशमकश चलती। विश्वका व्यापार भी विचित्रताओंका समुद्र है। उसमें फँसा हुआ प्राणी बड़ी कठिनतासे निकल पाता है, क्योंकि उसकी 'ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहति त्यों-त्यों उरझति जात' वाली गति हो जाती है अतः इसी ऊहापोह में वहुत समय निकल गया।

परन्तु जब कोई बीज पड़ जाता हैं तो समय पाकर वह अंकुरित हो ही जाता है। शनैः-शनैः सत्संगकी ओर मेरा आकर्षण बढ़ने लगा। मेरे गाँवके पास लाला प्यारेलालके वागमें श्रीविष्णुस्वामीसम्प्रदायके संत दूधाधारीजी महाराज विराजते थे।वे वड़े सिद्ध महात्मा थे। सात्त्विक विचारोंकी निधि और तप की मूर्त्ति थे। मैं प्रायः उनके दर्शनार्थ जाया करता था। बागकी सीमा में पहुंचते ही एक अद्भुत शान्तिका अनुभव होता और उनके दर्शनोंसे वड़ा अनिर्वचनीय सुख मिलता। धीरे-धीरे मेरे मनकी प्रवृत्ति वैराग्यकी ओर वढ़ी और संसार निःसार दिखायी देने लगा। तथापि उसे छोड़ने का साहस नहीं होता था। एक दिन श्रीवृन्दावनसे प्रकाशित होनेवाले 'नाममाहात्म्य' नामक मासिक पत्रमें यह दोहा पढ़ा—

'कबिरा यह मन एक है, चाहै जहाँ लगाय।
चाहे हरिको भजन करु, चाहै विषय कमाय॥'

वस, इसने मानो मेरी सुषुप्त वैराग्याग्निमें घृतकी आहुति डाल दी। मैं दूसरे दिन ही अपने घरवालोंको सारा कारवार सोंपकर श्रीदूधाधारीजीके पास आया और उनसे विरक्त धर्मकी दीक्षा ले ली। गुरु महाराजने मेरा नाम रखा—गोपालदास।

अब मैंने पूज्य बाबाके दर्शनोंका निश्चय किया। पता लगा कि वे उन दिनोंमें अनूपशहर में थे। अतः गुरुदेवसे आज्ञा लेकर मैं अनूपशहरको चल दिया। वहाँ सेठ बालूशंकरजीके बगीचे में मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए। वर्षोंकी साध आज पूरी हुई। मैं लकुटकी भाँति उनके चरणामें गिर पड़ा। बाबाने मेरे सिर पर अपने कर-कमलका स्पर्श कराया। इस समय मुझे अद्भुत सुख-शान्तिका अनुभव हो रहा था। आप एक चौकीपर लेटे हुए थे। आस-पास पच्चीस-तीस भक्त बैठे थे। मेरी ओर कृपादृष्टिसे देखते हुए आप बोले—'कौन हो? कहाँसे आये हो?' मैंने अपना परिचय दिया। तब आपकी आज्ञा हुई कि इन्हें बस्तीमें ले जाकर धर्मशालामें ठहरा दो। मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "महाराज! यहीं कहीं पड़ जायेंगे।" आप बोले, "यहाँ कोई नहीं रह सकता।"

मुझे नया वैराग्य था। मैंने अपने साथी ला० शंकरलाल से कहा कि यहीं किसी वृक्षकी छायामें पड़ रहेंगे। हम चरणस्पर्श-करके चले। श्रीमहाराजजीने दो सेवकोंको आज्ञा दी कि इनका आसन लगवा दो। बस, श्रीपल्टूस्वामीकी झोपड़ीके पास एक दूसरी झोपड़ीमें आसन लग गया। कुछ लड्डू आदि प्रसाद में मिले। बाबाने सेवकोंसे कह दिया था कि ये नये वैरागी हैं। भूखे हैं, इन्हें भोजनकी आवश्यकता है। प्रसाद पाकर रातको सो गये। प्रातःकाल नित्य-नैमित्तिक कार्यसे निवृत्त हो आपके दर्शनार्थ गये। अनेकों भक्तगण बैठे हुए थे। बाबाने दूरसे ही मुझे 'ब्रज-वासी' नामसे सम्बोधन किया। मेरा हृदय आनन्दसे विभोर हो गया। श्रीमहाराजजीकी यह महती कृपा थी। इसने मेरे हृदयमें एक गुदगुदी पैदा कर दी। मैं अपनेको सँभाल न सका और दौड़ कर उनके चरणोंमें गिर गया।

इस प्रकार आपकी सन्निधिमें बड़े आनन्दसे समय व्यतीत

होने लगा, मैंने अपनेको कृतकृत्य समझा। मेरे हृदयमें आनन्दकी एक सरिता-सी वहने लगी। अकस्मात् एकदिन प्रातःकाल सोकर उठा तो पता चला कि श्रीमहाराजजी कहीं चले गये हैं। मैंने पूछा कि कहाँ गये हैं, तो उत्तर मिला कि वे यह कहकर थोड़ा ही जाते हैं। अब उन्हें ढूढ़ना व्यर्थ है। जव उनकी इच्छा होती है तभी दर्शन होते हैं। चित्तको वहुत दुःख हुआ और निराश होकर व्रजको लौट आया।

कृपाका विकास

कुछ काल व्यतीत होने पर पता चला कि श्रीमहाराजजी मोहनपुरमें हैं। मैं वहाँ पहुँचा और चरण स्पर्श किये। इससे मेरे शरीरमें एक बिजली-सी दौड़ गयी। इस समय शीतकाल था। सायंकालमें श्रीमहाराजजी एक वृक्षके नीचे ध्यानस्थ होकर बैठ जाते थे। उनके आस-पास साधक लोग भी ध्यानाभ्यासमें निमग्न हो जाते थे। उस समय चित्तकी वृत्ति वड़ी एकाग्र होती थी। उठनेकी इच्छा ही नहीं होती थी। फिर सब लोग आपके साथ ही कुटियापर आ जाते थे। वहाँ गाँवके लोग भी एकत्रित हो जाते थे और खूब कीर्तन एवं सत्संग होता था। फिर प्रसाद ग्रहण करके सब शयन करते थे। सब लोग विभिन्न स्थानों पर जाकर सोते थे, कुटियापर केवल श्रीमहाराजजी ही रहते थे, और कोई नहीं रह सकता था।

यहाँ रहते हुए मेरी गेरुआ वस्त्र धारण करनेकी इच्छा प्रवल होने लगी। मैं चाहता था कि मुझे श्रीमहाराजजी के द्वारा गेरुआ वस्त्र प्राप्त हों। परन्तु इस विषयमें उनसे कुछ कहने का साहस नहीं होता था। एकदिन कीर्तनके पश्चात् प्रसाद लेकर जब सब लोग शयन करनेके लिये जहाँ-तहाँ जाने लगे मैंने सबके

पश्चात् आपके चरण स्पर्श किये। पहले से ही मेरा यह प्रयत्न रहता था कि मैं सबसे पीछे प्रसाद ग्रहण करूँ। आज भी ऐसा ही हुआ। अतः जब मैं जाने लगा तो श्रीमहाराजजीने मेरे कन्धे-पर अपना कटिवस्त्र रख कर कहा, "जा।"

बस, मेरी कामना पूर्ण हुई। बिना प्रार्थना किये ही यह कृपा का स्रोत झर रहा था। मेरा हृदय आनन्दसे गद्गद हो गया। मुझे निश्चय हुआ कि श्रीमहाराजजी हृदयके भावोंको जान लेते हैं। उस समय तरह-२ के भाव मेरे हृदयको आन्दोलित कर रहे थे। मैं उनमें तल्लीन हुआ निद्रादेवीकी गोदीमें चला गया। प्रातः काल उठनेपर कुटियापर गया तो उसके किवाड़ बन्द थे। किवाड़ों को धक्का देकर खोला तो कुटिया खाली मिली; जान पड़ा कि इसलिये कल आपने मुझे प्रसादी वस्त्र प्रदान किया था। चित्त में बड़ा खेद हुआ और मैं खिन्न मनसे व्रजको लौट आया। तब से मैं गेरुआ वस्त्र धारण करने लगा और कुछ कीर्त्तन भी कराने लगा। उससे मेरे आनन्द और अनुभव की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

भिक्षाका आदेश

कुछ समय पश्चात् मैंने सुना कि श्रीमहाराजजी रामघाट में हैं। मैं तुरन्त श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ। इन दिनों दण्डिस्वामी सियाराम, बाबा रामदास श्रीरमाकान्तजा, बाबूजी और सुख-रामजी भी यहीं थे। इन सबसे मेरा परिचय हो गया। रामघाटके भक्त एक दिन बाबाको बस्तीमें लिवा ले गये। वहाँ सम्भवतः श्रीसत्यनारायणकी कथा का आयोजन था। इन दिनों आप माधू-करी वृत्तिसे रहते थे। मुझसे बोले, "क्या तू भिक्षा नहीं करता?" मैंने आपकी आज्ञाका पालन किया और दो घरोंसे माधूकरी

करके कुटिया पर ले आया। भिक्षा श्रीमहाराजजीके आगे रख दी। आप देखकर बहुत प्रसन्न हुए और दो रोटी अपने पाससे डाल दीं। मैं यों तो नित्य ही आपका प्रसाद पाता था, परन्तु आजकी भिक्षाका स्वाद और महत्त्व तो अनिर्वचनीय था। मुझे ऐसा लगा कि संसार का वास्तविक त्याग तो आज ही हुआ है। वस्तुतः जबतक मान-प्रतिष्ठाका त्याग न हो तब तक संसार का त्याग कहाँ ? अब जब कभी माधूकरी करके भिक्षा करता हूँ तब एक विचित्र आनन्द का अनुभव होता है, चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है।

साधनात्मक प्रेरणायें

(१)

एक बार मैं भृगु क्षेत्र में श्रीमहाराजजी के साथ था। वहाँ एक पण्डितजी भी थे, जिन्हें आप तान्त्रिक कहा करते थे। रात्रि-को पीनेके लिये जो दूध मिला उसमें जलने की गन्ध आती थी। इस पर दूध बाँटनेवालेके साथ तान्त्रिकजी की जोर-जोर से बातें होने लगीं। आपने पूछा, "क्या मामला है ?" लोगोंने कहा कि तान्त्रिकजीकी बातचीत हो रही है। आपका उपदेश था कि साधक का सबसे बड़ा धर्म सहनशीलता है। उसे जैसा प्रसाद मिले प्रस-न्नतासे पा लेना चाहिये, कुछ कहना नहीं चाहिये। इससे बड़ा सुख प्राप्त होता है। मैं तबसे इसका बहुत ख्याल रखता हूँ। जब कभी इसमें भूल होती है चित्तको बहुत दुःख मिलता है।

(२)

एक बार बाँधके उत्सव में मैं गया हुआ था। वहाँ बड़ी भीड़ थी। श्रीमहाराजजी उस भीड़का नियन्त्रण और देख-भाल करते थे। मेरे चित्तमें शंका हुई कि महात्माको तो भीड़-भाड़ और

संसार से दूर रहना चाहिये। इनके साथ तो हर समय भीड़ लगी रहती है।

उत्सव समाप्त होने पर मैं आपके साथ भृगुक्षेत्र चला आया। यहाँ एक दिन अचानक आपने सत्संग में कहा—

"साधू ऐसा चाहिये, दुखे दुखावे नाहिं।
फूल-पात तोड़े नहीं, रहे बगीचे माहिं॥"

बस, मेरा समाधान हो गया। आज भी जब कभी सङ्ग-साथमें विक्षेप होता है, यह दोहा बड़ी शान्ति प्रदान करता है।

उनकी गुणगरिमा

पूज्य श्रीमहाराजजी सिद्ध पुरुष थे। उन्हें बाहर-भीतरकी सब बातोंका पता लग जाता था उनसे कुछ भी छिपा नहीं रहता था। जैसे वे आध्यात्मिक विषयमें पारंगत थे वैसे ही लौकिक व्यवहारमें भी पूर्णतया कुशल थे। परन्तु सांसारिक समस्याओंपर वे कभी दृष्टिपात नहीं करते थे। सर्वदा उनकी उपेक्षा करते रहते थे। उनका कथन था कि मनको सर्वदा अपने लक्ष्यपर ही लगाये रहना चाहिये।

मैं आगरा अस्पतालमें पड़ा हुआ था। वहीं मैंने आपकी निर्मम हत्याका दारुण संवाद सुना। चित्तको बड़ा कष्ट हुआ। पागलकी तरह अस्पतालसे दौड़कर गया और किसी पत्र में यह समाचार पढ़ा। उस समय मेरी अवस्था अर्ध विक्षिप्तकी-सी हो गयी। परन्तु उनके दिये हुए उपदेशोंका स्मरण करके चित्त को शान्त किया। तबसे बराबर उनका ध्यान करता रहता हूँ। जब कभी किसी प्रकारकी समस्या सामने आती है तो आप ध्यान या स्वप्नमें प्रकट होकर उसका समाधान कर देते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार भगवान् नित्य हैं उसी प्रकार उनके भक्त भी नित्य हैं।

उनके उपदेश

अन्तमें उनके कुछ उपदेश वाक्य लिखकर यह लेख समाप्त करता हूँ—

१. पिछली बातें भूल जाओ।
२. आगेकी चिन्ता मत करो।
३. वर्तमानमें आनन्दमग्न रहो।
४. सहन करनेसे मनुष्य उठता है।
५. प्राणिमात्र हमारा है और हम प्राणिमात्रके हैं।
६. भगवान् कहीं दूर नहीं हैं।
७. जगत्का आधार सत्य है।
८. दया प्राणीका भूषण है।
९. पारस्परिक प्रेमसे प्रतिभा निखरती है।

स्वामी श्रीआत्मानन्दजी, जोधपुर

पूज्य श्रीमहाराजजीके परम पुनीत संस्मरण यदि जीवनभर लिखता रहूँ तो भी उनका अन्त नहीं हो सकता। अतः यहाँ दिग्दर्शन मात्र केवल दो-चार घटनाओंका उल्लेख करता हूँ।

(१)

उन दिनों हमारा परिवार खुरजा में रहता था। मैं छोटा बालक ही था और रामलीला देखनेके लिये जाया करता था। रास्तेमें जाते हुए मैंने सुना कि सेट सूरजमलके बाग में श्रीउड़िया बाबाजी पधारे हैं, उनके पास दर्शकोंकी भीड़ लगी रहती थी। मुझे भी उनके दर्शनोंकी लालसा हुई और उनके पास जा पहुँचा। बाबाका दरबार लगा हुआ था। मैं और मेरे सब साथी प्रणाम करके बैठ गये। बैठते ही प्रसादमें एक मक्खन-बड़ा मिला और फिर थोड़ीही देरमें कुछ लौकाट भी। प्रसाद तो वहाँ बँटता ही रहता था। मैं वहाँ केवल पाँचही मिनट बैठा था, किन्तु इतने ही में मेरे हृदयमें सर्वदाके लिये पूज्य बाबाजीकी दिव्य मूर्त्तिने घर कर लिया।

दूसरे दिन मैं अकेलाही दर्शन करनेके लिये गया। उन दिनों यद्यपि मेरी आयु प्रायः ग्यारह साल की ही थी, तथापि वे मुझे इतने अच्छे लगते थे कि उनके पाससे जानेके लिये मन ही नहीं

होता था। तीसरे दिन सुना कि बाबा चुपचाप किसीसे कुछ भी बिना कहे चले गये।

(२)

इसके बहुत दिनों बाद, जब मैं अपनी ननिहाल मडराक में था, मैंने सुना कि बाबा सड़कपर जा रहे हैं। बस, उनकी पुरानी स्मृति मेरे हृदयमें जागृत हो आयी और मैं किसीके द्वारा बलात्कारसे आकर्षित-सा होकर उनके पास दौड़ चला। सौभाग्यवश बाबा उस समय पासही एक वृक्षकी छायामें विश्राम कर रहे थे। उनके प्रति मेरा स्वाभाविक स्नेह था। उसका कारण खोजनेकी बात हृदयमें उठती ही नहीं थी। 'कल्याण' में उनके उपदेश पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुआ करती थी। धीरे-धीरे मेरा चित्त घरकी ओरसे उपराम रहने लगा। पिताजी तो सत्संगके लिये कहीं जाने नहीं देते थे और न घरपर ही वे बैठकर भजन करने देते थे। उन्हें तो घरका काम करना ही पसंद था। वे कहा करते थे, "तेरी तरह काम छोड़कर थोड़े ही भजन किया जाता है, मेरे मनमें हर हमय 'राम राम' होता रहता था। तू भी इसी प्रकार भजन किया कर।" किन्तु मुझसे इस प्रकार भजन होता नहीं था। अतः मनमें बड़ी अशान्ति रहती थी। मन भजन-सत्संगके लिये उत्सुक था, परन्तु कर नहीं सकता था। इसलिये निश्चय किया कि मुझे घर छोड़ देना है। एक सूरदासजी मेरे मित्र थे। उन्होंने मुझे समझा-बुझा कर रोकना चाहा। परन्तु मैं रुक न सका।

एक दिन रात्रिके समय मैं घरसे चल पड़ा। उस समय ऐसा कोई विचार नहीं था कि मुझे बाबाके ही पास रहना है। सोचता था कि कहीं एकान्तमें वृक्षके तले रहूँगा और एक समय भिक्षा करके रात-दिन भगवन्नाम जपा करूँगा। परन्तु ऐसी शान्तस्थितिमें रहना सहज बात तो नहीं थी। मैंने तो केवल कुछ पुस्तकें ही पढ़ी

थीं, बाहर निकलकर देखा तो कुछ भी नहीं था। मैं कानपुर, लखनऊ, अयोध्या, काशी, प्रयाग, और चित्रकूट आदि स्थानोंमें घूमता रहा। कई महात्माओंके पास गया। उनसे मनकी शान्ति और भजनमें प्रवृत्ति होनेका उपाय पूछा; परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला। कहीं कोई नियमित सत्संग भी प्राप्त नहीं हुआ। जहाँ जाता असंतोष ही रहता; कुछ न कुछ कहकर वे मुझे टाल देते। मेरा मन भजनमें न लगकर भोजनकी चिन्तामें ही अधिक रहने लगा। आखिर, मैं निराश हो गया और तंग आकर रोने लगा। बहुत देर रोते रहनेपर मुझे स्मरण हुआ कि श्रीउड़िया बाबाजीके यहाँ तो नित्य सत्संग होता है, अतः वहीं चलूँ।

बस मैं, तुरन्त चल पड़ा और कुछ दिनोंमें वृन्दावनमें उनके आश्रममें पहुँचा। वहाँ उन दिनोंमें रामलीला हो रही थी। मैं प्रायः आश्रमके छोटे दरवाजेपर बैठा रहता था। वहीं आते-जाते समय मुझे पूज्य बाबाके दर्शन हो जाते थे। मैं उन्हें केवल प्रणाम कर लेता था, और कुछ कहने या पूछनेका मुझे साहस नही होता था। एक दिन बाबाने मुझसे कहा, "उत्सव समाप्त हो गया, अब यहाँसे भाग जा।" यह उनकी पहली कृपा थी। मेरे रोम-रोममें आनंदकी लहर दौड़ गयी। उनसे कुछ कहनेकी न तो मेरी हिम्मत थी और न स्थिति ही। कुछ दिन बाद वे बोले, "आश्रममें कुत्ते घुस जाते हैं, उन्हें रोक दिया कर।" इससे मुझे उनके श्रीचरणोंमें रहनेका आश्वासन मिल गया। उन्हीं दिनों एक बार मैं कीर्तन करते हुए मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जब चेत हुआ तो देखा कि मेरे बिल्कुल समीप श्रीमहाराजजी खड़े हुए हैं। अपनेको इस स्थितिमें देखकर मुझे बड़ा संकोच हुआ और उठकर दूर खड़ा हो गया। यह उनकी कृपा थी या मेरी दुर्बलता—इसका निर्णय मैं नहीं कर सका।

(३)

इस प्रकार पहली वार मुझे श्रीमहाराजजीके चरणों में रहने का अवसर मिला। परन्तु मेरी बाल्यावस्था थी और नया-नया विरक्त हुआ था। इसलिये चित्त घवड़ाने लगा और मैं अपने घर चला गया। तथापि वहाँ अधिक न ठहर सका। बाबाका चातुर्मास्य कर्णवासमें होने वाला था। अतः मैं भी वहीं चला गया और बागमें रहने लगा। मुझे बागमें देखते ही श्रीमहाराजजी अप्रसन्नता प्रकट करते हुए कहने लगे, "इस लड़केको यहाँसे भगा दो, या पुलिसको बुलाकर पकड़वा दो। हमें इससे कोई सेवा नहीं करानी है। छोटे-छोटे लड़के घर छोड़कर भागने लगते हैं और महात्माओंको तंग करते हैं। ये व्यर्थ अपना जीवन बिगाड़ते हैं।" ऐसा कहते हुए वे दूसरी ओर चले गये। इसके पश्चात् जब कभी वे मुझे कोई काम करते देखते तो तुरन्त हटवा देते। बुद्धिसागरजी सर्वदा श्रीमहाराजजीके साथही रहते थे। उन्होंने एक दिन उनसे कहा, "यह तो कमाकर खाता है।"* यह सुनकर श्रीमहाराजजी बोले, "तो कोई बात नहीं, भले ही सेवा करे।"

कुछ दिनों पश्चात् महाराजजी मुझपर प्रसन्न हुए और मुझे मातृमण्डलमें सेवा करनेकी आज्ञा हुई। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि यहाँ मुझे श्रीमहाराजजीकी निजी सेवा करने का

---

* उन दिनों आठ घण्टे काम करनेपर मजदूरको दो आना मिलते थे। मैं केवल दो घण्टे काम करता था। इससे मुझे चार पैसे मिल जाते थे। किशोरीलालजीके क्षेत्रमें उनका काम समाप्त हो जानेपर मैं नमक डालकर रोटी सेक लेता था। उन्हें कभी तो यों ही खा लेता और कभी क्षेत्रसे, बच जाने पर, थोड़ी दाल मिल जाती थी अथवा आम मिल जाता तो उसके साथ खा लेता था।

सुअवसर मिल जाता था। मैं चार महीनें तक यह सेवा करता रहा। इससे मेरा चित्त ऐसा निर्मल रहता था जैसा इससे पूर्व कभी नहीं रहा। फिर मेरे मनमें विचरनेकी तरङ्ग उठी और मैं आग्रहपूर्वक बाबासे आज्ञा लेकर श्रीगङ्गाजी की धारा के सहारे अनेकों कष्ट सहता ऋषिकेशतक गया। वहाँ कुछ दिन ठहरा, परन्तु श्रीमहाराजजीको छोड़कर अधिक दिन नहीं ठहर सका। अतः लौटकर श्रीहरिबाबा के बाँध पर, जहाँ से कि मैं गया था, लौट आया। किन्तु बाबाके सामने जानेमें संकोच होता था, अतः रात्रि के समय एकान्त पाकर उनके पास जाकर श्रीचरणों में प्रणाम किया। परन्तु वावा कुछ अप्रसन्नताकी मुद्रामेंही रहे। मैं भी उनके पीछे-पीछे घूमता रहा। डढ़ दिन वाद वे एकान्तमें स्वयं ही बोले "बेटा ! मैं विरक्तोंसे बहुत प्रसन्न रहता हूँ। परन्तु उन ब्रह्मचारी की तरह*विरक्त होनेसे क्या लाभ ? विरक्त हो तो सच्चा ही होना चाहिये।"

फिर धीरे-धीरे आपने मुझे कोठारी बना दिया। मुझे दूसरेका किया काम पसंद नहीं था, अतः कोठारका छोटे से छोटा काम मैं स्वयं ही करता था। मैंने मनमें निश्चय कर लिया था कि इसी तरह सेवा करते हुए जीवन व्यतीत करूँगा। सेवा करने में मुझे बड़ा आनन्द आता था। इन दिनों बाबा मुझसे प्रसन्न थे। परन्तु वे मेरे भजन-साधनका विशेष ध्यान रखते थे, मुझसे सेवा कराना उन्हें अभीष्ट नहीं था। वे तो मुझे स्वावलम्बी और संयमी बनाना चाहते थे। अतः बीच-बीचमें इस प्रकार डाँटते रहते थे

---

* यह बात वावाने एक ब्रह्मचारीकी ओर सकेत करके कही थी, जो उनके पास ही रहते थे। उन्होंने चातुर्मास्यके लिये एक घड़ा आटा रख लिया था, जिससे यदि विशेष वर्षा हो तो भिक्षाके लिये न जाकर स्वयं रोटी बनालें।

कि पहले तो तू भजन-पाठ आदि किया करता थ, पर अव नहीं करता, रात-दिन काममें ही लगा रहता है। परन्तु मैं तो कामको ही भजन मानता था। मेरे शरीरमें आँख, कनपटी, पैर और कमर आदिपर श्वेत कुष्ठके दाग हो गये थे। उनके लिये बावाने मुझसे कहा कि शिव मन्दिरपर जाकर झाड़ू लगा आया कर, तेरे दाग ठीक हो जायँगे। मैं पहले तो पाँच-सात दिन झाड़ू लगाने के लिये शिव-मन्दिर पर गया। फिर विचार किया कि बाबाका आश्रम भी तो शिवमन्दिर ही है। तव मैं वहीं झाड़ू लगाने लगा। अव मेरे सव दाग मिट गये हैं। कोई पहचान भी नहीं सकता कि मेरे शरीरपर श्वेतकुष्ठके दाग थे। वस मैं भगवत्सेवा समझकर सब काम करता रहा।

(४)

एक बार श्रीमहाराजजीने मुझे बुलाकर कहा कि तू घर चला जा। मैं बहुत घवड़ाया और चकित भी हुआ। फिर साहस करके पूछा, "मुझसे क्या अपराध हुआ ?" तव वोले, "तू मोटा बहुत हो गया है, रात-दिन खाता रहता है।" मैंने कहा. 'आपकी जैसी आज्ञा होगी वही करूँगा, आप घर न भेजें।" वोले, "हम जो कुछ दें वही खाना, दूसरी चीज नहीं।" इससे पहलेकी वात है नवरात्रिमें मालपूआ और चनोंका प्रसाद बँटा था। एक दिन सबको डेढ़-डेढ़ मालपूआ दिया गया। मैं था कोठारी। मैंने अपनी परिस्थितिका दुरुपयोग करके पाँच मालपूआ खा लिये। दूसरे दिन मुझे ज्वर हो गया। तव आपने बुलाकर पूछा, "कल क्या खाया था ?" मैंने जव सच्ची वात बतायी तो बड़े नाराज हुए और वोले, "जब हमने सबको डेढ़-डेढ़ मालपूआ दिया तो तूने पाँच क्यों खाये ? इसीसे तू बीमार हुआ है।"

इसी प्रकार एकबार और मुझे ज्वर हुआ था। तव भी

पूछा कि तूने कल कोई नया काम किया था ? मैंने बताया कि तेल लगाकर स्नान किया था। इस पर बोले कि तूने तेल क्यों लगाया ? तू तो कभी लगाता नहीं था। जिसे साधु होना है उसे तो तेल लगाना ही नहीं चाहिये। उन दिनों सर्दीके कारण शरीर बहुत रूखा-सा रहता था। दूसरोंके शरीरोंको चिकना-चुपड़ा देख कर ही मैंने तेल लगा लिया था।

(५)

एक बार श्रीमहाराजजी बाबा रामदासजीके यहाँ उत्सवपर करह (ग्वालियर) पधारे थे। मैं पीछेसे कोठारका काम निपटाकर रास्तेमें महाराजजीसे जाकर मिला। वे तो पैदल चलते थे और मैं रेलद्वारा चलकर वहाँ पहुंचा था। जब उत्सव समाप्त हो गया तो उन्होंने मुझे डांटा और कहा कि तू बहुत बहिर्मुख हो गया है, इसलिये हमारे यहाँसे सदाके लिये चला जा, फिर मुँह मत दिखाना। आपके साथ किशोरीलालजी आदि कुछ अन्य भक्त-गण भी थे। उन्होंने कहा, "महाराजजी ! जो आपके पास एक-बार आ गया उसके लिये यह कैसे सम्भव है कि फिर न आवे ?" मेरे विषयमें तो यह बात सच ही थी। इस समय उनका आदेश सुनकर मैं तो घबड़ा ही गया था। तब आपने कृपापूर्वक कहा, "अच्छा ! जैसे दूसरे लोग समय-समयपर आते रहते हैं वैसे ही यह भी हो जाया करेगा।"

श्रीमहाराजजीकी यह डाँट-फटकार मेरे प्रति उनकी महती कृपा थी। वे मुझे स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। हुआ भी वही जैसा उनका संकल्प था। मुझे किन्हीं की भी डाँट-फटकार सहन करनेका स्वभाव नहीं था। ऐसा अवसर भी प्रायः नहीं पड़ा था। अतः मैंने निश्चय किया कि अब संन्यास लेकर भिक्षावृत्तिसे रहूँगा और जहाँ श्रीमहाराजजी रहेंगे उनकी सेवा

भी करूँगा। परन्तु जब मैं संन्यास लेकर आया तो उन्होंने मेरे लिये सेवाका द्वार ही बन्द कर दिया। बोले कि साधु को जान-पहचानकी जगहसे सौ कोस दूर रहना चाहिये। तभी उसका सुधार हो सकता है। हमारे यहाँ रहनेसे तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता। परन्तु मेरे लिये बाबाको छोड़ना असम्भव था। मुझे ऐसा सत्सङ्ग और कहीं दिखायी नहीं देता था। अब मैं गाँव में भिक्षा कर लेता और पूरा समय सत्संगमें ही लगाता था। पहले तो सेवाकार्यमें ही लगा रहता था, सत्संगकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझता था। उन्हींकी कृपासे मैं सत्सङ्गमें लगा। और कुम्हार जैसे ठोक-पीटकर घड़ेको सुन्दर बना देता है उसी प्रकार उन्होंने मुझे इस योग्य बना दिया कि मैं किसी भी तरह कहीं भी रहूँ, मेरे हृदयकी शान्ति अखण्ड बनी रहती है। इसे मैं अपना कोई पुरुषार्थ नहीं मानता, उन्हींका कृपाप्रसाद समझता हूँ। यद्यपि मेरे संन्यास लेने पर वे दो वर्षतक मुझसे कभी सीधे नहीं बोले, परन्तु मेरी सब बातोंका ख्याल रखते थे।

(६)

एक बार बाँधपर पीलीकोठीके कुएँपर मैं अपने कपड़ों में साबुन लगा रहा था। उसी समय बाबा उधर आ गये। मैं उन्हें दूरसे ही देखकर वहाँसे हट गया। वे कुएँपर आकर खड़े हो गये और पूछने लगे कि कौन कपडेमें साबुन लगा रहा है? फिर तो मुझे बताना ही पड़ा। सुनकर बड़ा खेद-सा प्रकट करते हुए बोले, 'साधुको साबुन लगानेकी क्या आवश्यकता है?' मैंने सफाई देते हुए कहा, "मेरे पास बहुत दिनोंसे साबुन पडा था। किसीने बिना ही माँगे दे दिया था।" इसपर वे और भी बिगड़े और बोले कि "आसाममें चला जाय तो वहाँ साधुओंको लोग लड़कियाँ भी दे देते हैं। तब क्या तू विवाह भी कर लेगा? भैया! हमने तो बीस

वर्ष तक अपनी गुदड़ी नहीं धोयी। धोनेका काम ही नहीं पड़ता। साधु तेल लगाता नहीं और मैली जगह बैठता नहीं। फिर उसका वस्त्र मैला क्यों होगा ? अब तो साधु शौकीन हो जाते हैं और अपनी इच्छा की पूर्त्तिके लिये गृहस्थोंकी गुलामी करते रहते हैं।"

इस प्रकार वे मुझे ही नहीं सभीको सँभालते रहते थे। आश्रमके लोग प्रायः काम कम करते थे। वे बाबाके सामने तो खूब दौड़-धूप करते थे किन्तु उनके हटते ही इधर-उधर हो जाते थे। बाबा उनके इस व्यवहारसे बहुत असंतोष प्रकट कर रहे थे। उसी समय किसीने कहा, "इन सबको निकाल क्यों नहीं देते ?" तब बोले, "ईश्वर तो इन्हें अपनी सृष्टिसे निकालता नहीं, मैं कैसे निकाल दूँ ?"

ऐसी थी उनकी अद्भुत अनुकम्पा।
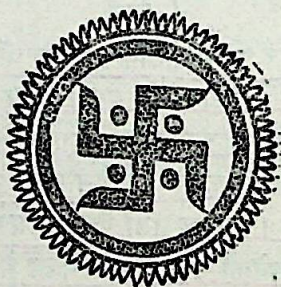
स्वामी श्रीब्रह्मर्षिदासजी उदासीन

प्रथम दर्शन

मुझे बाल्यकालसे ही महापुरुषों के सान्निध्य, सेवा और सत्संगादिकी लगन रही है। पूर्वाश्रमका परित्याग करनेके पश्चात् सिद्ध महापुरुषोंके दिव्य दर्शनोंको लालसासे ही मैं राजगृह, तपोवन (गया), काशी, प्रयाग, अयोध्या आदि तीर्थस्थानों एवं लखनऊ, कानपुर आदि नगरोंमें विचरता हुआ गङ्गातटपर सोरों तीर्थमें पहुंचा। वहाँ मैं श्रीदातास्वामीजीके पास ठहरा। ये उस स्थानके एक प्रसिद्ध संत हैं। उन्हींके यहाँ पहलीवार मैंने स्वनामधन्य पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीउड़ियाबाबाजीका नाम सुना।

इसके पश्चात् सं० १९९१ की बात है, मैं सोरों से पैदल विचरता हुआ पूज्य श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट पहुंचा। वहाँ मालूम हुआ कि इस समय श्रीमहाराजजी पूज्य श्रीहरिबाबाजी महाराजके बाँधपर हैं। अतः वहाँसे मैं नरवर, कर्णवास, भेरिया, अनूपशहर आदि होता हुआ पैदल बाँधपर पहुंचा। यह मध्याह्न के प्रायः १२ बजेका समय था। जिस समय वहाँ पहुंच कर मैंने अपने चिरभिलषित सन्तसम्राट् श्रीमहाराजजीका पुण्य दर्शन किया उस समय मेरे मनकी जो अवस्था थी उसका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। मैं रास्ते भर श्रीमहाराजजी की

अनुपम गुणगरिमाकी महिमा श्रवण करता आया था। आज उसी की अपरोक्षानुभूतिका सुअवसर प्राप्त हुआ। मैंने रास्तेमें ही कुछ वन्य पुष्पोंकी एक माला गूँथ ली थी। वह भावविभोर होकर मैंने उनके गलेमें पहना दी। यह भी संकोच नहीं किया कि इस अकिंचन भिक्षुकी इस नगण्य भेंटसे वे कैसे रीझेंगे। किन्तु महाराजजी तो वात्सल्यकी मूर्त्ति थे, बड़े ही ममतापूर्ण स्वरसे बोले, "जाओ सबसे पहले भिक्षा कर लो। फिर दर्शन सत्संगादि करना।"ऐसा कहकर एक व्यक्तिको आज्ञा दी, 'जाओ, इन्हें भिक्षा दिला देना।'

अस्तु, मैं भिक्षा करके जल्दी ही लौट आया। मुझे तो उनके दिव्य दर्शनोंसे तृप्ति ही नहीं होती थी। मैंने आकर देखा कि श्रीमहाराजजी कुछ प्रवचन कर रहे हैं। मुझे ऐसा मालूम होता था मानो मुझे ही लक्ष्य करके उनका वह उपदेश हो रहा था। सम्भवतः गीताके इन श्लोकोंकी व्याख्या हो रही थी—

"परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥"
"इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥"(१४।१।२)

श्रीमहाराजजी बार-बार इसी बात पर जोर दे रहे थे कि 'परम सिद्धि' क्या है। उनके शब्दोंसे यही ध्वनित होता था कि श्रीभगवान्‌की प्राप्ति वास्तवमें परम सिद्धि है; मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि सिद्धियोंको परमसिद्धि कभी नहीं कह सकते। उनकी प्राप्तिके ज्ञानयोग,भक्तियोग,कर्मयोग आदि अनेकों मार्ग हैं। इसके पश्चात् उस परम सिद्धिकी प्राप्तिमें विघ्नरूप होनेके कारण आपने धूम्रपान आदि सामाजिक कुरीतियों के त्यागपर जोर दिया।

इस प्रकार मैं श्रीचरणोंमें सम्भवतः तीन दिन ठहरा। उसके पश्चात् वहाँसे अहार आदि पुण्य क्षेत्रोंके दर्शन करता हुआ हरिद्वारकी ओर चला गया। उस समय तो मैं श्रीमहाराजजीसे वियुक्त हो ही गया, परन्तु उनका अलौकिक स्नेह सदाके लिये अमिट-सा होकर मेरे हृदयपटलपर अङ्कित हो गया।

गढ़मुक्तेश्वर में अपूर्व सन्तसमागम

एकबार मैंने श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ हरिद्वारसे वृन्दाबनकी यात्रा की। मार्गमें मुझे और भी कई महात्माओंके दर्शन हुए। उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं, दण्डिस्वामी श्रीसोमतीर्थजी महाराज, जिनकी सन्निधि में मैं पूरा चातुर्मास्य ठहरा था। उसी चातुर्मास्यमें एक दिन रात्रिमें उनके साथ पूज्यपाद श्रीमहाराजजी का प्रसंग छिड़ गया। मैं बाँधपर उनके दर्शन करके परम प्रभावित हो ही चुका था; आज मानो उसकी और भी पुष्टि हो गयी। पूज्य श्रीदण्डिस्वामीजी ने आपके विषयमें जो बातें कहीं उनसे श्रीमहाराजजीके प्रति मेरे हृदय में अपार श्रद्धा बढ़ गयी। जिस समय रात्रिमें यह चर्चा हो रही थी मेरे मनमें ऐसा भाव हुआ कि यदि कहीं इन दिनों श्रीमहाराजजी यहाँ (गढ़मुक्तेश्वरमें) आ जाते तो कितना आनन्द होता?

प्रातःकाल होने पर जब श्रीदण्डिस्वामीजी गङ्गातट पर गये तो मैं भी उनके साथ ही चला गया। वहाँ मैंने देखा कि एक फूँसकी झोंपड़ीके आगे एक बड़ा-सा तख्त पड़ा हुआ है। उसपर श्रीमहाराजजी विराजमान हैं और पूर्वाभिमुख होकर ध्यानस्थ बैठे हैं। उनका सारा अङ्ग चादर से ढका हुआ था। मैं मानो उन्हींकी अद्भुत आकर्षण शक्तिसे खिंचकर उधर चला गया। यह देखकर मैं तो अवाक् रह गया। उस झोंपड़ीके एक ओर आपका

काष्ठमय कमण्डलु भी टँगा हुआ था। उसे देखकर मेरे अनुमान की और भी पुष्टि हो गयी। यह देखकर मेरे आनन्दका ठिकाना न रहा और मैंने दवे पाँवसे झट श्रीदण्डिस्वामीजीके पास जाकर कहा, 'पूज्य श्रीउड़ियास्वामीजी यहां गङ्गातटपर पधारे हुए हैं।" किन्तु उन्होंने मेरी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें सम्भवतः मेरे कथनमें विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि पहले से तो बाबाके वहाँ पधारने की कोई सूचना था नहीं।

किन्तु श्रीस्वामीजीकी इस उपेक्षा का मेरे चित्त पर कुछ विपरीत प्रभाव पड़ा और मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं श्रीमहाराजजीका पूरा पता लगाऊँगा। बस, श्रीस्वामीजीके भिक्षा कर लेनेपर मैं दोपहरको ११-१२ बजेके लगभग चुपके-से निकल पड़ा और श्रीगङ्गातटपर आकर मैंने एक-एक झोंपड़ी को छान डाला। किन्तु जब कहीं भी बाबाके दर्शन न हुए तो मुझे बहुत दुःख हुआ। अन्ततोगत्वा मुझे एक झोंपड़ी दिखाई दी। मैंने सोचा, "जब सभी को देखा है तो इसे ही क्यों छोड़ूँ।' अतः आशा-निराशाके बीचमें लड़खड़ाते हुए जैसे ही मैंनें उस झोंपड़ीमें झांका कि मुझे हमारे जीवनसर्वस्व सामने विराजमान दिखायी दिये। मुझे देखकर आप खिलखिलाकर हँसने लगे। उस समय मुझे ऐसा लगा मानो आप हमारे साथ भूलभुलैयाका खेल खेल रहे हैं, दर्शन करते ही मैं दौड़कर चरणोंमें पड़ गया और रोने लगा। बहुत पुकारने पर भी जब माँ आनेमें देर कर देती है तो बालकको उस पर जैसी खीझ होती है, इस समय वैसी ही अवस्था मेरे चित्तकी थी। मैं रो रहा था और श्रीमहाराजजीने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा, 'कहाँ ठहरे हो ?"

मैं—स्वामी श्रीसोमतीर्थजीके पास।

बाबा—अच्छा, देखो, बेटा ! किसी से हमारे आने की चर्चा मत करना। इस समय मैं बहुत अशान्त वातावरण से यहाँ आया हूँ और मुझे यहाँ कुछ दिनों एकान्तमें ठहरना है।

मैं मौन होकर आपके वचनामृतका पान करता रहा। फिर जब मैंने कुछ निवेदन करने की भावना प्रकट की तो आप बड़ी उदारतासे बोले, "हाँ, क्या पूछना है, पूछो।"

मैं—भगवन् ! मनकी चंचलताके बिषयमें वीरवर अर्जुनने जो प्रश्न किया है वह तो सभी साधकोंका प्रतिनिधित्व किया है। कोई भी साधक इस विषयमें अपना अनुभव उन्हीं शब्दों में व्यक्त करेगा। तथा श्रीभगवान्‌ने भी उसका उचित ही उत्तर दिया है। किन्तु उसके सिवा यदि उसका कोई और सरल-सा मार्ग या समाधान हो तो बतानेकी कृपा करें।

श्रीमहाराजजी हँसते हुए बोले—बेटा ! जैसे जहाज के कागको बैठनेके लिये कोई दूसरी जगह न मिलने पर वह अन्तमें जहाजही पर आ बैठता है, उसी प्रकार जब मनको भी कोई और अवलम्ब न मिले तो वह स्वयं शान्त हो जायगा। देखो, मन के सामने दो ही मार्ग हैं—एक विषयचिन्तनका और दूसरा ब्रह्मचिन्तनका। यदि वह ब्रह्मचिन्तनमें लगा रहे तब तो ठीक है, नहीं तो विषयचिन्तन ही करेगा। अतः उसे पुनः-पुनः विषयचिन्तनसे हटाकर ब्रह्मचिन्तनमें लगाते रहना चाहिये। जब श्रुति कहती है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'नेह नानास्ति किंचन' तो बार-बार इसीका विचार करना चाहिये। इसकी दृढ़ता हो जाने पर फिर भला विषय-चिन्तन कैसे हो सकता है ?

इसी प्रकार कुछ देर तक आपका प्रवचन होता रहा। उसका उपसंहार ब्रह्माभ्यासमें ही हुआ—

'तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यत्तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥'

यह उपदेश चल ही रहा था कि वहाँ कुछ महिलाओंका झुण्ड पूजा-आरती आदि का सामान लिये आ पहुँचा। सभी आनन्दमें विभोर थीं और सभोने बारी-बारीसे चरणवन्दना करके आपकी पूजा और आरती की। मैं यह सब दृश्य देख रहा था और मनमें कहता था कि यह ऐसी ही बात है कि सूर्य का उदय हो और लोगोंको यह आदेश दिया जाय कि खबरदार, किसी से कहना मत कि सूर्योदय हुआ है।

अस्तु। कुछ देर पश्चात् मैंने जानेके लिये आज्ञा माँगी, क्योंकि मैं श्रीदण्डिस्वामीजीसे कहे बिना ही चला आया था और उनके विश्रामकी समाप्तिका समय सन्निकट था। श्रीमहाराजजी ने मुझे पेड़ोंका प्रसाद दिया और चलते समय फिर आज्ञा की कि 'देखो, किसीसे कहना नहीं। अच्छा, भूल मत जाना।' चलते समय मेरे हृदयमें मर्मान्तक पीड़ा-सी होने लगी, किन्तु वस ही क्या था। मैंने रोते-रोते साष्टांग प्रणाम किया। तब श्रीमहाराजजी बोले, "बेटा! तुम इस तरह गिरकर प्रणाम क्यों करते हो?" मैंने विनम्र स्वरमें हाथ जोड़कर निवेदन किया, "भगवन्! आप जैसे गुरुजनोंके अकुतोभय श्रीचरणोंमें गिरकर ही यह सिर संसार के सामने उठ सकेगा, अन्यथा इसे कुचल देनेके लिये सारा संसार कटिबद्ध-सा है। आजतक ऐसा कौन व्यक्ति उत्पन्न हुआ है जिसका सिर संसारवालोंने कुचलना नहीं चाहा। संसारके सामने तो वही सिर उठ सकता है जिस पर आप जैसे गुरुजनों का वरद हस्त अभय-मुद्राके सहित सुशोभित है।"

बस, मैं अपने निवासस्थान पर चला आया। श्रीदण्डि-स्वामीजीसे मैंने तो श्रीमहाराजके पधारनेकी बात नहीं कही, किन्तु

पं० तृषारामजी और एक ब्रह्मचारीजीने उन्हें इसकी सूचना दे ही दी। तब उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, 'तुम ठीक ही कहते थे, मैंने तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं किया, बड़ी गलती की। तुम उनके पास जाओ और मेरी ओरसे करबद्ध होकर प्रार्थना करो कि गङ्गातटपर मच्छर अधिक हैं, इसलिये रात्रिमें यहाँ असौड़ा-वालोंकी धर्मशालामेंही विश्राम करें।' मैंने उक्त दोनों ब्रह्मचारियोंके सहित श्रीमहाराजके पास जाकर श्रीस्वामीजीके कथनानुसार निवेदन किया। तब आप बोले, "भैया! उनसे कह देना कि गङ्गातट-को छोड़कर वहाँ जाना मेरे लिये ठीक नहीं होगा। कल जब मैं गाँवमें भिक्षा करनेकेलिये आऊँगा तब उनकादर्शन वहीं करूँगा।' मैंने श्रीदण्डिस्वामीको यह बात कही तो वे बोले, "अच्छी बात है, जैसी उनकी इच्छा। संत तो सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होते हैं।"

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं फिर श्रीस्वामीजीके साथ गङ्गा-स्नानके लिये गया और फिर उन्हें साथ लेकर श्रीमहाराजजी के पास उसी कुटीमें पहुंचा जिसमें पहले दिन उनके पुण्य दर्शन किये थे। श्रीमहाराज उस समय अकेले बैठे हुए थे। दोनों महा-पुरुष बड़े प्रेमसे मिले। उनका अलौकिक प्रेम देखकर मैं मन्त्र-मुग्ध-सा रह गया। कुशल-प्रश्नके पश्चात् श्रीमहाराजजी ने कहा कि भिक्षा करके मैं थोड़ी देरके लिये आपकी कुटिया पर ही आऊँगा। आप अधिक कष्ट न करें। श्रीस्वामीजी ने कहा, "आपकी जैसी आज्ञा।" फिर प्रायः एक घण्टा बातचीत करके श्रीस्वामीजीके सहित हम सब लोग लौट आये।

मध्याह्नमें भिक्षा करके श्रीमहाराजजी धर्मशालामें पधारे। उनके साथ भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा, श्रीपन्नालाल-जी दिल्ली तथा और भी अनेकों भक्त थे। उस समय सारी धर्मशाला भक्तों और दर्शकों से भर गयी थी। श्रीमहाराजजीतो

ऊपरकी कुटी में श्रीस्वामीजीके पास चले गये और सब लोग नीचे बैठे रहे। श्रीमहाराजजीके पास उनके कुछ विशेष कृपापात्र ही रहे। इस प्रकार प्रायः एक सप्ताह श्रीमहाराजजी गढ़मुक्तेश्वर में रहे। उन दिनों वहाँ बड़ी चहल-पहल रही। बाहर से भी अनेकों भक्त आकर एकत्रित हो गये। जब तक गढ़मुक्तेश्वरमें ठहरे महाराजजी नित्यही भिक्षाके पश्चात् धर्मशालामें आते रहे। उस समय मेरी ड्यूटी उनको पंखा झलनेकी थी। स्वामीजी श्रीमहाराजजीके लिये कोई चीज भेजते तो उसे भी मैं ही पहुंचाता था। इससे मैं अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता था।

जब श्रीमहाराजजीने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया उन दिनों मुझे मलेरियाने दबा लिया था। मैं ज्वराक्रान्त अवस्थामें था। जाते समय श्रीमहाराजजी कृपा करके मेरे पास आये। उस समय उनके चरणों का दर्शन करके मुझे जो सुख हुआ उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, मेरा हृदय ही जानता है—

'सो सुख जानहि मन अरु काना। रसना पै नहिं जात बखाना॥'

चलते समय आपने मुझे आदेश दिया कि बेटा अत्यधिक आग्रहपूर्वक कोई काम नहीं करना चाहिये। इस आदेशका कारण यह था उस-समय मैं कुछ हठी-सा हो गया था। भिक्षादि करने में बहुत संकोच होता था। दूसरे समय तो करताही नहीं था, एक समय भी पूरा भोजन नहीं करता था। कभी-२ तो उपवास भी हो जाता था। श्रीमहाराजजीने चलते समय मुझे यह बालहठ त्यागनेका आदेश दिया और यह भी कहा कि अभी तुम्हारी नस-नाड़ी कमजोर हैं इसलिये सायंकालमें भी कुछ खा लिया करो। इस प्रकार युक्ताहार-विहार रखकर ही निरन्तर भजनमें संलग्न रहो।

मैंने श्रीमहाराजजीकी यह आज्ञा शिरोधार्य करली, क्योंकि–
'सिर धरि आयुस करिअ तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा।"

सहता और आगरामें

मैं अपने जीवनमें महापुरुषोंके दर्शनामृतके लिये सदैव पिपासू रहा हूँ। मैंने कई महापुरुषोंके नाम सुन रखे थे। उनमें एक थे आगरेके सुप्रसिद्ध संत श्री १०८ श्रीमत्परमहंस स्वामी श्रीयोगानन्दजी (श्रीआलूवाले बाबाजी) महाराज। उनके दर्शनों के लिये मैं हरिद्वारसे पैदलही आगरा गया। किन्तु मेरा दुर्भाग्य। वहाँ पहुँचनेपर मालूम हुआ कि उनका देहावसान हुए प्रायः छः मास हो चुके। मैं निराश होकर लौटना ही चाहता था कि वहाँ के एक प्रमुख व्यक्ति ब्रह्मचारी विष्णुजीने, जो वहाँसे प्रकाशित होनेवाले मासिक 'वेदान्त केसरी' के सम्पादक थे, मुझे रोक लिया। उन्होंने मुझसे कहा कि श्रीमहाराजजी (श्री आलूवाले बाबाजी) द्वारा रचित बहुत-से ग्रन्थ हैं, उनका आप यहाँ रहकर अध्ययन करें। यह बात मुझे जँच गयी और मैं वहीं एक गुफामें रहकर उनके ग्रन्थोंका स्वाध्याय करने लगा।

इसी समय मैंने सुना कि आगरे से थोड़ी ही दूर सहता नामक ग्राममें भक्तवर भगवद्दासके बागमें श्रीउड़िया बाबाजी पधारे हुए हैं। बस, मेरे हृदयमें उनके दर्शनोंकी लालसा जाग्रत् हुई और मैं वहाँसे चल दिया। इन दिनों सम्भवतः चैत्रके नवरात्र थे, क्योंकि जब मैं सहता पहुँचा तो देखा कि श्रीमहाराजजीकी सन्निधिमें श्रीरामचरितमानसका नवाह्न पारायण हो रहा है। इस पारायण के अग्रणी थे श्रीरघुनाथजी महाराज। इस समय इस स्थानपर श्रीमहाराजजीके अनेकों प्रमुख भक्त एकत्रित थे। इसी समय मुझे प्रथम बार श्रीस्वामी रामदासजी उदासीन और दण्डि-

स्वामी श्रीसियारामजीके भी दर्शन हुए। सहतामें सत्संग और कीर्तनादिकी खूब धूम थी। श्रीमहाराजजी स्वयं श्रीमुख से गीता शङ्करानन्दीकी कथा कहते थे। पहले स्वामी सियारामजी अग्रणी होकर गीताजीके एक अध्यायका मूल पाठ करते थे और फिर श्रीमहाराजजी श्रीमुखसे एक-दो श्लोकोंकी विशद व्याख्या करते थे। जिस समय मैं पहुँचा, गीता अध्याय १३के नवें श्लोककी व्याख्या हो रही थी।

मुझे श्रीमहाराजजीने स्वामी रामदासजीके पास ठहरने की आज्ञा प्रदान की। उसी समयसे उनके साथ मेरी जो घनिष्ठता बढ़ी। उसका वे आजतक निर्वाह करते आ रहे हैं। ये पुण्य सस्मरण भी उन्हींके आग्रह का परिणाम हैं। इसके लिये मैं उनका आजीवन कृतज्ञ रहूँगा।

इस प्रकार रामनवमी तक सहता में खूब आनन्द रहा। यहाँ से श्रीमहाराज आगरा पधारे। पूज्य श्रीआलूवाले बाबाजी से आपकी बड़ी घनिष्ठता थी। अतः आगरा पहुँचने पर सबसे पहले आप उन्हींके आश्रमपर गये। आपके साथ बाबा श्रीरामदासजी रामायणी करह (ग्वालियर) वाले और ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी आदि और भी कई महानुभाव और भक्तवृन्द थे। इन सबके स्वागतकी व्यवस्था वेदान्तकेसरी-सम्पादक ब्रह्मचारी श्रीविष्णुजी महाराजने की थी।

जिस समय श्रीमहाराजजी योगानन्दाश्रम लालघाट पधारे उस समय वहाँ हजारों नर नारियोंकी भीड़ हो गयी। प्रातःकालका समय था,अतःदर्शनार्थियोंके साथ स्नानार्थियोंकाभी ताँता लगा हुआ था। मुझे तो श्रीमहाराजजी के सम्मुख होने में भी इतना संकोच होता था कि उनके सामने न बैठकर प्रायः श्रीरामदासजी महाराज उदासीनके पास उनकी ओट में बैठा करता था और यदि कोई

प्रश्न करना होता तो उन्हींके द्वारा कराता था। किन्तु आज मैं अपने भाग्यकी सराहना किन शब्दों में करूँ? श्रीमहाराजजी जोन्स मिलके पीछे अचलेश्वर महादेव की ओर नित्यक्रिया से निवृत्त होनेके लिये जा रहे थे। मैं भी साथ हो लिया। यह देख कर और भी कई आदमियोंने हमारा अनुकरण किया। परन्तु श्रीमहाराजजीने सभीको निषेध कर दिया और मेरे हाथमें अपना कमण्डल देते हुए कहा, "कोई और न आवे, केवल यही आयेगा।" बस, मेरा हृदय आनन्दातिरेक से गद्गद् हो गया। कुछ आगे चलकर आपने प्रश्न किया, 'क्यों बेटा! तू कुछ प्रश्न नहीं करता?" मैंने बड़े ही संकोचसे निवेदन किया, "श्रीचरणों की असीम कृपा है कि मुझे प्रश्न करनेका अवसर दिया गया। मैं तो आपके सम्मुख प्रश्न करनेमें बहुत संकोच का अनुभव करता हूँ, तथा बिना पूछे भी मेरे कई प्रश्न आपकी कृपासे अनायास ही हल हो जाते हैं। इसीसे मैं प्रश्न नहीं करता। कृपया क्षमा करें। इसके सिवा मैं देखता हूँ, आपके पास आने वालों में कोई बी. ए. हैं, कोई एम. ए. तथा कोई शास्त्री हैं, कोई आचार्य। मुझमें तो ऐसी कोई योग्यता नहीं है। ऐसी स्थितिमें कैसे प्रश्न करूँ?" इतना कहते-कहते मैं गद्गद् हो गया। तब श्रीमहाराजजी ने कहा, "नहीं, बेटा! जो इच्छा हो प्रश्न कर सकते हो, इसमें बी. ए., एम. ए. की क्या बात है?"

अब मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रश्न किया, 'श्रीमहाराजजी! समय भी थोड़ा ही है। अतः एक-दो प्रश्नोंका उत्तर देनेकी कृपा करें। हम लोग घर-बार छोड़कर जो चले आये हैं क्या यही वैराग्यका स्वरूप है? अथवा कुछ और भी है?

श्रीमहाराजजी बोले—"जन्ममृत्यु जराव्याधिदुःख दोषानुदर्शनम्' (गीता १३।८) इस अर्धालीकी अपरोक्ष अनुभूति जब भगवान् बुद्ध की तरह पद-पदपर होने लगे तब समझना

चाहिये कि सच्चा वैराग्य हुआ। यदि ऐसा न हो तब तो वैराग्य की विडम्बना ही समझनी चाहिये। वह तो वैराग्यका केवल औपचारिक ढङ्ग है।"

यह सुनकर मेरी आँखें खुल गयीं। हम लोग तो केवल घर छोड़ देनेको ही बहुत बड़ी बात मान लेते हैं और वैराग्यका केवल शिष्टाचार पालन करते रहते हैं। फिर मैंने दूसरा प्रश्न किया— "महाराजजी ! हम लोग जो रात-दिन कथा-कीर्तनको ही महत्व देकर उसीमें लगे रहते हैं क्या यही भक्तिका शुद्ध स्वरूप है ?"

इसपर श्रीमहाराजजी बोले—"नहीं, नहीं यह तो बहुत सामान्यकोटिकी बात है। इसे तो वैधी भक्ति कहते हैं। भक्ति का शुद्ध स्वरूप तो भगवान् शङ्कराचार्यने यह बताया है—'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते। स्वात्मतत्त्वानुसंधानं भक्तिरित्यपरे जगुः?'*(विवेक चूड़ामणि ३२) श्रीरामायणजीमें भी कहा है— "मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।"

फिर मैंने निवेदन किया, "महाराजजी ! क्या ज्ञान की केवलमात्र बड़ी-बड़ी बातें बनाना ही ज्ञानकी परिभाषा है, अथवा किसी स्थितिविशेष या अनुभूतिकी अपेक्षा है ?"

महाराजजी बोले—'न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया। ब्रह्मात्मैक्यबोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथा।" भइया ! मोक्ष तो ब्रह्म और आत्माकी अभिन्नताका अपरोक्ष ज्ञान होनेपर ही हो सकता है। योग, सांख्य, कर्म अथवा किसी भी अन्य ज्ञान

---

* अपने स्वरूपका अनुसंधान ही भक्ति कहलाती है तथा कोई लोग आत्मतत्त्वके अनुसंधानको भक्ति कहते हैं, श्रीमहाराजजी अधिकारी के अनुरूप उपदेश दिया करते थे। ब्रह्मर्षिदासजी विरक्त संत हैं इसलिये उन्हें उनके अनुरूप ही भक्ति का लक्षण बताया है।

से मुक्ति नहीं हो सकती। देखो, मनुष्यमें जो भी कला-कौशल, वाणीकी प्रखरता अथवा विद्वत्ता आदि चमत्कारी गुण होते हैं, वे सब तो उसके भोगके ही साधन हो सकते हैं, मोक्ष के कदापि नहीं हो सकते—

'वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रीवादनसौष्ठवम्।
प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते॥
'वग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये॥"

ज्ञानका वास्तविक स्वरूप तो है स्वस्वरूपावस्थिति—'स्वस्वरूपावस्थानं ज्ञानमित्यभिधीयते।' ब्रह्मादि नित्यसिद्ध भी विना स्वरूपावस्थानके आधे पल भी नहीं रहते—

'निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः शुकाद्याः सनकादयः॥'

अतः सदैव स्वरूपस्तिथिपर ध्यान रखना चाहिये।

मैं एकाग्रचित्तसे श्रीमहाराजजीके वचनामृतका पान करता रहा। यह उनके साथ मेरा प्रथम एकान्त वार्तालाप था और इसके पीछे भी मुझे ऐसा सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। इसके पश्चात् श्रीमहाराजजी नित्यकृ यसे निवृत्त होनेके लिये एकान्तमें चले गये और मैं वहीं खड़ा रहा। फिर यमुना स्नान करके आश्रम पर पधारे। वहाँ ब्रह्मचारी विष्णुजीने विधिवत् पूजन कर सभी समागत महानुभावोंको जलपान कराया तथा सभोको वेदान्तकेसरीका अङ्क भेंट किया। जब श्रीरामदासजी महाराज 'रामायणी' को अङ्क भेंट किया गया तो उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा, "मैं अभी अपनेको इसका अधिकारी नहीं मानता।" उनकी वह विनम्र मुद्रा देखते ही बनती थी। श्रीमहाराजजी कुछ देर आश्रम पर ठहरकर ब्रह्मलीन श्रीआलूवाले बाबाजीकी चर्चा करते रहे।

इसके पश्चात् सब भक्तोंके सहित आप अपने निवासस्थान श्रीरामचन्द्रकी बगीचीपर आये और वहाँ तीन-चार दिन ठहर कर श्रीवृन्दावनकी ओर चले गये।

अनूपशहर में

मैं कैलाश दर्शनके लिये जा रहा था। जब बुलन्दशहर पहुंचा तो मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी इस समय अनूपशहरमें विराजमान हैं। बस, मैंने निश्चय किया कि श्रीचरणों के दर्शन किये बिना आगे नहीं बढ़ूँगा। इतने ही में मुझे एक वयोवृद्ध दण्डिस्वामीके दर्शन हुए। मैंने अत्यन्त हर्षित हो शिष्टाचारपूर्वक उनका अभिवादन किया और पूछा, 'आप कहाँ पधार रहे हैं ?" वे बोले, "मैं श्रीउड़ियाबाबाजीके पास अनूपशहर जा रहा हूँ।" अब हम दोनोंका साथ हो गया। मार्गमें बराबर श्रीमहाराजजीकी ही चर्चा होती रही। वे मेरे आन्तरिक भाव की परीक्षा के लिये बीच-बीचमें श्रीमहाराजजीकी समालोचना कर देते थे। तब मैं बड़ी नम्रतासे ऐसा न करनेके लिये उनसे प्रार्थना करता था। अंत में उन्होंने कहा, "आपकी श्रद्धा देखकर मुझे अपार हर्ष हुआ, आप वास्तवमें श्रीमहाराजजीके प्रति सच्ची श्रद्धा रखते हैं।" पीछे मालूम हुआ कि आप श्रीमहाराजजीके ही एक अनन्य भक्त फर्रुखाबादी दण्डिस्वामी श्रीआत्मबोध तीर्थ हैं।

अनूपशहर पहुंचने पर मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी कई दिनोंसे अत्यन्त एकान्तमें श्रीगंगाजीकी रेतीमें रहते हैं। मैं ढूँढ़ता हुआ वहीं पहुँचा। वह स्थान अनूपशहरसे प्रायः दो मीलकी दूरी पर था। वहाँ भक्तोंके सहित श्रीमहाराजजी के दर्शन करके मैंने अपनेको कृतकृत्य और धन्य माना। मेरे साथ उक्त दण्डिस्वामीजी भी थे। उन्होंने अभिवादनादि कर श्रीमहाराजजीसे मेरे विषयमें कुछ प्रशंसासूचक शब्द कहे। मैं तो उन्हें सुनकर संकोचवश गड़ा

जाता था। कुछ देर विश्राम करके मैं नित्यकृत्यसे निवृत्त होनेको चला गया और मध्याह्नोत्तर प्रायः चार बजे लौटा। लोगों ने कहा कि भोजनके समय श्रीमहाराजजी आपको पूछ रहे थे। उन्होंने अब भी मेरे लिये प्रसाद रख छोड़ा था। उनका ऐसा वात्सल्य देखकर मैं गद्‌गद् हो गया।

दूसरे दिनकी बात है। प्रातः ८-९ बजेतक तो सत्सङ्ग होता रहा। आज सभी साधुओं को स्वयं भिक्षा माँगने के लिये अनूपशहर जानेकी बात थी। प्रायः १० बज चुके थे। ज्येष्ठका महीना था, धूप बहुत कड़ी पड़ रही थी। दो मील जाना और फिर दो मील लौटकर आना। श्रीमहाराजजी की आज्ञानुसार जाना मैं भी चाहता था। परन्तु धूपकी तीक्ष्णताके कारण हृदय इस ऊहापोहमें था कि जाऊँ या न जाऊँ। यहाँ लगभग २०-२५ गृहस्थ रहेंगे। यदि ये ठहर सकते हैं तो क्या मैं नहीं रह सकता। जो इनकी व्यवस्था होगी वही मेरी हो जायगी। अतः वहीं तटस्थ-सा बना रहा। परन्तु मनमें यह भय अवश्य था कि यदि श्रीमहाराजजीने पूछा कि तू क्यों नहीं गया तो क्या जवाब दूँगा। अतः मैं चलनेको तैयार हो गया। किन्तु इतने ही में एक अद्‌भुत घटना घटी। मैं जैसे ही चलना चाहता था कि मैंने देखा उस जलती हुई रेती और चमचमाती हुई धूप में दो आदमी बहँगियों में चार टोकरेपकवान्नसे भरे लिये आ रहे हैं। मैंने आगे बढ़कर उनसे पूछा "क्यों भाई, यह सब सामान तुम कहाँ ले जा रहे हो ?" वे बोले, "उड़िया महाराजजीके यहाँ।" फिर श्रीमहाराजजीके पास जाकर उन्होंने बताया कि अमुक व्यक्ति ने यह सामान भेजा है। यह सब देखकर मेरे आश्चर्यका पारावार न रहा। बिना पूर्वसूचना के इतनी दूर इस चिलचिलाती धूपमें इतना सामान स्वतः आ जाना श्रीमहाराजजीका अद्‌भुत चमत्कार नहीं तो क्या है ? बस, मैं तो अब वहीं रुक गया।

थोड़ी देर पश्चात् जो संत भिक्षा के लिये चले गये थे वे भी लौट आये। आज उनमें से प्रायः किसी को पूरी भिक्षा नहीं मिली थी। उनकी पूर्त्ति भी उसी अन्नसे की गयी। सबने वहीं भोजन किया और सायंकालमें भी श्रीमहाराजजीने उसी अन्नमें से सबको प्रसाद दिया। सायंकाल मैं विदा होकर सागर-मलजीके गाँव गया। दूसरे दिन प्रातःकाल अनूपशहर आया और फिर डिबाई से गाड़ीमें बैठकर मुरादाबाद होते हुए अपने लक्ष्यकी ओर चला गया।

अन्तिम दर्शन

श्रीकृष्णाश्रमकी स्थापना हो जाने के पश्चात् महाराजजी अधिकतर श्रीवृन्दावनमें ही रहने लगे थे। मैं भी इसके कुछ वर्ष पूर्वसे अपना चातुर्मास्य श्रीवृन्दावन में ही करता था। पहले मेरा आसन श्रीब्रह्मनिवास आश्रम में रहता था, किन्तु फिर मैं भी श्रीमहाराजजीकी सन्निधिमें ही रहने लगा। एक दिन श्रीमहाराज जीने सायंकालमें अपने कुछ प्रमुख भक्तोंसे पूछा, "जब शरीरान्त का समय सन्निकट हो तब ज्ञानीका क्या कर्त्तव्य है? गृहस्थोंको तो गोदान आदि करना चाहिये, किन्तु ऐसे समय विरक्तोंका कर्त्तव्य क्या है? श्रीमहाराजजीके मुखसे अकस्मात् ऐसा प्रश्न सुन कर मेरे हृदयमें तो ऐसा आभास हुआ मानो ये अपने विषय में ही यह प्रश्न कर रहे हैं। मैंने अपना यह भाव बाबा रामदासजी उदासीनसे कह भी दिया था। श्रीमहाराज यह प्रश्न करके नित्य कृत्यसे निवृत्त होनेको चले गये। रात्रि में इस पर विचार करने की आज्ञा हुई। मैं उस समय उपस्थित नहीं था। दूसरे दिन मैंने श्रीरामदासजीसे पूछा कि इस प्रश्नका सब महानुभावों ने क्या उत्तर दिया तो वे बोले, "किसीने भी ठीक उत्तर नहीं दिया अन्तमें श्रीमहाराजजीने यही निर्णय किया कि उसका कोई कर्त्तव्य नहीं है, जैसा कि श्रीगीताजीमें भी कहा है—

"यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥" (३।१७)

कहना न होगा कि उसी वर्ष वह दारुण घटना हुई जिसकी स्मृतिमात्रसे हृदय आन्दोलित हो उठता है। उन दिनों मैं ओंकारेश्वर और अमरकण्टककी ओर विचर रहा था। जिस समय प्रयाग पहुँचा उस समय यह कर्णकटु प्रसंग सुनने को मिला। वाह रे! आजके संसार! तू महात्माओंको भी नहीं छोड़ता। अपने राग-द्वेषमय विषाक्त वातावरणको संतोंके सम्मुख रखनेमें भी तुझे लज्जा नहीं आती। मैं तो श्रीमहाराजजीके देहावसानके कई मास पश्चात् वृन्दावन गया था। उस समय भी वहाँ का वातावरण मुझे क्षुब्ध-सा जान पड़ता था। मैं श्रीमहाराजजी के तैलचित्रके समीप खड़ा-खड़ा रोता रहा। किन्तु अब उसे सुनने वाला वहाँ कौन था। आज तो उनकी स्मृतिमात्र रह गयी है। जो आनन्द श्रीमहाराजजीकी सन्निधि में अनुभव किया वह अब कहाँ है? उसकी यत्किंचित् क्षतिपूर्त्ति आज हम अपने बीच में पूज्य श्रीहरिबाबाजी और स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी को पाकर ही कर पाते हैं। अन्यथा अब तो चित्त आलम कवि के शब्दों में यही कहने को आतुर-सा हो रहा है कि—

"जा थर कीने बिहार अनेकन ता थर काँकरि बैठे चुन्यौ करैं,
जा रसनासों करीं बहु बातन ता रसनासों चरित्र गुन्यौ करैं।
आलम जौनसे कुंजनमें करीं केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं,
नैननिमें जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं॥"

अन्तमें संस्मरणरूप श्रद्धाञ्जलि साश्रु श्रीचरणकमलोंमें समर्पित करता हुआ मैं अपनी लेखनीको विश्राम देता हूँ।

श्रीशान्तिप्रकाशजी संन्यासी, साधुआश्रम, एटा

श्री १००८ श्रीउड़ियावावाजीमहाराजके साथ मेरा संवन्ध सन् १९२४ ई० से है। मैंने समय-२ पर एटा, बमनोई, कर्णवास, रामघाट आदि विभिन्न स्थानोंपर श्रीस्वामीजीके दर्शन किये थे। उनके दर्शनोंसे मुझे जो लाभ हुआ उसका मैं तीन प्रसङ्गों का उल्लेख करके वर्णन करता हूँ।

प्रथम प्रसङ्ग

प्रायः देखा जाता है कि महात्मा लोग सभी प्रकार की वातें सव लोगोंके सामने किया करते हैं। किन्तु श्रीस्वामीजी कहा करते थे कि जो व्यक्ति जिस योग्य हो उसके साथ वैसीही वातें करनी चाहिये। वे सार्वजनिक रूपसे आध्यात्मिक विषयकी चर्चा करनेको कभी आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते थे। एक वार मैंने उनसे एक आध्यात्मिक प्रश्न किया था। तव उन्होंने यही कहा था कि व्यक्तिगत प्रश्न सामूहिक रूपसे नहीं करना चाहिये। तुम एकान्तमें मुझसे यह प्रश्न करना। तवमैं उसका उत्तर दूँगा। इस प्रकारके प्रश्नोत्तर सामूहिक रूपसे करनेपर किसी को कोई लाभ नहीं होता।

मेरे जीवन पर इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैंने भी भविष्य में एकान्तमें ही आध्यात्मिक विषयकी चर्चा करनेका निश्चय कर लिया। तवसे मैं इस बातका ध्यान रखता हूँ कि जो लोग इस

प्रकारकी वातें नहीं समझते उनके सामने ऐसी वातें भी नहीं करता।

द्वितीय प्रसङ्ग

एक वार जब मैं कर्णवासमें उनसे मिला तो मैंने उनसे एकान्तमें यह प्रश्न किया—"मेरा मन संकल्प-विकल्पसे शून्य हो गया है और उसमें एक प्रकारकी घवड़ाहट तथा अशान्ति-सी उठती रहती है। उसके कारण ऐसा लगता है कि मुझे पुनः पूर्वाश्रम (गृहस्थाश्रम) में लौट जाना चाहिये, क्योंकि पहले मेरे चित्तमें जो प्रसन्नता और भाव रहते थे अव लुप्त-से हो गये हैं।" इसपर श्रीस्वामीजीने मुझसे कहा, "तुम्हारा चित्त अव अपने कारण प्रकृति में लीन हो रहा है। यदि तुम इन कठिनाइयोंको सहते रहोगे तो तुम्हें समाधि प्राप्त हो जायगी। यह अवस्था गुरु का आश्रय न लेने और मनोवृत्तिको भगवान्‌में समर्पित न करने के कारण ही आती है। इस अवस्थामें ऐसी कठिनाई आना स्वाभाविक है। यदि तुम इसे सहन करते रहोगे तो आगे का मार्ग स्वयं सुगम हो जायगा। इसके सिवा यदि प्रणवजप किया जाय तो उससे भी यह कठिनाई दूर हो सकती है। ऋषियों ने इसी स्थितिको 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' कहा है।"

स्वामीजीके इस उपदेशसे मुझे बहुत दृढ़ता मिली और मैं उस परिस्थितिका सामना करता रहा। अव मुझे ऐसा लगता है कि मैं उस कठिनाईको पार कर चुका हूँ और मेरा मार्ग सुगम हो गया है। इस उपदेशके लिये मैं श्री महाराजजीका सदा ही ऋणी रहूँगा।

तृतीय प्रसङ्ग

एक बार श्रीस्वामीजीमहाराज एटा पधारे थे और श्री-

मक्खनलाल केला डिप्टी कलक्टरके यहाँ ठहरे थे। उस समय मैं और स्वामी ब्रह्मानन्दजी दर्शनाचार्य उनसे मिलने गये थे। स्वामी ब्रह्मानन्दजीने उनसे कुछ वेदान्त-विषयक प्रश्न किये थे तथा हम दोनों ही ने प्रार्थना की थी कि आप हमारे आश्रमवासियों को भी कुछ उपदेश करने की कृपा करें। तब उन्होंने कहा कि मैं आश्रम पर आऊँगा अवश्य। हमने तीन दिन तक उनकी प्रतीक्षा की। हमें संदेह होने लगा कि श्रीस्वामीजी अपने वचनों का पालन करेंगे या नहीं। परन्तु चौथे दिन सायंकाल ५ बजे वे अपने भक्त-वृन्दके साथ पधारे और प्रवचन देकर सभी आश्रमवासियों को कृतार्थ किया। फिर वे पूर्व की ओर चले गये। उनके आगमन को आश्रमवासियोंने बड़ा सौभाग्य माना। वे अवकाश न मिलने पर भी अपने वचनों का पालन करते थे।
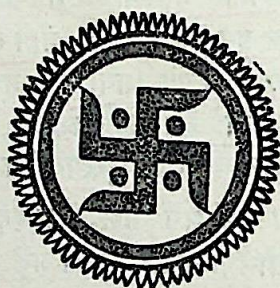
बाबा श्रीराममोहनशरणजी

प्रथम दर्शन

पं० श्रीशोभारामजी मेरे शिक्षक और मित्र थे। उन्होंने मेरे हृदयमें यह लालसा उत्पन्न कर दी थी कि बालक ध्रुव के समान मैं भी एकान्त जङ्गलमें जाकर भगवद्भजन करते हुए प्रभु के साक्षात् दर्शन प्राप्त करूँ। वे स्वयं भी उत्तराखण्ड की यात्रा करनेके लिये जा रहे थे। उनके साथ जाकर भजन करनेकी मेरी उत्कट इच्छा थी। किन्तु पिताजीसे मुझे जानेकी आज्ञा न मिली। क्या करता? मन मसोसकर रह गया।

किन्तु मेरे हृदयमें जो आग लगी थी वह शान्त न हुई। मैंने सोचा, मैं पैदल हो जंगलका रास्ता क्यों न लूँ। बस, घरसे एक लोटा, धोती, सुखसागरकी पुस्तक और भगवान् श्रीकृष्णका चित्र लेकर निकल पड़ा। जयपुरसे चलकर मैं अलवर राज्य के घोर काननमें श्रीनारायणीदेवीके झरनेपर पहुँच गया। वहाँका सुन्दर दृश्य देखकर मैंने वहीं रहकर भजन करनेका निश्चय कर लिया। मैंने संकल्प किया कि जब तक भगवान् दर्शन न देंगे मैं यहाँ से नहीं उठूँगा। रातभर जागकर मैं भगवान्की प्रतीक्षा करता रहा। बीच-बीचमें नींदके झोंके मुझे इस लोकसे उठाकर स्वप्नलोक में ले जाते थे। प्रातःकाल मैं विचार ही रहा था कि अब तो जब तक भगवान् न आवें मैं यहाँ से टलूँगा नहीं कि इतनेही में चार-पाँच आदमियोंके साथ बड़े भैया मोटर लेकर आ गये और मुझे पकड़कर घर ले आये।

परन्तु पिताजी मुझसे नाराज न हुए। उल्टे प्रसन्न होकर बोले, "पं० शोभारामके परम श्रद्धेय श्रीउड़िया बाबाजी आजकल सहतामें हैं, तुम जाकर उनका दर्शन कर सकते हो।" बस, मैं रेल द्वारा सहताके लिये चल दिया। रायभा स्तेशनपर उतरकर अपना थोड़ा-सा सामान लिये सहताकी ओर चला। गाँवके बाहर एक अत्यन्त सुसज्जित बगीचा दिखायी दिया। उसमें कुछ काषाय वस्त्रधारी महात्माओंके दर्शन हुए। मैं समझ गया कि इसी में महाराजजी ठहरे हुए हैं। मैं बिना किसीसे पूछे बगीचेके सिंह-द्वारसे भीतर चला गया और एक पेड़के नीचे अपना सामान रखकर आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाने पर मैंने जो दृश्य देखा वह मेरे जीवनकी सबसे बड़ो घटना थी। जोवनकी कितनी ही घटनायें सहसा प्रज्वलित हुईं, अग्निके समान आयीं और कुछ समय पश्चात् राखकी ढेरोके समान अपनो क्षीण स्मृति छोड़कर चली गयीं। परन्तु यह एक ऐसी अग्नि थी जिसकी ज्वाला समयके साथ बढ़ती ही गयी। मैंने देखा, एक दिव्यमूर्त्ति काष्ठासन (चौकी) पर विराजमान है। लोग उनकी आरती कर रहे हैं। उनके दिव्य विग्रहसे जो प्रच्छन्न रश्मियाँ निकलती थीं वे वहाँके सम्पूर्ण वातावरणको व्याप्त करके मानव हृदयको बेसुध कर उसमें अभूतपूर्व चेतनाका संचार कर रही थीं। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि इनसे मेरा चिरकालिक सम्बन्ध है, ये मेरे अत्यन्त समीपी स्वजन हैं। मेरा हृदय द्रवीभूत होकर मानो उन्हींमें मिला जा रहा था। मैं श्वास-२ में उन्हींका अनुभव कर रहा था। मुझे मानो पक्षाघात हो गया हो, चरणस्पर्श या प्रणाम करने की भी मुझे सुधि न रही। मैं कबतक वहाँ खड़ा रहा और कब वहाँसे गया—इसकी याद नहीं थी।

प्रायः तीन बजे कथाकी घंटी बजी। बगीचे में सब लोग वृक्षोंकी छाया तले बैठे थे, श्रीमहाराजजी चौकीपर विराजमान थे।

मधुर-मधुर ध्वनिसे स्वर-तालके साथ श्रीरामचरितमानमका गान हो रहा था। वायुमण्डल एक अद्भुत प्रभावसे व्याप्त था। सबका अपना-अपना व्यक्तित्व मानो गाढ़ निद्रामें पड़ गया था। सभी पर श्रीमहाराजजीके गौरवपूर्ण दिव्य व्यक्तित्वका आधिपत्य था। उनके मुखोंसे भी मानों वे बोल रहे थे। मानसके नायक का स्थान भी मानो उन्हींने ग्रहण कर लिया था। पाठ समाप्त हुआ। एक दम पवित्र नीरवता छा गयी। सबका हृदय गम्भीर शान्त आनन्दमें गोते लगाने लगा।

सत्संग समाप्त हुआ। श्रीमहाराजजी उठे तथा उनके साथ और सब लोग भी खड़े हो गये। मैं भी उठा, परन्तु यह क्या, उन्होंने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया। उस संस्पर्शकी झनझनाहट से मैं बेसुध होता जा रहा था। वे मुझे उस उद्यानके एक पार्श्व में ले गये। पीछे आने वालोंको उन्होंने रोक दिया। एक रौसपर बैठकर मुझसे बिना कोई परिचय पूछे इस प्रकार बातें करने लगे मानो मेरे चिरपरिचित हों। उनके पहले वाक्य में ही कितनी आत्मीयता और सहानुभूति थी? वे बोले, "अरे तेरी आँखें लाल हो रही हैं?" रेल यात्रामें धूलि पड़नेके कारण मेरी आँखें लाल हो गयी थीं। फिर पूछा, "तेरे जीवनका ध्येय क्या है?" मैंने कहा, "भगवद्दर्शन।" आपने तत्काल मुझे साधन बताया, सान्त्वना दी और हृदयमें विश्वास स्थापित कर दिया कि अवश्य दर्शन होगा। इसलिये नहीं कि मैं साधन करनेमें सफल होऊँगा, बल्कि इसलिये कि जिसने मेरा हाथ पकड़ा है वह सर्वसमर्थ है। मुझे प्रतीत हुआ कि उन्होंने मेरी झोलीमें अपनेको भी डाल दिया है।

चिम्मन पर कृपा

यदि कोई पाससे श्रीमहाराजजीका निरीक्षण करता तो उसे आश्चर्य होता था कि इनमें किस प्रकार इतने विरोधी भावोंका

समावेश है। उनमें जो भाव भी दिखायी देता वह इतना पूर्ण और स्वाभाविक होता था कि मानो उसके उद्गमस्थान वे ही थे। प्रकृति उनके सामने आते ही मानो लज्जासे सिर नीचा कर लेती थी। जब प्रातःकाल सत्संगके लिये उनका द्वार खुलता था तो उस समयकी उनकी उन्मादित मुद्रा बड़ी ही अनूठी होती थी। उनके अर्धोन्मीलित नेत्र एक क्षणको खुलकर जब मानो दृश्य का भार सहन न कर सकनेके कारण झँप जाते तो उनका वहाँ बैठनेवालों पर बड़ा संक्रामक प्रभाव पड़ता था। ऐसा कोई पुरुष देखने में नहीं आता था जिसकी संकुचित वृत्तियाँ उनके समीप पहुंचनेपर दब न गयी हों और उसमें दैवी गुणोंका विकास न हुआ हो। उनके पास पहुँचनेपर ऐसा अनुभव होता था कि मैं कितना पतित और सत्यके सुनहले रास्तेसे कितना दूर हूँ। लोग पश्चात्तापपूर्वक कातर होकर रुदन करते और उनके पाससे नवजीवनकी आशा एवं ज्ञानका प्रकाश लेकर लौटते थे।

एक समयकी बात है, श्रीमहाराजजी रामघाट के उस पार थे। श्रीगङ्गाजीकी रजतकान्त रेणुकामें सत्सङ्ग हो रहा था। श्री महाराजजीकी सन्निधिके दिव्य प्रभावसे सभीके हृदय शान्ति और आनन्दमें गोते लगा रहे थे। पीछे की ओर चिम्मन नामका एक भंगी बैठा था। वह नियमसे गङ्गास्नान करने के लिये आया करता था। समाज और वेदसे बहिष्कृत चिम्मनको वहाँ बैठकर एक अद्भुत आनन्दकी अनुभूति हुई। वह गाँव जाना भूल गया और उसे अपने तनकी सुधि न रही। उसकी आँखें खुली तो देखा कि श्रीमहाराजजी खड़े हुए उसे करुणापूर्ण दृष्टिसे देख रहे हैं और कह रहे हैं—"बेटा! गङ्गास्नान करनेके लिये आया है? भोजन यहीं कर लेना।"

वह बेचारा प्रेमकी उस अभूतपूर्व वर्षाको सहन न कर सका।

संकोच-मिश्रित आनन्द से उसका रोम-रोम उत्तेजित हो उठा। बाह्य ज्ञान होनेपर उसने भूमिपर लोटकर प्रणाम किया और सदाके लिये उनका शरणागत हो गया। अब उसकी आँखों में दूसरा ही नशा भरा था। वह गाँव, घर और परिवार सब भूल गया। उसने सुना कि कल श्रीमहाराजजी रामघाट जायेंगे। रात्रिको नींद उसकी आँखोंसे गायब हो गयी। रातभर वह डेरे के चारों ओर परिक्रमा लगाता रहा। तीन बजेके लगभग उसने अपनी झाड़ू उठायी और वह मतवाला होकर रास्ता बुहारते हुए रामघाटको चल दिया। कभी गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेकी धुनमें जल्दी-जल्दी झाड़ू लगाता था और कभी उस करुणामयी मूर्त्तिका ध्यान आ जानेसे स्तब्ध एवं निष्क्रिय हो जाता था। इस विह्वल अवस्थामें ही वह कुटियापर पहुंच गया। वहाँ बाग के कोने-कोने को उसने झाड़ू लगाकर परिष्कृत किया।

भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तद्वारा परिष्कृत मार्गसे कुटिया की ओर चले। मार्गमें सराहना करते जाते थे कि देखो, कोई झाड़ू लगा गया है। श्रीमहाराजजी प्रायः इतने तेज चलते थे कि साथके लोगोंको दौड़ना पड़ता था। किन्तु इस समय भक्तोंके साथ भगवच्चर्चा करते धीरे-धीरे चल रहे थे, मानो अपने भक्त की सेवा-का एक-एक कण आस्वादन कर रहे हों।

चिम्मनका श्रीमहाराजजीके प्रति बड़ा गूढ़ प्रेम था। श्रीमहाराजजी एकान्तमें उसके पास चले जाते थे। और भूमिष्ठ होकर आपको साष्टाँग प्रणाम करता था और आप उसके सिरपर अपना चरण रख देते थे, जिसकी छायामें उसे अद्भुत आनन्दका अनुभव होता था। आप कहते, "बेटा! घर नहीं जायगा?" वह बोलता, "आपको छोड़कर मेरा कौन-सा घर है? आप कहते, "बेटा! वे भी तो मेरे ही हैं।" चिम्मनने दो काम अपना लिये

थे। अँधेरेमें उठकर झाड़ू लगाना और दिन निकलनेपर झाड़ियों में बैठकर भजन करना। यदि भोजनके समय वह न आता तो श्रीमहाराजजी कहते, "देखो, चिम्मन कहीं गङ्गाजीमें तो नहीं डूब गया ?" तब लोग उसे ढूँढ़कर लाते और भोजन कराते थे। श्रीमहाराजजी सभी प्राणियोंका इतना ध्यान रखते थे जैसे पक्षी अपने अण्डोंका रखता है। एकबार आश्रम में कढ़ी बनी थी। चिम्मनको वह नहीं मिली और समाप्त हो गयी। श्रीमहाराजजी जब अन्य भक्तोंके यहाँ भोग लगाने गये तो उनसे कहा, "चिम्मन आज कढ़ी नहीं मिली।" दैवयोगसे वहाँ भी कढ़ी बनी थी। अतः आपने बहिनजीके हाथ वहाँसे चिम्मनके लिये कढ़ी भिजवायी।"

चिम्मन प्रायः तीस-पैंतीस वर्ष श्रीमहाराजजीकी सेवा में रहा। श्रीवृन्दावनके आश्रममें ही वह बीमार पड़ा और श्रीमहाराजजी का ध्यान करते हुए वृन्दावन में ही उसने अपना नश्वर देह त्यागकर अनन्त जीवनमें प्रवेश किया।

एक डाकूका उद्धार

रामघाटकी बात है, गर्मियों के दिन थे। श्रीमहाराजजी बागवाली कुटीके आगे चबूतरेपर बैठे थे। देखनेवालोंको प्रतीत होता था कि उनके मुखमण्डलसे जो किरणें निकल रहीं हैं वे करोड़ों चन्द्रमाओंसे भी शीतल एवं अमृतवर्षिणी हैं। उनसे वह सम्पूर्ण वन्यप्रदेश व्याप्त था।

ऐसे सुहावने समयमें उधरसे एक घोर हिंसक दस्युराज (डाकुओंका सरदार) निकला। सरकारने इसे पकड़नेके लिये दस हजार रुपये पारितोषककी घोषणा की हुई थी। जब वह श्रीमहाराजजीके पास पहुँचा तो झिझकके कारण एक पेड़के नीचे खड़ा हो गया। अपनी बन्दूक, जो उसकी प्राणसंगिनी थी, उसने पेड़के सहारे रख दी और खाली हाथ श्रीमहाराजजीके पास जाकर

बैठ गया। वहाँ वह मन्त्रमुग्धकी भाँति बहुत देर बैठा रहा। श्री-महाराजजीका हृदय उसकी इस दग्ध और जर्जर दशाको देखकर द्रवीभूत हो गया। वे समाधिशिखरसे मानवताके धरातलपर उतरे और उस क्रूर हिंसककी ओर दयादृष्टिसे देख कर उन्होंने पूछा, "क्यों क्या बात है ?" उसने दीनतासे कहा, "यों ही दर्शन करने चला आया था।" थोड़ी देर बाद वह फिर बोला, "महाराज ! डाका डालनेके लिये जा रहा हूँ।" श्रीमहाराजजी बोले, "सो, मैं क्या करूँ ?" फिर बोले एक बात मानेगा ? उसने कहा, "कहिये, महाराज !" श्रीमहाराजजी बोले, "देख, स्त्रियोंको मत छूना।" उसने कहा, 'महाराज ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, स्त्रियोंको हाथ नहीं लगाऊँगा।" यह कहकर उसने दण्डवत्की और चला गया।

उसने एक जमींदारके यहाँ डाका डाला। उसे लूटा और सब माल-मता लेकर चल दिया। जब गाँवसे प्रायः दो मील दूर निकल गया तो उसने पीछे घूमकर देखा कि उसके साथी उस जमींदारकी लड़कीको उसके पलंगसहित उठाये ला रहे हैं। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह श्रीमहाराजजीके सम्मुख बैठा है और वे उससे कह रहे हैं, "देख, स्त्रियोंकी बेइज्जती मत करना।" उसने तुरन्त मानो नींदसे जगकर कहा, "तुम लोगोंने यह क्या किया, इसे क्यों ले आये ?" साथियोंने कहा, "बात क्या है ? ले आये।" वह बोला, "इसे वापिस करना होगा।" साथी बोले, "अब वहाँ जानेसे हम सब मारे जायेंगे। सारा गाँव इकट्ठा हो गया होगा।" अब यह स्वयं आगे बढ़ा और बोला, "मैं आगे चलता हूँ, तुम पीछे आ जाओ।" सब उसके पीछे हो लिये। वे गाँवमें पहुँच-कर लड़कीको पलङ्गसहित छोड़कर सकुशल लौट आये।

अपने डेरे पर आने पर उस दस्युराजके मनमें पश्चात्तापका तूफान उठने लगा। उसने विचार किया, "यह कैसा घोर काम

है, लोग तड़फते हैं और हम उनकी छातीपर चढ़कर उनका धन छीनते हैं। हमारे साथी स्त्रियोंकी बेइज्जती करते हैं। मुर्दोंके 'बने महल क्या कभी दुर्गन्धसे मुक्त हो सकते हैं?' इस प्रकार के विचार उठकर उसके हृदयको छेदने लगे। वह बेचैनीसे इधर-उधर घूमने लगा। दस्युजीवनके सारे दृश्य उसके नेत्रोंके सामने नाचने लगे। उसी समय उसके मानस चक्षुओंके सामने एक परम अलौकिक शान्तिमय दृश्य आ गया। उसने देखा कि श्रीमहाराजजी अर्धोन्मीलित नेत्रोंसे शान्तमुद्रामें बैठे हैं, उनके रोम-रोमसे आत्मीयता एवं प्रेमकी किरणें निकल रही हैं और उसका सिर उनके चरणोंपर झुका हुआ है। सिरसे उसने उनके परम मंगलमय कोमल चरण-कमलोंके दिव्य स्पर्शका अनुभव किया। अपने को उनकी छत्रच्छायामें देखकर वह निर्भय हो गया और उसी क्षणसे सदाके लिये उसके जीवनका पथ परिवर्तित हो गया।

अद्भुत स्नेह

श्रीमहाराजजी स्नेहकी मूर्त्ति थे नर-नारी, बाल-वृद्ध, पशु-पक्षी सभीके लिये वे अपने हृदयका सम्पूर्ण प्रेम-कलश उड़ेल देते थे। भोले बालकोंमें आप उनसे भी छोटे बन जाते थे। इससे उन्हें ऐसा विश्वास हो जाता था कि हम इनसे जो चाहें वह करा सकते हैं। रामघाट में एक बालक ने आपका कटिवस्त्र पकड़ लिया और बोला, "बाबा! तुम बड़े झूठे हो। मेरे शङ्करजी के लिये घड़ियाल मंगानेको कहा था, पर अभी तक नहीं मँगाया। मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा।" आप उसको अनुनय-विनय करके मनाने लगे, "बेटा! जरूर मँगा दूँगा।' बालहठ ही जो ठहरा। वह मचल गया—"मैं नहीं छोड़ूँगा, तुम बहुत झूठे हो।" समय बीत रहा था, पर आप बँधे खड़े हैं। कितने ही लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर आप एक नन्हें से कमल हृदय को तोड़कर कैसे जा

सकते थे ? आपका हृदय तो उस बालकके हृदयके साथ एक हो रहा था ।

इसी प्रकार आप गायको देखते तो उसकी पीठ पर लोट जाते । वह भी चुपचाप खड़ी प्रेममें डूबकर समाधिस्थ हो जाती । लोग कहते, "महाराज ! यह मार देगी ।' तो आप कहते, "क्यों मारेगी, मैं इसे इतना प्यार करता हूँ ।" सूअर को देखकर आप कहते, "अरे ! तुझे कोई प्यार नहीं करता ।" आपकी करुणा दृष्टि पड़ते ही वह भी खड़ा हो जाता, मानो अपने परम सुहृद के प्रेम का मूक शब्दोंमें उत्तर दे रहा है ।

एकवार आपने विहारीसे एक कुत्तेको हटानेके लिये कहा । उसने उसके एक कंकड़ी मार दी । वह पें पें करके भागा । आपने विहारीसे कहा, "जा, इसके लिये रोटी ला ।" तथा आपने भागकर उसके समीप जा उसे छातीसे लगा लिया और कहा, "मैंने ही तुझे चोट पहुँचायी है, इसमें मेरा ही अपराध है ।" उस दिनसे वह कुत्ता बरावर श्रीमहाराजजीके पास आकर लोट जाता था ।

अनूठी उदारता

श्रीमहाराजजीके पास जितने भी मनुष्य आते थे उनमें प्रत्येक को यह प्रतीत होता था कि वे सबसे अधिक कृपा मुझपर ही करते हैं । बात भी ऐसी ही थी; क्योंकि उनका हृदय चोर, निन्दक और हिंसकोंके लिये भी उतना ही खुला हुआ था जितना साधु, प्रशंसक और प्रेमियोंके लिये । उनके दरवारमें सभी प्रकार के लोग आते थे । कोई भगवत्प्रेमी होते थे तो कोई विषय-लम्पट । किन्तु वे सभीके लिये समान थे । उनकी उदारता देखकर कितने ही लोलुप प्राणी अपनी बिकृत मनोवृत्तिके कारण चोरी करने लगे । कोई दुशाला, बढ़िया वस्त्र या प्रसाद आता तो वे आँख बचाकर

उठा ले जाते। कभी-२ श्रीमहाराजजी यह सब देख भी लेते, तथापि उससे कुछ न कहकर मुँह फेर लेते, मानो उन्हें कुछ पता ही नहीं है। कोई गेहूँ पिसवानेके लिये जाता तो उसमें से कुछ गेहूँ बेचकर दूध पी लेता, एक रुपयेका सामान लाता तो चार रुपयेका बता देता। यह सब देखकर भी आप एक अबोध बालककी भाँति अपनेको ठगाते रहते थे। लोग शिकायत करते कि महाराज अमुक व्यक्ति बड़ा चोर और बदमाश आदमी है, उसे आश्रम से निकाल देना चाहिये। किन्तु आप यह सब सुनकर भी केवल हँस देते। अथवा कभी-कभी शिकायत करनेवालेको प्रसन्न करने के लिये कह देते, "तुम ठीक कहते हो, कलसे इसे रोटी नहीं दूँगा। पर जब रोटी देनेका समय आता तो उसे सबसे पहले बड़े प्रेमसे रोटी देते। यदि कोई कहता कि महाराज! आप इसे निकाल क्यों नहीं देते? तो कहते कि यदि भगवान् इसे अपनी सृष्टिमें से निकाल दें तो मैं भी निकाल दूँगा।

एक बार एक कोठारी एक मैले कपड़ेमें प्रायः तीन पाव घी लपेटा हुआ लाया और बोला, "महाराजजी! रसोईया बड़ा चोर है। देखिये, उसने यह घी नालीमें छिपा रखा था।" श्रीमहाराजजीने कहा, 'बेटा! इसे वहीं रख आ, उसे मालूम होगा तो वह दुखी होगा।"

पक्षी जिस प्रकार अपने अण्डोंको सेता रहता है उसी प्रकार श्रीमहाराजजी सबका मन रखते थे। इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता था। जब अपराधी श्रीमहाराजजी की ऐसी उदारता और अनुकम्पा देखते तो अपनी कृति पर दृष्टि पड़ने से उनका हृदय पश्चात्तापकी अग्निमें जलने लगता था। वह कातर होकर रोने लगता था और अपना अपराध स्वीकार कर लेता था।

एक बार दो आश्रमवासियों में आपस में झगड़ा हो रहा

था। उनमेंसे एकने दूसरेका लोटा ले लिया था। जिसका लोटा था वह कहता था कि इसे माँजकर दो और देनेवाला कहता था कि तुम स्वयं माँज लो, मैं नहीं माँजूँगा। दोनों में गाली-गलौज होने लगा और मार-पीट की नौवत आ गयी। श्रीमहाराजजीने उन्हें झगड़ा करते देख लिया। आप बोले, "लाओ बेटा! लोटा मैं माँज दूँ।" यह सुनते ही वे लज्जित हुए, मानों उनपर हजारों घड़े पानी पड़ गया। दोनों ही की आँखोंमें आँसू आ गये और लज्जासे उनके सिर नीचे हो गये।

श्रीमहाराजजीके पास अनेकों नर-नारी आते रहते थे, उनमेंसे कोई-कोई आपका पूजन भी करते थे तथा आश्रममें भगवन्नाम-कीर्तन भी होता था। एक बार एक व्यक्ति इन सब बातों की निन्दा करने लगा। उसकी बातें कुछ भक्तगणोंको बुरी लगीं। वे श्रीमहाराजजीसे बोले, "हम इस दुष्ट को पीटेंगे।" तब आप बोले, "देखो बेटा! वह तो मैं ही हूँ। यदि तुम उससे कुछ कहोगे तो मुझे बहुत दुःख होगा।" दूसरे दिन चोखेलालके हृदयमें स्वयं ऐसी प्रेरणा हुई कि वह आपके पास आकर चरणोंमें पड़कर क्षमा याचना करने लगा।

ऐसी थी आपकी अद्भुत उदारता। आज कितने ही वर्ष बीत जानेपर भी हृदयपटके सामने वे घटनायें प्रत्यक्षवत् विद्यमान हैं और आशा है कि भविष्यमें भी वे इस जीवनयात्रा में हमारा पथप्रदर्शन करती रहेंगी।

ब्रह्मचारी श्रीआनन्दजी, वृन्दावन

प्रथम परिचय

बहुत दिनोंकी बात है, मैं नरवर विद्यालय गया हुआ था। वहाँ विद्यालयके संस्थापक बालब्रह्मचारी पं० श्रीजीवनदत्तजीके मुखसे सबसे पहले मैंने पूज्य बाबाकी प्रशंसा सुनी। उन्होंने कहा कि श्रीउड़िया बाबाजी योगी हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मैंने उन्हें स्वयं पाँच-छः घण्टेतक एक आसनसे बैठे देखा है। उन दिनों बाबा नरवरमेंथे नहीं, कहीं अन्यत्र विचर रहे थे। अतः उनके दर्शन तो न कर सका, परन्तु श्रीपण्डितजीके मुखसे उनकी प्रशंसा सुनकर चित्तमें उनके दर्शनों की लालसा अवश्य जाग्रत् हो गयी।

उसके पश्चात् मैंने भरियामें श्रीअच्युत मुनिजीके दर्शन किये। फिर श्रीहरिबाबाजीसे समागम हुआ और उन्हीं के साथ व्रजमें भ्रमण करता रहा। उन्हीं दिनों अकस्मात् मथुराके श्रीद्वारकाधीशजीके मन्दिरमें बाबाके दर्शन हो गये। वहाँसे हम तीनों ही श्रीवृन्दावन चले आये। श्रावणका महीना था। श्रीवृन्दावनमें इन दिनों हिंडोलों और रासदर्शनका अद्भुत आनन्द रहता है। हम तीनों भी टिकारीवाले मन्दिरमें रासलीला देखनेके लिये जाते थे और एक मास्टर भक्तकी व्यवस्थाके अनुसार रात को स्कूलमें शयन करते थे। उन दिनों बाबा या हरिबाबाजीकी सेवा में कोई भक्त नहीं रहता था। पीछे हाथरस और बाँधसे कुछ भक्त आ गये थे। बाबा उस समय विरक्त परमहंसोंकी चर्या से रहते थे। जहाँ कुछ मिला खा लिया और जहाँ रुचि हुई सो गये।

इष्ट निर्णय

एक बार बाबा बाँध पर श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी के उत्सव में पधारे। उस समय मैं देखता था कि प्रोग्रामसे अतिरिक्त समयमें भी बाबाके पास सत्संगियोंकी भीड़ लगी रहती थी। जिसका जैसा अधिकार होता उसका उसीके अनुसार समाधान कर देते थे। श्रीमद्भगवद्गीतामें जो स्थितप्रज्ञके लक्षण लिखे हैं वे सब बाबा में पाये जाते थे। उन दिनों मैं गीताका पाठ करता था और समझता था कि श्रीगीताजीकी कृपासे ही मुझे बाबाके दर्शन हुए हैं।

बाँधसे आप हाथरस पधारे। वहाँ गणेशीलालजी के यहाँ गायत्रीयज्ञ था। चलते समय आपने मुझे भी वहाँ आनेकी आज्ञा दी। मैं हाथरस गया। एक दिन मैंने बाबासे प्रार्थना की कि मेरी सभी आचार्य और अवतारोंमें श्रद्धा है। ऐसी दशामें मैं किन्हें अपना इष्ट मानूँ ? इसका उत्तर स्वाभाविक ही उनके मुखसे यह निकला कि इसका निर्णय तुम्हें स्वप्नमें हो जायगा। उसके एक-दो दिन पश्चात् एकादशीकी रात्रिमें सोनेके समय अचानक बाबा मेरे पास आये। उनके हाथमें धनियेके चार लड्डू थे। उस समय मुझे विशेष भूख भी नहीं थी, तथापि प्रसाद बुद्धिसे मैंने श्रद्धापूर्वक उन्हें पा लिया। फिर जब मैं सोया तो ऐसा विलक्षण स्वप्न देखा कि उसमें इष्टका स्पष्ट निर्णय हो गया। उसका सारांश यही था कि श्रीवृन्दावनकी महिमा काशी से भी बढ़कर है। अतः पूज्य बाबाकी कृपासे मैं नियमितरूपसे वृन्दावनमें उन्हींके आश्रममें रहने लगा। और ऐसी आशा है कि अब शेष जीवन भी वहीं व्यतीत होगा।

बाबामें शंकरभावना

पूज्य बाबामें मेरी शङ्करभावना थी। इस सम्बन्धमें मेरा एक विशेष अनुभव था। एक बार श्रीहरदेवसहाय बैरिस्टरके साथ

मैं गंगोत्तरीकी यात्राको गया था। वहाँसे जैसे स्वाभाविकही सब भक्तजन श्रीरामेश्वरपर चढ़ानेके लिये गंगाजल लाते हैं उसी प्रकार मैं भी लाया। नीचे आनेपर सुना कि बाबा इन दिनों कर्णवासमें हैं। अतः वहाँ जानेके लिये मैं रामघाट स्टेशन पर उतर गया। वहाँ रात्रिको स्वप्नमें मैंने देखा कि अत्यन्त विशाल नन्दीश्वर सहित एक सुन्दर शिवलिंग है। इस स्वप्नसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और ऐसा अनुभव हुआ कि बाबामें और श्रीरामेश्वरजीमें अभेद है। प्रातःकाल उठकर स्टेशनसे कर्णवास आया। जब गङ्गा-स्नान करके लौट रहा था तो एक गुजराती परमहंस संतके दर्शन हुए। उन्हें मैंने स्वप्नकी घटना सुनायी। वे बोले, "तुम्हें श्रीरामेश्वरजीके दर्शन हुए हैं। मैं रामेश्वर गया हूँ, वहाँके नन्दीश्वर बहुत विशाल हैं।"

इसके पश्चात् मैं बाबाके पास गया और गंगाजल उनके सम्मुख रख दिया। मनमें ऐसा संकल्प हुआ कि यदि रामेश्वर जाता तो वहाँ शिवलिंगपर ही जल चढ़ाया जाता। यहाँ तो रामेश्वरजी प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। ये स्वयं मुख द्वारा इसे पान करें तो मुझे निश्चय हो जायगा कि श्रीरामेश्वरजीने ही मेरा जल स्वीकार किया है। बाबा बोले, "क्या है ?" मैंने कहा, "गङ्गोत्तरीका जल है। शिवजीपर चढ़ानेके लिये लाया हूँ।" बोले, "चढ़ा दो।" मैं मौन रहा। तब वे तत्काल गंगाजली उठाकर पान कर गये। उस समय जो लोग वहाँ बैठे थे वे भी आनन्दमग्न हो गये। तबसे मैं प्रत्येक गुरुपूर्णिमा और शिवरात्रिपर बाबाके चरणों में अवश्य पहुंचता था। शिवरात्रिको बाबा रात्रिभर एक आसनसे बैठे रहते थे और हमलोग उन्हीं के प्रभावसे सुगमतापूर्वक रात्रि को जागरण कर लेते थे।

एक बार मैं बाँधपर था। इस बातका निश्चय नहीं था कि बाबाकी गुरुपूर्णिमा कहाँ होगी। चित्तमें व्याकुलता हुई कि

कहाँ जाऊँ। उसी दिन रात्रिको स्वप्नमें बाबाने आज्ञा दी कि गुरुपूर्णिमा वृन्दावनमें होगी। मैं वृन्दावन पहुँचा और चतुर्दशीके सायंकालमें न जाने कहाँसे बाबा आश्रममें पहुँच गये। खूब उत्सव मनाया गया। मिष्ठान्न और फलोंका ढेर लग गया। प्रातःकालसे सायंकालतक जो आता वही प्रेमपूर्वक प्रसाद पाता था। मैंने गुरु-पूर्णिमा तो कुछ अन्य महापुरुषोंकी भी देखी हैं, परन्तु बाबाकी-सी कहीं नहीं देखी।

प्रतिष्ठा-महोत्सवका चमत्कार

वृन्दावनमें श्रीकृष्णाश्रमका प्रथम प्रतिष्ठा-महोत्सव हो रहा था। आश्रमके मुख्य द्वारके सामने एक मण्डपमें निरन्तर अखण्ड कीर्तन होता था। उस दिन श्रीनित्यानन्द-जयन्ती भी थी। प्रातःकाल चार बजे समष्टि संकीर्तन हो रहा था। उसमें श्रीबाबा एवं श्रीहरिबाबा आदि सभी महापुरुष पधारे हुए थे उसी समय एक आर्यसमाजी सज्जन बाबाका दर्शन करने आये। कीर्तनमें तो उनकी कुछ भी श्रद्धा नहीं थी, तथापि बाबाका दर्शन करना था, इसलिये वे कीर्तनमण्डप में चले गये। वहाँ उन्होंने देखा कि एक दिव्य तेजोमय मण्डलके भीतर श्रीबाबा और श्रीहरिबाबाजी दोनों हाथ उठाकर परस्पर मिलकर कीर्तन कर रहे हैं। यद्यपि प्रत्यक्षमें श्री-बाबा कभी कीर्तन करते नहीं थे, केवल ध्यानस्थ हुए खड़े रहते थे। यह अद्‌भुत दृश्य देखकर वे सज्जन आनन्दमग्न हो गये। पीछे जगदीश नामक एक विद्यार्थीको उन्होंने यह बात सुनायी और उसने मुझे यह सब बतलाया। मैंने जगदीशसे कहा कि यह तो उनपर भगवान्‌की अहैतुकी कृपा हुई है। इस प्रकार उन्होंने इन दोनों महापुरुषोंके श्रीगौर-निताई रूपमें दर्शन किये हैं।

श्रीबाबाका कीर्तनके प्रति अगाध प्रेम था। एक बार बाँधपर प्रातःकालीन प्रभाती कीर्तन हो रहा था। 'श्रीनिताई गौराङ्ग-

गदाधर' की तुमुल ध्वनि आकाशको गुँजा रही थी। उस समय बाबाको ऐसा दिखायी दिया कि श्रीहरिबाबाजी तो घंटा बजाते हुए कीर्तन कर रहे हैं और उनके सामने श्रीमन्महाप्रभुजी दोनों भुजायें उठाये नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित करते हुए साथ-२ घूम रहे हैं। इसी प्रकार एक बार बाँधके उत्सवमें फाल्गुन शु० ११ के दिन जब प्रायः सभीको विशेष भावावेश और चमत्कार हुए थे पूज्य बाबाने श्रीमुखसे कहा था कि आज मुझे भी ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कीर्तन कर रहा है, खड़े-खड़े समाधि सी हो रही थी।

कुछ दैवी चमत्कार

(१)

श्रीबाबाको वृन्दावनधामके प्रधान ठाकुर श्रीबाँकेबिहारीजी से अगाध प्रेम था। वे जब कभी वृन्दावन पधारते थे अथवा वृन्दावनसे कहीं बाहर जाते थे तब श्री बाँकेबिहारीजीके दर्शन अवश्य करते थे। बाबाके अनेक भक्त तो श्रीबाँकेबिहारीजी और बाबामें अभेद ही मानते थे। उस दिन मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी थी, जिसे बिहार पंचमी भी कहते हैं। इसीदिन श्रीबाँकेबिहारी जो का प्राकटच हुआ था। मेरे मनमें संकल्प हुआ कि आज भिक्षा करनेके लिये नहीं जाऊँगा। आज जो स्वाभाविक रूप से स्वयं ही मुझसे प्रसाद पानेको कहेगा समझूँगा उसी पर श्री-बिहारीजीकी विशेष कृपा है। तत्काल ही बाबा मेरी कुटिया में आये और बोले, "आनन्द! आज बिहारीजीका भोग लगा है, प्रसाद यहीं पाना।"

(२)

दिल्लीके श्रीधूमीमलजी भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। उन्हें तो भगवान् तथा देवी-देवताओंके प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। एक बार

निधिवनके पास उन्हें श्रीबाँकेविहारीजीने दर्शन दिया और कहा कि उड़ियाबाबाजी विचित्र सन्त हैं, उनका पीछा मत छोड़ना।

ऐसी ही एक घटना श्रीकृष्णाश्रमकी है। तब तक वर्तमान कथामण्डप बना नहीं था। इसलिये तीसरे पहरकी कथा प्रधानद्वार के ऊपर होती थी। कथासे पूर्व नित्य नियमके अनुसार श्रीरामायणजीका गान प्रारम्भ हुआ। उन दिनों श्रीघूमीमलजी मेरे पास ही ठहरे हुए थे। बोले, "रामायणकी कथा सुन आऊँ।" वे ज्यों ही कथामें पहुँचे उन्होंने देखा कि श्रीहनुमानजी आकाश-मार्गसे पधारे हैं और हाथ जोड़कर रामायणजीके सम्मुख बैठ गये हैं। उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाह चल रहा है और ज्योंही रामायण का गायन समाप्त हुआ कि वे जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। वहाँसे लौटकर घूमीमलजीने यह प्रसङ्ग मुझे सुनाया। मुझे सुन-कर बड़ी प्रसन्नता हुई। तब मैंने सबसे कहा कि रामायणजी के गानमें श्रीहनुमानजी पधारते हैं, इसीलिये बड़े प्रेमसे गायन किया करो। इससे सबको इसबातमें भी विश्वास हो गया कि शास्त्रका यह मत सर्वथा सत्य है कि जहाँ भी रामायणजीकी कथा होती है वहाँ श्रीहनुमानजी अवश्य पधारते हैं।

(३)

एक बार बाबा अनूपशहरमें सेठ रामशङ्कर मेहताके बागमें ठहरे हुए थे। सायंकालमें मैं वहाँ दर्शन करने गया। अनेकों सत्सङ्गियों और दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी हुई थी। उसी समय एक भक्तने मिट्टीके बर्तनमें सवा सेर मक्खन बड़े लाकर बाबाके आगे रख दिये। पात्र वस्त्रसे ढका हुआ था। सत्सङ्ग-समाप्तिके पश्चात् जब सब लोग धीरे-धीरे जाने लगे तो बाबा उसमें से प्रत्येकको एक-एक मक्खन बड़ा देने लगे। मुझे भी दिया। मैं उसके बिल्कुल समीप बैठा हुआ था। यह सब देख रहा था और अनुभव कर रहा था कि इस समय यदि सारा शहर आ जाय तो

भी बाबा इस छोटे-से पात्रसे ही सबकी पूर्त्ति कर देंगे। अन्तमें बोले, "अब तो कोई नहीं रहा है?" यह कहकर ऊपरका वस्त्र हटाया तो उसमें केवल एक मक्खन वड़ा और थोड़ा-सा टुकड़ा बचा हुआ था। उसमेंसे कणमात्र उन्होंने अपने मुखमें डाल लिया। वह दृश्य ठीक वैसाही था जैसा कि युधिष्ठिरको भगवान् सूर्य द्वारा दिये हुए पात्रोंमेंसे जब तक द्रौपदी स्वयं न खा ले वह सबकी तृप्ति कर देता था।

बाबाके गुणोंका कहाँ तक वर्णन करें। उनमें अनन्त गुण निवास करते थे।

श्रीपूर्णानन्दाष्टक

एक बार ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी बाबाके पास आये हुए थे। उन्होंने पाँच मिनटमें ही पूर्णानन्दाष्टक रचकर प्रकट किया। उसे मैंने पढ़कर सबको सुनाया। सहता आदि ग्रामोंमें जब बाबाने मुझे और वासुदेव ब्रह्मचारीको संकीतनका प्रचार करने के लिये भेजा था तो वहाँ सभी भक्त नित्यप्रति उस पूर्णानन्दाष्टकका पाठ करते थे। उस समय उन्हें ऐसा अनुभव होता था कि मानो बाबा प्रत्यक्ष पधारकर इसे सुन रहे हैं। वह अष्टक इस प्रकार है—

पावनं परमं पुण्यं पद्मपत्रमिव स्थितम्।
पूर्णप्रेमप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम्॥१॥

सुखदं शन्तिदं सौम्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
सारासारप्रवक्तारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम्॥२॥

भजनं भाजनं भव्यं भक्तिभावप्रदायकम्।
भक्तानन्दकरं भाव्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम्॥३॥

मानदं मोहकं मुख्यं मानातीतं मनोहरम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम्॥४॥

तार्किकं तर्कहन्तारं तर्कातीतं तु तुष्टिदम् ।
त्यक्तदण्डं तुरीयं तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥५॥
परात्परं परमातीतं पालकं परमेश्वरम् ।
पुरीनिवासिनं पुण्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥६॥
लौकिकं वैदिकं शास्त्रं ज्ञानविज्ञानसंयुतम् ।
भक्तान् शिक्षयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥७॥
लेह्यं चोष्यं च पेयं तु चर्वणं भोजनं सदा ।
भुंक्ते भोजयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥८॥
पुण्यं पापहरं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिभावतः ।
न तु स भयमाप्नोति न दुःखं न पराभवम् ॥
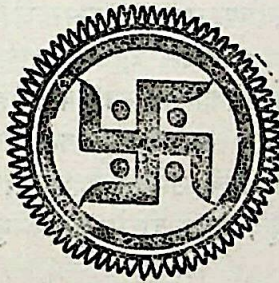
श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्य, वृन्दावन

प्रथम दर्शन और साधनोपदेश

मुझे कल्याण पढ़नेका व्यसन था। उसमें श्रीमहाराजजी के उपदेश प्रकाशित हुआ करते थे। मैं उन्हें बड़े चावसे पढ़ता था। उन्हींने मेरे हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी। एक दिन मेरे एक प्रेमीने मुझसे कहा कि एक बहुत बड़े योगिराज आये हुए हैं। मैं बड़ी उत्सुकतासे दर्शनोंके लिये गया। आप फिरोजाबादमें उस स्थानमें पधारे थे जहाँ कि रामलीला होती है। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि ये श्रीउड़िया बाबाजी महाराज हैं। फिरोजाबादके अनेकों गण्य-मान्य पुरुष प्रश्न कर रहे थे। और आप बड़ी प्रसन्न मुद्रामें सुमधुर वाणीसे उनका समाधान कर रहे थे। मैंने दर्शन किया, किन्तु अभी मैं यह निश्चय नहीं कर सका कि ये वे ही श्रीउड़िया बाबाजी हैं जिनके उपदेश मैं 'कल्याण' में पढ़ता रहा हूँ अथवा कोई दूसरे हैं? इतने ही में आपके मुखारविन्द से यह श्लोक निकला—

"हरिरेव जगज्जगदेव हरिः हरितो जगतो न हि भिन्न तनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति ॥"

बस, इस श्लोकने मेरा संशय निवृत्त कर दिया। 'कल्याण' में आपके उपदेशोंमें मैंने यह श्लोक पढ़ा था। अतः मुझे निश्चय हो गया कि ये वे ही उड़िया बाबाजी हैं, जिनके दर्शनोंकी चिरकालसे मेरे मन में अभिलाषा थी।

कुछ देर आपके दर्शन और उपदेशोंका सुखास्वादन कर मैं अपने निवासस्थानको लौट आया। परन्तु मेरा मन तो उधर खिंच चुका था। वार-बार आपके पासही जानेकी प्रेरणा हो रही थी। मध्याह्नमें पुनः गया। मुझे आया देखकर आप बोले—"तुम फिर क्यों चले आये यहाँ क्या करते हो ?" मैंने कहा, "महाराजजी ! मैं यहाँ आयुर्वेदिक चिकित्साका कार्य करता हूँ। मुझसे रहा नहीं गया, इसलिये चला आया।" आपने मुझे अपने समीप बैठा लिया। मुझे ऐसा अनुभव होता था मानो ये मेरे अत्यन्त निकट-वर्ती हैं और मुझ पर इनका अपार प्रेम है। फिर आप बोले, तुम्हें कोई सन्देह तो नहीं है ?"

मैंने कहा—महाराजजी ! मुझे निराकार-साकार उपासनाके सम्बन्धमें कुछ संदेह है। इसका क्या कारण है कि कुछ लोग निराकारकी उपासना करते हैं और कुछ साकार की ?

महाराजजी बोले—मनुष्य दो प्रकारके होते हैं—हृदयप्रधान और मस्तिष्कप्रधान। जो हृदयप्रधान हैं उनमें श्रद्धाभक्ति और भावकी प्रधानता होती है, इसलिये वे साकारोपासक होते हैं। और जो मस्तिष्कप्रधान होते हैं उनमें विचारशक्तिकी प्रधानता होती है, अतः वे निर्गुण-निराकारकी उपासना करते हैं।

श्रीमहाराजजीने यह बात मुझे इतनी उत्तमतासे समझायी कि मेरे हृदयका संदेह सर्वथा निवृत्त हो गया तथा मेरे मनमें ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि सर्वदा आप ही के साथ रहूँ। मैं निवासस्थान पर लौट आया और रात्रिको फिर पहुँचा। तब आप मेरा हाथ पकड़कर एकान्तमें ले गये और कहने लगे, "अरे भैया ! तुम यह क्या कर रहे हो ? सांसारिक प्रपञ्च से निकलने का शीघ्र ही प्रयत्न करो।" इसके पश्चात् आपने मुझे द्वादशाक्षर मन्त्र का उपदेश किया और निम्नाङ्कित श्लोकके अनुसार भगवान् श्री-कृष्णका ध्यान करनेकी आज्ञा दी—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

बैठनेके लिये आपने सिद्धासन सर्वोत्तम बताया और रामायण तथा भागवत्का स्वाध्याय करनेको अनुमति दी।

मैंने उस समय अनुभव किया कि ये सदासे मेरे हैं और मैं सदासे इनका हूँ। सिद्धासनके अभ्यास और द्वादशाक्षर मन्त्रके जपने मुझे संसारसे उपराम कर दिया। मेरे चित्तकी ऐसी दशा हो गयी कि श्रीमहाराजजीके बिना मुझे चैन नहीं पड़ता और न किसी काम-काजमें ही मेरा मन लगता था। मैंने श्रीमहाराजजीसे अपनी अवस्था निवेदन की। तब वे बोले, "एकमात्र भगवद्भजन ही सार है संसारमें कोई सार नहीं है, छोड़ो इसे।"

बस, तबसे मैं सर्वदा श्रीमहाराजजीके ही साथ रहने लगा। उनके श्रीचरणोंमें निरन्तर मेरी श्रद्धा-भक्ति बढ़ती गयी। मुझे सांसारिक प्रवृत्तिसे निकालकर उन्होंने भगवद्भजनमें लगा दिया—यह उनकी महती कृपा है। इससे बढ़कर और क्या लाभ हो सकता है? उनके विषयमें मेरा तो यही अनुभव है कि ऐसा महापुरुष 'न भूतो न भविष्यति' अर्थात् न कभी हुआ, न होगा।

श्रीव्रजमोहनजी, वृन्दावन

प्रथम दर्शन

मैं स्कूलमें पढ़ रहा था। एक दिन सहपाठियोंमें चर्चा चली कि महात्माके पास रहनेवाले भक्तोंके जीवनमें यदि सुधार न हुआ तो महात्मा कैसा ? यह प्रसङ्ग छिड़ा था एक महात्माके शिष्यों के जीवनमें कोई सदाचार न देखकर।

एक सहपाठीने कहा, "वैसे तो बहुत-से महात्मा हैं, परन्तु गङ्गाजीके किनारे एक उड़िया बाबा हैं, उनमें बड़े-बड़े चमत्कार सुने जाते हैं। एक मनुष्य बड़ा ही दुर्व्यसनी और गिरे हुए स्वभावका था। वह सौभाग्यसे उनके दर्शन करने गया। उनकी कृपा से प्रथम दर्शनमें ही उसपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सबसे अलग रहकर भजन करने लगा और अब वह अपनेको सबसे दीन-हीन मानता है, सभीको हाथ जोड़ता है तथा जहाँ वे रहते हैं वहाँ दूर-दूर तक झाड़ू लगाया करता है।" यह सुनकर मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैंने पूछा, "वे महात्मा कहाँ रहते हैं ?" सहपाठी ने बताया कि यों तो वे विचरते रहते हैं, परन्तु रामघाट या कर्णवास में प्रायः आया करते हैं। बस, उसी समय श्रीमहाराजजी का दर्शन करनेके लिये मनमें संकल्प उठा।

मेरे गाँव (कसीसों) में एक अघोरी महात्मा रहते थे। उनमें मेरी अच्छी श्रद्धा थी। वे बड़े विरक्त थे। सबसे अलग रहते और उत्तमसे उत्तम वस्तुओंको भी दूर फेंक देते थे। उनमें

कुछ सिद्धियाँ भी थीं। एक क्षणमें ऊँची परामर्शकी बात करते, दूसरे क्षणमें अपने को छिपानेके लिये पागलोंकी-सी बातें बनाने लगते। मैं उनसे भगवान्का दर्शन करानेके लिये प्रार्थना किया करता था और वे बड़े प्रेमसे मुझे समझाया करते थे। एक दिन जब मैंने उनसे भगवान्का दर्शन करानेके लिये कहा तो वे डंडा लेकर मेरे पीछे दौड़े। बोले, "ठहर, तू बिना साधन किये भगवान्का दर्शन् करना चाहता है।" मैं वहाँसे भागा और घर चला आया। बात कुछ समझमें न आयी कि ये महात्मा ऐसे क्यों बन गये। परन्तु इसके बाद भी उनपर मेरी श्रद्धा कम नहीं हुई। एक दिन वे महात्मा कहीं बाहर जानेके लिये तैयार हुए और मुझसे बोले, "बेटा! साधुओंके पीछे ऐसे नहीं पड़ा करते। भगवान् के दर्शन ऐसे सुगम थोड़े ही हैं। जा, आजसे आठवें दिन तुझे गुरु मिल जायँगे। उनकी शरण ग्रहण करनेसे तेरा कल्याण होगा।" यह कहकर वे महात्मा कहीं चले गये।

मैं बड़ी उत्सुकतासे उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगा। ठीक आठवाँ दिन आया। गुरुप्राप्तिकी आशासे मेरा मन आज अत्यंत प्रसन्न था। प्रातःकालीन नित्यक्रियासे निवृत्त हो मैं गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित साधनपथ नामकी पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें यह प्रसङ्ग था—'साधकको सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये बाहर ढूँढ़-खोज नहीं करनी चाहिये। महात्मा और ईश्वर योग्य अधिकारीको स्वयं ही कृपा करके मिलते हैं।' इसके पश्चात्, जब मैं श्रीसूरदासजी का प्रसिद्ध पद मो सम कौन कुटिल खल कामी' पढ़ रहा था, मेरा मित्र रामप्रसाद आया और कहने लगा, "गामत (कसीसोंसे एक मील दूरीपर स्थित गाँव) में एक प्रसिद्ध महात्मा उड़ियाबाबाजी आये हैं। चलो, दर्शन कर आवें।" मैं तो इसी प्रतीक्षामें था ही तुरन्त चल पड़ा। गोमतकी सरस्वती नामकी एक भक्त माता आग्रह करके श्रीमहाराजजीको अपने यहाँ ले आयी थी।

मैंने जाकर दर्शन किया और प्रणाम करके एक वृक्षके नीचे बैठ गया। महाराजजीके रोम-रोमसे शान्ति और वैराग्य टपकता था। कुछ देरतक उनके दर्शन और सत्संग-श्रवण का सुअवसर मिला। मेरी श्रद्धा और प्रसन्नताका पार नहीं था। बहुत-से बड़े-बड़े आदमी श्रीमहाराजजीकी सेवामें आये हुए थे और अपने-अपने यहाँ चलनेके लिये प्रार्थना कर रहे थे। इससे स्वाभाविक ही मेरे मनमें आया कि जिनके इतने बड़े-बड़े आदमी भक्त हैं वे मुझसे क्या स्नेह करेंगे ? इतनेमें भिक्षाका समय हो गया। सब लोग जहाँ-तहाँ चले गये। मैं भी वहाँसे उठकर अन्यत्र जा बैठा।

अब, महाराजजीने एक व्यक्ति से कहा, "इस वृक्षके नीचे जो लड़का बैठा था वह भूखा है, उसे भोजनके लिये बुला लाओ।" उसने पूछा, "कौन, कसीसोंका व्रजमोहन ?" बोले, "हाँ,हाँ।" यद्यपि अभीतक उनसे मेरे नाम और गाँवकी कोई चर्चा हुई नहीं थी। वह आदमी आकर मुझे लिवा ले गया। महाराजजी ने कहा, "तुम भोजन कर लो।" मैं शर्माया, जैसा कि प्रायः गृहस्थों-को साधुओं अथवा अन्य अपरिचित गृहस्थोंके घरोंमें भोजनका प्रसंग उपस्थित होनेपर होता है। अतः मैंने श्रीमहाराजजीसे 'मैंने भोजन कर लिया है' यह झूठ बोलकर बचनेका प्रयत्न किया। पर वे तो सब कुछ जानते थे। तुरन्त बोले, "अरे ! झूँठ बोलता है। चल, भोजन कर ले।" मैंने फिर भी अपनी बात दुहराई। तब 'अच्छा, इसे छोड़ दे' ऐसा कहकर श्रीमहाराजजी चले गये।

शामको मैंने पूछा, "महाराजजी ! आप कल रहेंगे ? मैं कल भी दर्शन करनेके लिये आना चाहता हूँ।" आप बोले, "पता नहीं। चले आना। रहें तो दर्शन कर जाना, न रहें तो लौट जाना। थोड़ी ही दूर तो है।" उसके बाद मैं घर लौट आया।

कसीसों में

मैंने गाँव में कुछ लोगों को आपसमें बात करते सुना—

उड़िया बाबा बहुत बड़े महात्मा हैं, हमारा इतना सौभाग्य कहाँ जो वे यहाँ आवें ? उनके सामने मेरे मुखसे निकल गया, "तुम लोग चिन्ता मत करो, उन्हें मैं यहाँ ले आऊँगा।" मैंने कह तो दिया, परन्तु स्वयं संदेह में था।

दूसरे दिन मैं फिर गोमत पहुँचा। दिन भर दर्शन और सत्सङ्गका लाभ मिला। उन दिनों महाराजजीका नियम था कि रात्रिमें वे किसीको अपने पास नहीं रहने देते थे। सायंकाल में सबको सुना दिया गया। "अब सब लोग अपने-अपने घरों को जाओ।' मुझसे भी कहा; परन्तु महाराजजीने कह दिया, "यह नहीं जायगा। यहीं रहेगा।"इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। रात्रिमें श्रीमहाराजजीकी चरणसेवाका अवसर मिला। आपने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है ?" मैंने कहा, "व्रजमोहन।" आप बोले, "तू सच्चा व्रजमोहन है या झूँठा ?" मैंने उत्तर दिया, "महाराजजी ! सच्चे व्रजमोहन तो ठाकुरजी हैं।" आप बोले, "नहीं, मैं कहता हूँ, तू सच्चा व्रजमोहन होगा।" इसे मैंने उनकी कृपा मानी। इसी समय आपने मुझे भगवान् श्रीकृष्णके ध्यान और द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश किया तथा श्रीरामचरितमानस का पाठ करनेकी आज्ञा दी।

रात्रिमें मैंने अपने गाँवमें चलनेके लिये प्रार्थना की। आप बोले, "भैया!वैसे तो खुरजा जानेका निश्चय हो चुका था। परन्तु मैं वहाँ जाऊँगा नहीं। यहाँसे मेरा विचार वृन्दावन जाने का है।" मैंने कहा, "महाराजजी ! वृन्दावनके मार्गसे तो केवल चार फर्लांगकी दूरीपर मेरा गाँव है। वहाँ होते हुए चले जाइयेगा। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

दूसरे दिन श्रीमहाराजजी मेरे गाँवमें पधारे। हमने शिवमन्दिर पर कीर्तन कराया। गाँवके लोग बड़े प्रसन्न हुए और मेरी

प्रशंसा करने लगे। वास्तवमें इसमें उनकी अहैतुकी कृपाके सिवा मेरी प्रशंसाकी तो कोई बात नहीं थी। रात्रिमें मैं देर तक श्रीमहाराजजीकी चरणसेवा करता रहा। इस समय मैंने एक चमत्कार देखा। रात्रिमें दो बजे जिस आसनपर आप बैठे थे उससे उठकर बोले, "चल" मैं साथ चल दिया। कुछ फर्लांग तक साथ-साथ गया। फिर अकस्मात् आप अन्तर्धान हो गये। मैं बड़ा चकित हुआ कि महाराजजी कहाँ गये। अन्य कोई उपाय न देखकर मैं लौट आया। वहाँ देखा कि आप पूर्ववत् अपने आसनपर विराजमान हैं। इसे मैंने श्रीमहाराजजीकी कोई सिद्धि माना और इससे उनमें मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

अब मुझे श्रीमहाराजजीके बिना चैन नहीं पड़ता था। दूसरे दिन जब आप चलनेको तैयार हुए तो कोई अन्य उपाय न देखकर मैंने झूँठका आश्रय लिया और उनसे कहा, "महाराजजी! व्रजके चोमा गाँवमें मेरे मामा रहते हैं। उनके यहाँसे पत्र आया है, मुझे वहाँ जाना है। यदि आज्ञा हो तो वृन्दावनतक आपके साथ चलूँ?" मैंने सोचा कि पहले वृन्दावन तक तो चलूँ, आगे देखा जायगा। यद्यपि श्रीमहाराजजी सब जानते थे, फिर भी मेरी हार्दिक इच्छा जानकर उन्होंने अनुमति दे दी और मैं साथ चलनेके लिये तैयार हो गया।

अब तो गाँव वाले घबड़ाये और घर के लोग रोने लगे। उन्होंने समझा कि अब यह साधु हो जायगा। महाराजजीने सबको आश्वासन दिया कि तुम लोग घबड़ाओ मत। मैं इसे साधु नहीं होने दूँगा और पन्द्रह दिनमें यहाँ भेज दूँगा। तब सबको धैर्य हुआ और मैं श्रीमहाराजजीके साथ वृन्दावनको चल पड़ा।

श्रीवृन्दावनकी ओर

इस यात्रामें श्रीमहाराजजीकी सेवामें बम्बई वाले ब्रह्मचारी

कृष्णानन्दजी भी थे। अभी वे श्वेत वस्त्र धारण करते थे। मार्गमें एक गाँव आया। उसके पास एक जगह हम ठहर गये। महाराजजी ने कहा कि देखो, किसीको मेरा नाम मत बताना। नहीं तो भीड़ हो जायगी। वहाँ गाँवका एक आदमी आया और ऐसा अनुमान करके कि ये कोई अच्छे महात्मा हैं घरसे दूध और पराँठे बनवा कर ले आया। थोड़ी देरमें श्रीमहाराजजी शौचसे निवृत्त होने के लिये चले गये। तब उसने बम्बईवालोंसे पूछा, "महाराज! ये कौन महात्मा हैं?" अब बम्बईवाले बड़े चक्करमें पड़े। इधर महाराज-जीने तो मना कर रखा था और उधर वह श्रद्धालु भक्त पूछ रहा था। अन्तमें उन्होंने यह सोचकर कि इसके पराँठे तो हमने खा ही लिये हैं, अब यह भी अपना सौभाग्य समझे, उन्होंने पूछा, "तुमने किसी बड़े महात्माका नाम सुना है?" वह बोला, "हाँ, उड़िया बाबाका नाम तो सुन रखा है।" इस पर बम्बईवाले बोले, 'बस ये वे ही हैं।"

थोड़ी देरमें महाराजजी आ गये। वे स्वयं ही कहने लगे, "भैया तुमने नाम बता दिया। अब यहाँ भीड़ लग जायगी। अच्छा, एक काम करो। आज रात को इसे गाँवमें मत जाने दो।" ऐसा ही किया गया। उसमें गाँवमें न जाने से किसीको भी पता न चला।

वहाँसे चलकर श्रीमहाराजजी माँट पहुँचे और एक घर पर भिक्षाके लिये 'नारायण हरि' किया। उस घरकी बुढ़िया भोजनकर रही थी। वह आवाज सुनतेही बोली, "बाबा,! अभी हाल लाऊँ" और तुरन्त उठकर हाथ लहँगासे पोंछ आधी रोटी लायी। महा-राजजीने उस रोटीको बहुत प्रशंसा करते हुए पाया और बोले, "भैया! ब्रजवासियोंमें अब भी बड़ा भाव है।"

इसके पश्चात् महाराजजी वृन्दावन पहुँचे और भजनाश्रममें ठहरे। यहाँ भी आपसबसे छिपकर रहते थे और चुपचाप श्रीबाँके-

विहारीजी, श्रीराधावल्लभजी और आनन्दीबाई आदिके मंदिरोंमें दर्शन कर आते थे। मैं तो पहली बार ही वृन्दावनमें आया था। मुझे ऐसा भान होता था मानो श्रीबाँकेविहारीजी और श्रीराधा-वल्लभजी प्रत्यक्ष श्वास ले रहे हैं। वृन्दावनमें सात-आठ दिन ही ठहर पाये थे कि खुरजा के कुछ लोग पता लगाते आ गये। महाराजजी बोले, "भागो यहाँसे।" फिर गोरे दाऊ होते हुए आप मथुरा पहुँचे। यहाँ आपने मुझसे एकादशी व्रत रखवाया और मुझे यज्ञोपवीत धारण कराया। फिर गौके सहित भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र खरीदवाकर मुझे दिया और कहा कि इन्हीं का ध्यान किया करो।

पन्द्रह दिन पूरे होते ही आपने मुझे गाँव जाने की आज्ञा दी मैंने प्रार्थना की, "महाराजजी ! मुझे छोड़ियेगा नहीं।" आप बोले, "बेटा ! मुझे अपनाकर छोड़ना नहीं आता। और तेरी तो क्या ताकत है जो छोड़ दे। मुझे भजन करनेवाले सदाचारी व्यक्ति बहुत प्रिय लगते हैं।" मैं चौमा होकर घर लौट आया। श्रीमहाराजजीकी मुझे बहुत याद आती थी। घरमें मन नहीं लगता था। एक वर्ष बाद खुरजा जाकर मैंने पुनः दर्शन किये। उसके पश्चात् अनूपशहर में दर्शन हुए। जब मैं अनूपशहर पहुँचा तो श्रीमहाराजजी बोले, "मैंने तुम्हें परसों याद किया था।" अर्थात् जिस दिन श्रीमहाराजजीने मुझे स्मरण किया था उसी दिन मैं गाँवसे चला था। यह उनकी आकर्षणशक्ति या संकल्प-सिद्धि ही थी जो मुझे वहाँ खींच ले गयी थी।

उनकी विशेष कृपा

प्रारम्भके चार-पाँच वर्षोंमें श्रीमहाराजजी मुझे बड़े आदमियोंके यहाँ नहीं खाने देते थे। किसी गरीबके घर भोजन करा देते थे। जिस दिन मुझसे कोई प्रमाद होता तुरन्त टोक देते। मैंने अनुभव

किया कि उनसे मेरी किसी भी क्षणकी क्रिया छिपी नहीं रह सकती थी। यह बात उन्होंने मेरे मनमें अच्छी तरह बैठा दी थी। मैं जब-जब उनसे मिलता तब-तब वे मेरी प्रत्येक साधना, स्थिति और स्वभावके विषयमें सूक्ष्म बातें खोलकर बतला देते थे। मैं उनमें परचित्ताभिज्ञान[1] सिद्धिको स्पष्ट अनुभव करता था। मुझसे जिस दिन भजन न होता वे स्पष्ट कह देते थे, "बेटा! आज तुमने भजन नहीं किया।" परन्तु उनकी यह महिमा उन्हीं लोगोंको अनुभव हुई जिन्हें उन्होंने अनुभव कराना चाहा; दूसरोंको नहीं।

श्रीमहाराजजी प्रारम्भसे ही कहा करते थे कि तू वृन्दावनका प्रेमी है, अतः वृन्दावनमें ही रहेगा। यह उन दिनोंकी बात है जब वृन्दावनके प्रति मेरा आकर्षण भी नहीं था। जब मेरा चित्त उचटता आप तुरन्त कहते कि वृन्दावन चला जा। आगे चलकर उनकी यह बात सत्य हुई और वृन्दावनके प्रति मेरी श्रद्धा-प्रीति बढ़ गयी।

मेरा एक छोटा भाई था। उसका नाम था पुष्कर। वह बड़ा होनहार था। दिन भर काम करनेके बाद भी वह रातके ग्यारह बजेतक भजन करता था। उसपर मेरा बड़ा अनुराग था। उसकी मृत्यु हो गयी। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। इच्छा होती कि शरीर छोड़ दूँ। लोग बार-बार मुझे रोक लेते। भजनमें बिलकुल मन नहीं लगता था। भगवद्दासजीने मुझे झूसी भेजा। वहाँ श्रीमहाराजजीके दर्शन किये। फिर भी वही दशा। पन्द्रह दिन तक रोता रहा। अन्तमें एक दिन श्रीमहाराजजीने कहा, "हट!" उनके इस शब्दके उच्चारणमें न जाने क्या शक्ति भरी थी कि उसी समयसे मेरा सारा मोह विलीन हो गया। अब मैं अपने भाईको भाई नहीं अपना शत्रु समझने लगा, जिसने मेरे भजनमें इतनी बाधा पहुँचाई।

---

१ दूसरेके चित्तकी बात जान लेनेकी शक्ति।

श्रीमहाराजजीके उपदेश, सत्संग और कृपासे मुझे कितना लाभ हुआ—यह कैसे कहा जा सकता है ? मेरा घोर संसारी जीवन था। स्वप्नमें भी ऐसे जीवनकी आशा नहीं थी। उनकी दयासे ही आज श्रीधाम वृन्दावनका वास और श्रीप्रियाप्रीतमकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे बढ़कर और क्या लाभ हो सकता है ?

बाबा श्रीजीयालालजी

(१)

अभी मुझे बाबाके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। मैं लोगोंके मुँहसे सुनता था कि बाबा सिद्धकोटिके महापुरुष हैं और वे दूसरोंके मनकी बात जान लेते हैं। बारम्बार बाबाके गुणोंकी प्रशंसा सुनकर मेरे मनमें उनके दर्शनोंकी उत्कण्ठा हुई। एक दिन मैंने महाराजजी (श्रीहरिबाबाजी) से बाबाके दर्शनार्थ जानेके लिये आज्ञा माँगी। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे आज्ञा दे दी। उन दिनों बाबा गङ्गातट पर कर्णवासमें विराजमान थे। मैं भिराबटीसे चला। रास्तेमें चलते समय मेरे मनमें बाबाके प्रति श्रद्धा-भक्तिके भाव बढ़ते जाते थे और मैं सोचता जाता था कि आज मेरा बड़ा सौभाग्यहै जो मैं बाबाके दर्शन करूँगा। लोग कहते हैं कि वे अन्तर्यामी हैं। आज मुझे बेसनी लड्डू खाने की इच्छाहैं। जानेपर यदि वे मुझे खानेके लिये बेसनी लड्डू देंगे तो मैं समझूँगा कि वे सचमुच अन्तर्यामी हैं।

जिस समय मैं कर्णवास पहुँचा दिनके दो बज चुके थे। बाबा छतपरकी कुटीमें विश्राम कर रहे थे। ज्योंही मैं जीनेपर चढ़ा त्यों ही दण्डिस्वामी सियारामजीने मुझे रोका। बोले, 'महाराज ! अभी विश्राम कर रहे हैं, नहीं मिलेंगे।" मैंने बाबाको सुनानेके उद्देश्यसे ऊँची आवाजमें कहा, "मैं बाबाका दर्शन करनेके लिये आया हूँ। तुम बीचमें क्यों रोकते हो ?" मेरी बात सुनकर

वावा स्वयं ही वाहर आ गये और वोले, "अरे भैया ! तू कहाँसे आया है।" मैंने प्रणाम किया और कहा, 'बावा ! मैं भिरावटी से आपके दर्शनोंके लिये आया हूँ। मुझे महाराजजीने भजा है।" यह सुनकर वावा बड़े प्रसन्न हुए और महाराजजीका कुशल-क्षेम पूछा। फिर उन्होंने कहा, "सियाराम ! तख्तके नीचे हाँडी रखी है, उसे लाओ तो।" सियाराम हाँडी ले आये। उसमें बेसनी लड्डू भरे थे। वावाने मुझसे कहा, "ले, तू भूखा है। भोजन कर ले।" मैं भिक्षा कर चुका था, इसलिये प्रार्थना की, "वावा मैं भिक्षा कर चुका हूँ।" बावा फिर वोले, नहीं रे ! तू भूखा है।" यह कहकर उन्होंने बहुतसे लड्डू मेरे आगे परोस दिये। उनमें से मैंने कुछ खाये और शेष बाँध लिये।

दूसरे दिन जव मैं बाबाको प्रणाम करके भिरावटी जाने लगा तो उन्होंने रास्ते में खाने के लिये मुझे और लड्डू दिये। इस घटनासे मुझे विश्वास हो गया कि वावा अन्तर्यामी हैं। इससे उनमें मेरी श्रद्धा बढ़ी।

(२)

इसके कुछ महीने पश्चात् मैंने एक विद्यार्थी से सुना कि बाबा आजकल नरवर पाठशालामें पधारे हैं। मैं उन दिनों फतहपुर में था। बाबाके दर्शनोंकी मुझे इच्छा हुई और मैं नरवरकी ओर चल दिया। बीचमें गङ्गाजी पड़ती थीं। नाव आदि कुछ थी नहीं। मैंने सोचा यदि राजघाट पुलसे होकर जाता हूँ तो आने-जाने में दस मीलका चक्कर लगेगा। और आज मुझे बावाके दर्शन करके ही भोजन करना है। ऐसा सोचकर मैंने पटेरोंका एक बोझ बाँधा और बाबाका स्मरण करके उसे गङ्गाजोमें छोड़ दिया। उसीके सहारे मैंने गङ्गाजीको पार कर लिया। जब मैं बाबाके पास पहुँचा उस समय मेरे दाहिने हाथमें तो झोली और माला थी, अतः मैंने वायें हाथसे ही बाबाके ऊपर फूल चढ़ाये। उस समय मेरे मनमें

प्रेमका ऐसा वेग आया कि मैं रोने लगा और मूच्छित होकर गिर गया।

जब मैं सावधान हुआ तो बाबा मुझसे बोले, "तू क्या भजन करता है? बाबा (श्रीहरिबाबाजी)से प्रेम कर तेरा कल्याण तो हो गया।" बाबाके मुखसे ऐसे आशीर्वादात्मक वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए कलकत्तीवाले डाक्टर साहब बार-बार उनसे प्रार्थना करने लगे कि मेरे लिये भी ये ही वचन कह दीजिये। परन्तु बाबाने यह कहकर टाल दिया कि यह तो बालक है, इसे बहला रहा हूँ। इसके पश्चात् बाबाने मुझे भोजन कराया और तीसरे पहर लौंग इलायचीका टिकट देते हुए कहा, 'बेटा! जैसे आया है वैसे मत जाना। वहाँ बहुत जानवर हैं। राजघाट पुलसे पार करके जाना।" यद्यपि मैंने बाबाको बेड़े द्वारा गङ्गाजी पार करने का वृत्तान्त सुनाया नहीं था और न सुनानेकी कोई आवश्यकता ही थी, तथापि उन्होंने जान लिया।

बाबाके मना करने पर भी मैंने आलस्यवश यह सोचकर कि इतनी दूर कौन जाय, बेड़ेसे ही गङ्गाजी पार करने का निश्चय किया। किनारेपर पहुँचकर मैंने बेड़ेको ठीक करके गङ्गाजीमें छोड़ा, परन्तु वह भीग जानेके कारण डूब गया। यह सोचकर कि शायद पानी कम होनेके कारण डूब गया हो, मैंने उसे सोने के बराबर जलमें ले जाकर छोड़ा। परन्तु वहाँ भी डूब गया। बार-बार प्रयत्न करनेपर भी मैं सफल न हुआ। मानो उसने मुझे न ले जाने की शपथ खा ली हो। आखिर मैं निराश हो गया और बाबाकी आज्ञा शिरोधार्य कर राजघाटके पुलसे पार होकर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा।

(३)

बाबा अतरौलीके पास गड़ियावलीमें विराज रहे थे। श्रद्धालु भक्त क्रमशः एक-एक दिन अपने यहाँ भिक्षा कराते थे। श्रीभूदेव

शर्मांके अनुरोधसे ही वावा वहाँ गये थे। उनकी इच्छा थी कि जिस दिन वहाँसे प्रस्थान करें उस दिनकी भिक्षा उन्हींके यहाँ हो। एक दिन वावाने कहा, "भूदेव ! तुम भी भिक्षा करा लो। अव मेरा मन यहाँ नहीं लग रहा है।" शर्माजी वोले, "हाँ महाराज ! कल परसोंतक मैं भी भिक्षा करा लूँगा।" वे सोच रहे थे कि मेरे यहाँ भिक्षा किये विना तो वावा जायँगे नहीं, अत: एक-दो दिनके लिये और भिक्षा टाल दूँ। वावाने दुवारा कहा, "अव मेरा मन यहाँसे जाना चाहता है।" इससे लोगोंको निश्चय हो गया कि अव बावा यहांसे जायँगे।

शामको मुझे साथ लेकर आप एक मील तक टहलते चले गये और वोले. "देख. आज तू अमुक पेड़के नीचे सोना। आधी रातके पश्चात् मैं वहाँ आऊँगा। आज रातको यहाँसे चल देना है। किसीसे भो कहना मत।" रात्रिमें अनेकों भक्त वावाको घेर कर सोये। कुछ लालटेन लिये इधर-उधर घूम भी रहे थे। फिर भी न जाने कैसे सवसे बचकर आधी रातके वाद आप बाहर निकल आये ओर मुझे साथ लेकर वहाँसे चल दिये। मैंने अपनी इच्छा से ही चेतनदेवजीको संकेत कर दिया था, अत: वे भी साथ हो लिये। कई मोल चले जानेपर सूर्योदय हुआ। स्नानादिके पश्चात् जब मध्याह्न हुआ तो बाबा हम दोनोंको साथ लेकर भिक्षाके लिये गये। भिक्षामें मुझ और चेतनदेवजीको दो-दो, तीन-तीन रोटियां मिली थीं और बावा मोटी-मोटी दो रोटियाँ लाये थे। मुझसे बोले, "तू ज्यादा भूखा है. एक रोटी तू ले ले।" ऐसा कहकर एक रोटी मुझे दे दी। अव उनके पास केवल एक ही रह गयी। परन्तु उसे भी वे खा नहीं रहे थे। थोड़ी ही देरमें उनका एक पूर्वपरिचित भक्त आया। वह भी भूखा था। उसे उन्होने वह वची हुई रोटी खिला दी।

तीसरे पहर मेरे मनमें आया कि बाबा भूखे वैठे हैं और

गर्म-गर्म हवा चल रही है, ऐसा न हो इन्हें लू लग जाय। यह सोचकर मैं कहींसे तीन-चार कच्चे आम ले आया। उन्हें भूनकर नमक मिलाकर पन्ना बनाया और बाबाको पिला दिया। उस दिन वही बाबाका भोजन रहा। मेरा विश्वास है कि बाबा उस भक्तके आनेकी बात जान गये थे इसीलिये उन्होंने वह रोटी नहीं खायी। बाबाकी ऐसी परदुःखकातरता देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गये।

(४)

वहाँसे चलकर ठीक अक्षय तृतीयाके दिन बाबा वृन्दावन पहुँचे। श्रीबाँकेबिहारीजी और राधावल्लभजी के दर्शन किये और फिर चौमा पहुँच गये। वहाँ पीताम्बर पटवारीने सब सेवा की। वहांसे सहार पहुँचे। उस गाँवमें मीठा जल भरनेके लिये पन्द्रह-बीस गोपियाँ गाँवसे बाहर कुएँपर आयी हुई थीं।। वे बाबाको देखकर बोलीं, "अरे संन्यासी, रे संन्यासी! आ पानी पी जा।" बाबा कुछ न बोले, चुप रास्ता चलते रहे। तब वे फिर बोलीं, "अरे निपूते! पानी न पीवे तो मत पी, नेक दर्शन तो दे जा।" बाबा उनकी व्रजकी बोली ठीक-ठीक न समझ सके, बोले, "व्रज-किशोर[1] ये क्या कह रही हैं?" चेतनदेवजीने अपने हृदयके अनुसार भावुकताके स्वरमें कहा, "महाराजजी! श्यामसुन्दर जब वनमें गौएँ चराने जाते थे तो बड़ी बूढ़ी गोपियाँ तो बाहर आकर उनका दर्शन कर लेती थीं परन्तु जो नवविवाहिता होतीं वे लोकलज्जा-वश घरसे बाहर नहीं निकल पाती थीं। उन्हें उससमय श्यामसुन्दर के दर्शन नहीं हो पाते थे। वे जब मीठा जल भरनेके लिये गाँव से बाहर कुएँपर जाती थीं तब गौएँ चराते हुए श्यामसुन्दरको देखकर इसी प्रकार बुलाती थीं कि ओ श्यामसुन्दर! आओ, जल पी जाओ। पर वे भला सीधी तरह क्यों आने लगे। तब वे कहतीं

१ चेतनदेवजीका पूर्वाश्रमका नाम। बाबा उन्हें इसी नामसे पुकारते थे।

थीं, अरे निपूते ! जल नहीं पीता तो न सही, नेक दर्शन तो दे जा।" तब श्यामसुन्दर आते और जल पीते। साथ ही दो-दो मीठी चुटकियाँ लेकर उन गोपियोंके मन और प्राणोंको चुराते हुए चले जाते। इसीलिए उन्होंने यहाँके कुओंके जल खारे कर दिये। तभीसे यहाँ ऐसी चाल पड़ गयी है कि यहाँ गोपियाँ जब किसी महात्माको जाते देखती हैं तो इसी प्रकार बुलाती हैं।"

यह उत्तर सुनकर बाबा बोले, "तुम उनसे कह आओ कि हम तीन दिन नहरके किनारे ठहरेंगे।" चेतनदेवजीने जाकर उन्हें यह बात सुना दी। तीसरे पहर बहुतसी गोपियाँ साथ मिलकर गाती हुई वहाँ आयीं और अपनी-अपनी भिक्षा सामग्री रखकर लौट गयीं। छाछ, रोटी-दूध और दलियाका ढेर लग गया। बाबाके साथ हम दोनोंने वह प्रसाद पाया।

(५)

वहाँ तीन दिन ठहरकर बाबा करैलाकी झाड़ीमें पहुँचे और बोले, "देखो, कोई जानने न पावे, यहाँ हम कुछ दिन झाड़ी में निवास करेंगे।" उस समय मैं, चेतनदेव, वासुदेव, और व्रज-मोहन आदि चार-पाँच व्यक्ति थे। पीछेसे लक्ष्मीनारायण और भगवद्दासजी भी पहुँच गये थे। हमने एक कच्चा कुआँ खोदा था। उसका जल बहुत ठंडा और मीठा था। वहाँ बाबा तेईस दिन रहे। एक दिन रात्रिमें बाबा शयन कर रहे थे और चेतनदेव उनकी चरणसेवामें तत्पर थे। आधीरातके पीछे एक जंगली सूअर आया और चेतनदेवजीको सूँघकर चला गया; बोला कुछ नहीं।

आस-पासके ग्रामवासी बड़ी श्रद्धापूर्वक बाबाकी भिक्षा कराते थे। एक दिन वृन्दा यादवकी स्त्री भिक्षा लेकर आयी और अपने हाथसे ही बाबाको खिलाने लगी। इतने ही में उसका पति भी आ गया। उसने देखा कि बाबा खाते जा रहे हैं। परन्तु उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। बात यह थी कि बाबा तो मिर्च खाते

नहीं थे और उस भोजनमें मिर्च थी अधिक। इसीसे खाते समय उनकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे।

यह दृश्य देखते ही वृन्दा अपनी स्त्रीसे बोला, "अरी राँड़! तू यह क्या कर रही है। तूने बाबाको बड़ा दुःख दिया।" बाबाने उसे रोकते हुए कहा, "तू इससे कुछ मत कह। यह तो प्रेमसे भोजन करा रही है। मुझे बड़ा आनन्द आ रहा है।' तब वह हाथ जोड़कर बाबासे कहने लगा, "बाबा! शाप मत दीजों। मैं वैसे ही निःसन्तान हूँ।" बाबा बोले, "तेरे सन्तान तो अवश्य होगी।" इसके पश्चात् वृन्दाके दो पुत्र और दो पुत्री चार सतानें हुईं। पहला पुत्र होनेपर वृन्दाने बधाईकी मिठाई वृन्दावन लाकर बाबाको खिलायी थी और प्रार्थनाकी थी कि बाबा! घर चलो, आपके आशीर्वादसे बच्चा हुआ है। परन्तु बाबाने यह कहकर टाल दिया कि अब तो जा, फिर कभी आयँगे।

(६)

कर्णवासकी बात है, शिवरात्रि व्रतका दिन था। सभी लोग व्रती थे। श्रद्धालु भक्त बाबाको जल, फल, फूल, बेर, सेव, सतरा, आकके फूल और धतूरा आदि जिसे जो भाता था वही चढ़ा रहे थे। समष्टि पूजन हुआ। आरती होकर समाप्ति हुई। बाबाने सभी को प्रसाद दिया। मुझे भी दिया। मुझे जो प्रसाद मिला उसमें अन्य फलोंके साथ एक धतूरा भी था। मैंने और सब तो खा लिया, अब धतूरेकी बारी आयी। मन डरा, न जाने क्या दशा होगी। भावुकताके आवेशमें मैंने सोचा,'मीराबाईने प्रसाद समझ-कर जहर पी लिया, हम क्या एक धतूरेको नहीं खा सकते?' ऐसा विचारकर मैंने धतूरा खा लिया। थोड़ी ही देरमें खुश्की बढ़ी, कण्ठ सूख गया और पेटमें बड़े जोरसे ऐंठन होने लगी। व्या-कुलताके मारे होश गुम होने लगे। मेरी दशा देखकर अमरसा-

वाले बलदेव ब्रह्मचारी, जो बाबासे सखाभाव रखते थे, बाबाके पास गये और बोले, "तुम न जाने क्या-क्या आक-धतूरा बटोरते रहते हो ? जीयालालकी हालत देखा तो।" बाबा तुरन्त आये और मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए बोले, "कुछ नहीं होगा, चुपचाप सो जा।" इतना कहकर वे मुझे एक रेशमी वस्त्र ओढ़ाकर चले गये। मैं सो गया और जब प्रातःकाल उठा तो सर्वथा स्वस्थ था।

(७)

एकबार गाँवमें मैं सख्त बीमार था। बुखारके कारण तेरह-चौदह लंघन हो गये थे। कष्टकी अधिकताके कारण मैंने मन ही मन आत्महत्या करनेका निश्चय कर लिया। पर कहा किसीसे कुछ भी नहीं। सुना था सफेद कन्नेरका अर्क पीनेसे मृत्यु हो जाती है। चुपकेसे मैंने अर्क तैयार किया और छिपाकर रख दिया। मनमें निश्चय किया कि जानकीप्रसाद आदिके चले जाने पर इसे पीऊँगा।

रात्रिको स्वप्नमें बाबाने दर्शन दिया और बोले, "बेटा ! यों अकाल मृत्युसे नहीं मरा करते। रोग-शोक तो आते-जाते रहते हैं। घबड़ा मत, अच्छा हो जायगा। इस अर्कको फेंक दे। प्रातः काल जगने पर मेरा चित्त प्रसन्न और स्वस्थ था। उसके दो-तीन दिन बाद ही मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया और मैं बाबाके दर्शन करने चला गया।

बाबा इस तरह विकट अवसरोंपर हम लोगोंकी रक्षा किया करते थे। उनकी कृपा तो अब भी वैसी ही है। परन्तु उसका अनुभव हम लोगोंको बहुत कम हो पाता है। यह हमारा दुर्भाग्य है फिर भी वे हमें भुलाते नहीं। कितना अच्छा होता यदि हम उनकी महान् कृपाका अनुभव कर पाते। हित तो करना परन्तु जहाँ तक होसके छिपे रहकर—यह उनकी कृपाका निराला ढङ्ग था।

श्रीवासुदेवजी ब्रह्मचारी, वृन्दावन

पूज्य श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मैंने रामघाट में किया। इसके पश्चात् मैं जगन्नाथपुरी गया। वहाँ से लौटनेपर मुझे ज्वरके साथ दस्त भी आने लगे। उस रुग्णावस्थामें ही मैंने श्रीमहाराज जीके पास जाकर उनके दर्शन किये। जब वहाँसे चलने लगा तो बोले, "जाता कहाँ है ? यहीं रहो" मैंने निवेदन किया, "मुझे ज्वर और दस्त आते हैं, इसलिये जाना चाहता हूँ।" तब आपने एक फल देकर आज्ञा दे दी, "अच्छा, जा।" उस फलमें न जाने क्या शक्ति भरी थी कि उससे पहले जहाँ मैं बड़ी कठिनाई से रास्ता चल पाता था वहाँ उसे पाकर कूदता-फाँदता घर पहुँच गया।

एकबार दिवालीके अवसरपर मैं घरपर ही था। अकस्मात् मेरा श्वास बन्द हो गया और मुझे स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि श्रीमहाराजजीको कोई विशेष बात है। अतः मुझे उनके दर्शन करनेकी इच्छा होने लगी। विश्वम्भरप्रसादजीसे मालूम हुआ कि फर्रुखाबादसे तार आया है–वहाँ श्रीमहाराजजीको ज्वर आ रहा है। मैं पैदल चल पड़ा। रास्तेमें चार दिन लग गये। पाँचवें दिन जब मैं सरकारके समीप पहुँचनेवाला था आप सुखराम से कह रहे थे–"भैया ! वासुदेवको रास्ता चलते-चलते पाँच दिन हो गये हैं, वह अभी तक नहीं पहुँचा।" इतनेहीमें मैं पहुँच गया। आप अब स्वस्थ हो चुके थे, अतः दर्शन करने पर मेरी चिन्ता दूर हो गयी और चित्त प्रसन्न हो गया।

वहाँसे हम तीन-चार सेवकोंको साथ लेकर श्रीमहाराजजी शिवपुरी को चले। रास्ता चलते-चलते सायंकालमें मुझे भूख लग आयी। मैंने यह बात आपसे भी कह दी। आप बोले, "भैया! साधुका काम रात्रिमें भिक्षा करनेका नहीं है, भजन करो।" उसदिन सड़कके सहारे एक झोंपड़ीमें विश्राम हुआ। रात्रि के नौ बजे एक तेजस्वी महात्मा प्रसाद लेकर आए और सरकारको अर्पण किया। उसमेंसे किञ्चिन्मात्र आपने लेकर शेष सब हमको बाँट दिया। वहाँसे चलकर हम शिवपुरी पहुँचे। वहाँ मैं बीमार पड़ गया और इतना शक्तिहीन हो गया कि उठकर सरकारके चरणस्पर्श भी नहीं कर सकता था। उसी अवस्थामें मेरी इच्छा गङ्गास्नान करने की हुई। उठनेका साहस किया, पर उठ न सका। इतने ही में सरकार आ गए और अपने करकमलों का आश्रय देकर उठाया। उनका हाथ लगते ही मेरे शरीरमें न जाने कहाँसे शक्ति आ गयी और मैं बड़े उत्साहसे जाकर गङ्गा-स्नान कर आया।

श्रीवृन्दावनके आश्रमका प्रतिष्ठा-महोत्सव करके श्रीमहाराजजी बाँधके उत्सवमें चले गए। यहाँ उत्सवके पश्चात् अन्नादि बहुत सामग्री बच गयी थी। एक रातमें चोर आए और उन्होंने कोठार से कुछ सामान निकाल लिया। मैं उस समय सो रहा था। स्वप्न में श्रीमहाराजजीने दर्शन दिया और बोले, "बेटा! तू ऐसा सोता है। देख, चोर आ गए हैं।" इतना कहकर आप अन्तर्धान हो गए। मैं चौंककर बैठ गया। उन दिनों कुटियाके आगे जगमोहन में रातभर लालटेन जलती रहती थी। उधर बड़े दरवाजेके पास वाले कमरेका ताला तोड़कर चोरोंने ठाकुर साहबका बहुत सा सामान निकाल लिया था। मेरे उठने-बैठनेकी परछाईं के कारण चोरोंको जाग होनेका संशय हो गया और वे जो कुछ पल्ले पड़ा उसीको लेकर चंपत हो गए। श्रीमहाराजजीकी आज्ञा होते ही

यदि मैं सावधान होकर आश्रममें चारों ओर घूम-फिरकर देखने लगता तो अवश्य ही चोरोंको या तो सारा ही सामान छोड़कर भागना पड़ता या वे पकड़े जाते। परन्तु उस समय मेरी बुद्धि ऐसी मलिन हो गयी कि मैं उनकी आज्ञा सुनकर भी फिर सो गया।

इसी प्रकार इस जीवनमें श्रीमहाराजजीकी अनेकों चमत्कार-पूर्ण लीलायें देखी हैं। अब तो वे सब केवल स्मृतिमात्र रह गयी हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे अब भी पूर्ववत् हमारी देख-भाल करते हैं और समय-समयपर हमें सावधान करते रहते हैं।
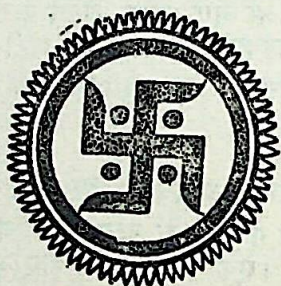
श्रीबुद्धिसागरजी, वृन्दावन

(१)

एक बार हरिद्वारमें कुम्भ होनेके कारण श्रीजयदयाल गोयंदका का सत्संग कर्णवास में हुआ। एक दिन इस प्रसङ्गपर चर्चा चली कि विषयवासना कैसे दूर हो? इसपर विभिन्न सत्संगियों ने अपने-२ विचार प्रकट किये। अन्तमें श्रीजयदयालजीने श्री-महाराजजीसे प्रार्थना की, "आप भी इस विषयमें कुछ कहिये।" महाराजजीने कहा, "मैं क्या कहूँ? मुझे तो कुछ मालूम नहीं।" परन्तु जब पुनः प्रार्थना की गयी तो आप बोले—"रामनाम जब सुमिरन लागा। कहत कबीर विषय सब भागा॥"

इस संक्षिप्त और सारगर्भित उत्तरको सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे, "आप तो कहते थे, मैं कुछ नहीं जानता। आपने तो सम्पूर्ण शास्त्रोंका निचोड़ ही कह दिया।"

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी कुछ भक्तोंके साथ हरिद्वारसे गङ्गा के किनारे-किनारे लौट रहे थे। एक स्थानपर विश्राम किया और सत्सङ्ग होने लगा। "भगवान्‌के दर्शन कैसे हों? इस विषय पर श्रीमहाराजजीका प्रवचन हो रहा था। उसी समय माथेपर तिलक लगाये एक नवयुवक पण्डितजी आये और पूछने लगे, "महा-राजजी! मुझको भगवान् कब मिलेंगे? महाराजजीने तुरन्त उत्तर दिया, "तुमको सात जन्ममें भी भगवान् नहीं मिल सकते।"

पण्डितजीने पूछा, "क्यों महाराजजी ?" महाराजजीने स्पष्ट कह दिया, "परस्त्रीगामीको भगवान् कभी नहीं मिलते।"

सुनकर पण्डितजी अवाक रह गये। जो महापुरुष दूसरोंके गोपनीय प्रसङ्गोंको भी जान लेनेकी सामर्थ्य रखता है उसकी बातको अस्वीकार करनेकी सामर्थ्य पण्डितजीमें कहाँ थी ? परायी स्त्रियोंसे दूषित सम्बन्ध रखनेवाले और साथ ही भगवान् के दर्शन चाहनेवाले मनुष्योंको श्रीमहाराजजीके इस उत्तर से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

(३)

एकबार मैंने पूछा, "महाराजजी ! गुरुके पास शरीर से रहना चाहिये या मन से ?" आप बोले, "शरीरसे रहना चाहिये, मनको किसने देखा है ?"

एक बार सत्सङ्गके अन्तमें आप यह कहते उठ गये थे—"वासना विसारि दे—यही बड़ी बात है।"

श्रीमहाराजजी सत्सङ्गमें ये दोहे प्रायः कहा करते थे—

'बालकपनसे हरि भजे, जगसे रहे उदास।
तीरथ हू आसा करें, कब आवे हरिदास॥
साधू ऐसा चाहिए, दुखे दुखावै नाहिं।
फूल पात तोड़े नहीं, रहे बगीचे माहिं॥'

श्रीप्रकाशानन्दजी, वृन्दावन

प्रथम दर्शन

मैं लोगोंके मुखसे सुना करता था कि कर्णवास-रामघाटमें एक सिद्ध महात्मा रहते हैं। वे लोगोंको प्रायः दर्शन नहीं देते, तथापि लोग उनके दर्शनोंको लालायित रहते हैं। इससे स्वाभाविक ही मेरे मनमें इच्छा हुई कि मैं उन महात्माजीके दर्शन करूँ।

कुछ काल पश्चात् मुझे किसीने बतलाया कि वे महात्माजी उत्सवमें काजिमाबाद आ रहे हैं। इसे मैंने अपना सौभाग्य माना और मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तुरन्त काजिमाबाद पहुँचा। वहाँ जिस समय मैंने श्रीमहाराजजीका दर्शन किया, मुझे उनके मस्तक के चारों ओर प्रकाशपुञ्ज दिखलायी पड़ा। इससे मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई कि न जाने मुझे क्या मिल गया।

उनका प्रभाव

उसके बाद श्रीकृष्णजन्माष्टमीके अवसर पर दूसरी बार दर्शन करनेके लिये मैं रामघाट गया। वहाँ बड़ी सुन्दर सजावट की गयी थी। उस समय श्रीमहाराजजीकी पूजा, प्रताप और ऐश्वर्य देखकर मुझे तो ऐसा लगा मानो साक्षात् भगवान्‌ही मिल गए। वहाँ मैं छोटी-मोटी सेवाओंमें भाग लेने लगा। मुझे श्रीमहाराजजी की आज्ञा जिस किसी सेवाकार्यके लिये होती उसे करनेमें मैं बहुत सुख मानता। उनकी कृपा और उपदेशसे मेरे जीवनमें बड़ा परिवर्तन हो गया। कहाँ तो मैं घर-गृहस्थीके जंजालमें फँसा था और कहाँ सन्त-महात्माओंके सत्संग और ज्ञान-भक्ति के सदुपदेश सुननेका यह दुर्लभ अवसर मिला।

श्रीमहाराजजीमें मैंने यह विलक्षण सिद्धि देखी थी कि वे जहाँ-कहीं बैठ जाते थे वहीं वर्षाकी तरह वस्तुयें बरसने लगती थीं। ऐसी अनेकों घटनायें देखीं कि जहाँ कोई संभावना नहीं

थी वहाँ भी उनके संकल्पमात्रसे वस्तुओं का ढेर लग जाता था। परन्तु इतना बड़ा वैभव होते हुए भी उनका किसी वस्तुमें तनिक भी राग नहीं था। बड़े-२ उत्सवोंके अन्तमें हजारोंका सामान पड़ा रह जाता था और वे सब छोड़कर चल देते थे। इस बातकी कभी चिन्ता नहीं करते थे कि इतना सामान पड़ा है, इसका क्या होगा।

अद्भुत चमत्कार

(१)

एक बारकी बात है। श्रीमहाराजजी गोरहामें थे। मैं और गौरीशंकरजी उनके दर्शनोंके लिए गोरहाकी ओर चले। साँकुरा गाँवके पास पहुँचनेपर रात्रि हो गयी, अतः हम दोनों एक झोंपड़ी में सोये। रात्रिमें मुझे आवाज सुनायी दी—'अरे भाई! तुम लोग यहाँ क्यों आ रहे हो? मैं तो बाँधपर आ रहा हूँ।' वहाँ तो इस प्रकार बोलनेवाला कोई था नहीं। मैं समझ गया कि यह आवाज बाबाकी है। मैंने गौरीशङ्करको जगाया और उन्हें सब हाल सुनाया। परन्तु उन्होंने मेरी बातका विश्वास नहीं किया। हम दोनों फिर सो गये। थोड़ी देरमें मुझे पुनः यह आवाज सुनायी दी—'अरे! तुम लोग क्यों नहीं मानते? वृथा क्यों आ रहे हो? मैं तो सवेरे ही वहाँसे चल दूँगा और होलीपर बाँधपर पहुँचूँगा।' मैंने गौरीशङ्करजीसे फिर सब बात कही। परन्तु उन्होंने नहीं माना। हमलोग प्रातःकाल उठकर चल दिए और सायंकालमें चार बजे के लगभग गोरहा पहुँचे तो मालूम हुआ कि महाराजजी सवेरेही बाँधके लिए चले गए हैं। तब हमलोग भी वहाँसे लौटकर बाँधपर आए। जब श्रीमहाराजजीके दर्शन किए तो वे कहने लगे, "होलीपर मैं कभी गोरहा रहता हूँ, जो तुमलोग वहाँ गए थे? मुझे पूर्ण विश्वास है कि मुझे दोनों बार की आवाज श्रीमहाराजजीके संकल्पसे ही सुनायी दी थी।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी को आज्ञा लेकर मैं गङ्गातट को चला । उन्होंने एक कटिवस्त्र दिया था, उसे मैंने साथ ले लिया। तीसरे दिन सवेरे १० बजे अलीगढ़ पहुँचकर अचल ताल पर ठहरा । स्नान करके कटिवस्त्र ऊपर सुखा दिया और भजन करने लगा । थोड़ी देरमें हवाके झोंकेसे उड़कर वह कटिवस्त्र नीचे जल में गिर पड़ा । जब मेरी दृष्टि उसपर पड़ी तो मैं उसे उठानेके लिए चला । परन्तु उसी समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि महाराजजी रोक रहे हैं । मैं रुक गया । फिर मनमें संशय हुआ कि मुझे शायद भ्रम हो गया होगा । अतः फिर उठानेके लिए चला । किन्तु इस बार भी वैसा ही अनुभव हुआ । तब मैं उसे छोड़कर ऊपर जाकर बैठ गया । थोड़ी देर बाद मेरी दृष्टि कटिवस्त्र के नीचे पड़ी । वहाँ देखा कि एक साँप बैठा हुआ है । तब मैं समझा कि इसी कारणसे श्रीमहाराजजीने मुझे रोका था ।

(३)

श्रीमहाराजजीके ब्रह्मलीन हो जानेके पश्चात् एक दिन मैंने स्वप्नमें देखा कि वे बैठे हुए हैं । उनके पास ब्रह्मचारी श्रीकृष्णानन्दजी (श्रीगणेशजी) और चेतनदेवजी आदि कई महात्मा भी हैं । आपने चेतनदेवजीके द्वारा मुझे बुलवाया और जब मैंने समीप जाकर चरणोंमें प्रणाम किया तो बोले, "कहाँ जा रहा है ? आश्रममें क्या हो रहा है ?" मैंने कहा, ' महाराजजी!आश्रममें बड़ी हलचल मची हुई है, लोग आपके विरहमें गोपियोंकी तरह व्याकुल हैं ।" वे बोले, "मैं यहीं तो हूँ ।" ठकुरानी और गणेशजी सब प्रबन्ध करेंगे । घबड़ाओ मत । इसी प्रकार दूसरी बार भी स्वप्न में श्रीमहाराजजीने कहा था, "बेटा मैं कहीं गया थोड़ा ही हूँ ? तुम लोगोंके पास ही रहता हूँ । तुम घबड़ाओ मत ।"

एक भक्तिमती माताजी, वृन्दावन

अद्‍भुत चमत्कार

पूज्य श्रीमहाराजजीने आज तक मेरे साथ जो-जो लीलायें की हैं तथा मुझपर उनकी जैसी-जैसी कृपा रही है, वह सब स्पष्ट प्रकट करनेका न तो मुझमें साहस है और न उसकी आवश्यकता ही है। उनमेंसे जितनी बातें कही जा सकती हैं उन्हींमेंसे कुछका वर्णन किया जाता है।

(१)

श्रीमहाराजजीका साक्षात् दर्शन तो मुझे बहुत पीछे हुआ था। पहले तो वे स्वप्न या ध्यानमें ही दिखायी देते रहे। मैंने जिस दिन पहली बार आपका नाम सुना उसी दिन स्वप्नमें आपका दर्शन भी हुआ। जब मैं ग्योरा गाँव गयी तो आप प्रत्यक्ष मेरे नेत्रोंके सामने आने लगे। परन्तु अभी तक मैंने आपका साक्षात् दर्शन तो किया नहीं था, इसलिये मैं आपको पहचानती नहीं थी। आप अपना करकमल मेरे सिरपर रखनेके लिये आते तो मैं यह समझकर कि न जाने यह कौन है पीछे हट जाती थी। इसप्रकार आठ वर्ष व्यतीत हो गये।

(२)

जब मैं सेंड़ौल गयी तो मैंने यह शुभ समाचार सुना कि आप केवल एक मील दूर काजिमाबादमें पधारे हैं। यह सुनकर

मेरी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। सौभाग्यसे पड़ौसके एक भक्त आपका चरणोदक ले आये थे। मैं आतुर होकर वहाँ गयी और चरणोदक पान करके अपनेको कृतार्थ माना। वह चरणामृत पान करनेसे मेरी विचित्र अवस्था हो गयी। मुझे देहकी सुधि न रही तथा श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा मेरे हृदय में जाग्रत् हुई। मेरे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा वहने लगी। उस तन्मयावस्थामें मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि आप मेरे सामने खड़े हैं। परन्तु उस समय आपको खड़े होकर प्रणाम करनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी, अतः सोचा कि बैठे-बैठे ही चरणस्पर्श कर लूँ। परन्तु यह क्या ? आपने बड़ी विचित्र लीलाकी, उल्टे मेरे ही चरण छू लिये। मैं जब-जब उनके चरण छूती वे मेरे चरण छू लेते इसस मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने तीन दिन तक कुछ भी नहीं खाया। तीसरेदिन श्रीमहाराजजीने मेरे सामने साक्षात् प्रकट हाकर कहा—
'प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा॥'
यह कहकर आप अन्तर्धान हो गये और मैं चुप हो रही।

(३)

दूसरी रात मैंने स्वप्नमें देखा कि मैं अपने एक सम्बन्धीके साथ जा रही हूँ। उसने संकेत किया कि श्रीमहाराजजी आ रहे हैं। मेरे मनमें पास जाकर दर्शन करनेकी अभिलाषा हुई। यह सोचतेही आप मेरे बिल्कुल समीप आ गये। मैंने नम्रतासे झुककर तीन बार प्रणाम किया और श्रीमहाराजजीने मेरे सिरपर अपना कर-कमल फेरा।

(४)

दूसरे वर्ष आप पुनः काजिमाबाद पधारे। तब मुझे पण्डित किशोरीलालजीके द्वारा आपका चरणामृत और प्रसाद मिला,परंतु साक्षात् दर्शन नहीं हो सके। मुझे तो चरणामृत पान करके ही अपार हर्ष हुआ।

(५)

एक दिन अनजानमें मुझसे ऐसी भूल हो गयी कि अपनी ये अनुभवकी बातें मैंने ब्रह्मचारी गौरीशङ्करको सुना दीं। तबसे अनुभव होने बन्द हो गये। अब तो मेरी ऐसी दशा हो गयी जैसे जलके बिना मीनकी होती है। मैं मन ही मन श्रीमहाराजजी से प्रार्थना करने लगी तथा गौरीशङ्करको मन्त्र और माला लाने के लिए श्रीमहाराजजीके पास भेजा। आपने माला तो दे दी, किन्तु मन्त्रके लिए यह कहकर टाल दिया कि मिलनेपर देंगे। गौरीशंकर के द्वारा यह संदेश पाकर मुझे दुःख तो हुआ, किन्तु अनुभव उसी दिनसे फिर होने लगे। एक दिन गौरीशंकर मुझे और नानकको कल्याणका एक लेख सुना रहे थे। उसी समय पीछेसे मुझे श्री-महाराजजीकी आवाज सुनायी दी कि तुम तीनों यहाँ आओ। दूसरे ही दिन मैंने गोरीशंकरको अनूपशहर भेजा। अबकी बार विना कहे ही आपने मेरे लिये माला और पादुका प्रदान की। मन्त्रके लिए कह दिया कि जो अब तक जपती रही है वही रहेगा। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

(६)

मैं एक दिन श्रीमहाराजजीको पादुकाओंका पूजन कर रही थी। इतने में आप साक्षात् प्रकट होकर बोले, "आरती में अमुक दो स्त्रियोंको बुला लाओ।" मैं उन्हें बुला लाई। बात यह थी कि किसी विशेष कारणवश मैंने उनसे बोलना बन्द कर दिया था। आपको यह बात अच्छी नहीं लगी, अतः मुझे अमानी बनानेके लिए उन्हें बुलानेके लिए मुझे ही भेजा।

उपरामता और परीक्षा

धीरे-धीरे संसारसे मेरी उपरामता बढ़ने लगी। इससे गृह कार्योंमें शिथिलता आने लगी। अतः पण्डितजीकी ओरसे मुझे

वहुत कष्ट मिला। भयानक ताड़नायें भी मिलीं। मैं कहीं भी जा-आ नहीं सकती थी। ऐसी अवस्थामें मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा हुई। उन दिनों शरीर बहुत कृश हो गया था। बारम्बार आत्महत्या करनेकी मनमें आती थी। एक दिन आपने प्रकट होकर कहा, "सावधान तुझे अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं है। पहाड़पर धीरे-धीरे चढ़ा जाता है। घवड़ाओ मत, सब ठीक हो जायगा।" श्रीमहाराजजीकी कृपासे मुझे अनुभव होता कि वे मुझे अपनी गोदमें लिये मेरी रक्षा कर रहे हैं। अतः पण्डितजीके दिये हुए दुःख मेरे हृदयमें अधिक व्यथा नहीं पहुँचा पाते थे।

श्रीमहाराजजीके बतलाए हुए साधनका अनुष्ठान करनेसे मुझे समय-समयपर श्रीभगवान्‌के दर्शन, उनके धाम तथा लीलाके दर्शन और नारदादि ऋषियोंके भी दर्शन होते रहते थे। यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा।

श्रीमहाराजजीके साक्षात् दर्शन

अन्तमें वह शुभ घड़ी आयी जब मुझे श्रीमहाराजजीके साक्षात् दर्शन हुए। मेरे जीवन की साध पूरी हुई। अब उनके लीलासंवरणके बाद भी उनके दर्शन होते रहते हैं। उनके चमत्कार वाणीसे व्यक्त नहीं किये जा सकते। ऐसा सत्य और स्पष्ट अनुभव होता रहता है कि वे सदा पासही हैं और सारी बातें ठीक-ठाक बतला रहे हैं। यदि कोई उलझन आती है तो वे तुरन्त सुलझा देते हैं। ऐसी उनकी अद्भुत कृपा है।

—★—

पं० श्रीछविकृष्णजी दीक्षित, भिरावटी

विक्रमी सं० १९७५ की बात है। मेरी आयु उस समय ११ सालकी थी। मैं कर्णवास पक्के घाटके संस्कृतविद्यालयमें पढ़ रहा था। एक दिन खबर मिली कि मार्गशीर्ष शु० ११ को श्रीउड़िया बाबाजी पधार रहे हैं। हम विद्यार्थियोंको उनके निवासस्थानके परिष्कार का कार्य सौंपा गया। पक्के घाटके ऊजड़ भागमें एक कच्ची कोठरी थी। उसकी ऊँची-२ घास काटकर उसे लीप-पोतकर सुन्दरसे सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया गया। इस कार्यमें मैं सब विद्यार्थियोंका नायक था। यद्यपि उस समय यह कार्य भार रूप जान पड़ा था, परन्तु अब पता लगा है कि यह कितना मूल्यवान् था। बाबा ठीक समयपर अन्य चार संतोंके सहित पधारे। सायंकालके प्राय:चार बजेका समय था। भगवान् भास्कर अपनी दिनभरकी यात्रासे श्रान्त होकर पश्चिमाकाशमें ठिठके हुए थे। पूज्य बाबा भी उन्हीं के साथ पूर्व से आकर वहाँ खड़े हो गये। आपका दिव्य काषाय वस्त्र अपनी पीतकान्तिसे सूर्यकी कान्तिको और स्वयं सूर्यको भी लज्जित कर रहा था। अस्तु। सूर्यदेव तो कुछ क्षणोंमें अस्ताचलकी ओटमें छिप गये और आप कुंजके चबूतरेपर विराजे। लोगोंने स्थानके परिष्कारका प्रसंग उपस्थित होनेपर मुझे श्रीमहाराजजीके सामने प्रस्तुत कर दिया। आपने एक विचित्र कृपा दृष्टिसे मेरी ओर देखा और पास बुलाकर प्रसाद दिया। उस दृष्टि और प्रसादमें न जाने क्या जादू था—मैं कह नहीं सकता। बस,

हर समय मेरा मन उसी रूपका चिन्तन करने लगा। स्वप्नमें तो प्रायः नित्य ही उस रूपके दर्शन होते थे। कभी-अँधेरे-उजाले में ऐसा भी अनुभव होता था कि बाबा सामनेसे आ रहे हैं और मुझे बुला रहे हैं। कभी तो आवाज भी सुनाई देती थी। मैं तो सचमुच आधा पागल-सा हो गया। बाबा वहाँ केवल पाँच दिन ठहरे, परन्तु मेरी यह दशा सवा वर्ष तक रही। इसके पश्चात् बहुत दिनों तक दर्शन नहीं हुए और प्रायः दो वर्षमें मैं भी उन्हें भूल गया।

परन्तु वे मुझे नहीं भूले। इसका पता लगा सात वर्ष पश्चात् जब आप बाँधपर पधारे। उस समय वहाँ अखण्ड कीर्तन चल रहा था और भिरावटोकी पार्टीकी ड्यूटी थी। उसमें श्रीबहादुर सिंह और रणवीरसिंह आदिके साथ मैं भी कीर्तन कर रहा था। आप आकर चुपचाप खड़े हो गए। हम लोग नेत्र बन्द किए कीर्तन कर रहे थे। स्वाभाविक ही हमारे कीर्तनमें बड़ा उत्साह और आनन्द बढ़ गया। उस समय मेरे और उपर्युक्त दो व्यक्तियों के मनमें ऐसा भाव हुआ कि नामके परम रसिक श्रीसदाशिव हमारे कीर्तनमें आ गए हैं। साथ ही हमें अपने अन्तःकरणोंमें पूर्वसंस्कारानुसार श्रीशंकरजी के दर्शन भी होने लगे। यद्यपि नेत्र बन्द होनेके कारण हम तीनोंमेंसे किसीको भी आपके आने का पता नहीं था और उन दोनोंने तो पहले कभी आपके दर्शन भी नहीं किए थे, तथापि आपकी विशेष प्रसन्नताकी परिचयस्वरूप आपकी दिव्य क्रीड़ा सभीके मनोंमें होने लगी और भीतर ही भीतर कभी शिव और कभी आप दीखने लगे। यह भाव या साक्षात्कार उस समय बहुतसे कीर्तनकारोंको हुआ थोड़ी देरमें पार्टी बदली। उस समय नेत्र खुले तो सामने आपके दर्शन हुए। घुटनोंतकका कटिवस्त्र, तह बनाकर कन्धेपर डाली हुई चादर, गाढ़े अँगोछेमें, लपेट कर अण्टापर बँधी हुई एक छोटी-सी पुस्तक और हाथमें तूँबा।

कण्ठके नीचे वक्षःस्थलपर कुछ स्याहीका रङ्ग और चरण धूलि-धूसरित। नेत्र बन्द होनेपर भी हम सब शिवरूपमें इसी मूर्तिका दर्शन कर रहे थे। अब अकस्मात् नेत्रोंके सम्मुख देखकर सबके सब चरणोंसे लिपट गये। इस समय अपने बालकोंको अपने प्राणाधार भगवन्नाममें तल्लीन देखकर आप भी न जाने कितने आनन्दमग्न थे। ऊपरसे अवश्य मन्त्रमुग्धकी तरह खड़े थे। परन्तु आपको भी चेत तभी हुआ जब कुछ देर हम सब चरणोंसे लिपटे रहे। फिर कुछ दूर चलकर बैठ गये और एक-२ के विषयमें पूछकर सबका परिचय प्राप्त किया। मुझे तो देखते ही ऐसा पहचाना मानो सदा की जान-पहचान है। कर्णवासकी भी याद दिलायी। मैं तो बचपन के कारण भूल चुका था, परन्तु वे कैसे भूलते। सब लोगों ने प्रार्थना की तो आपने भिरावटी आनेका भी वचन दिया। इसके पश्चात् ७ दिन बाँधपर रहकर भिरावटी पधारे और ११ दिन चौधरी बहादुरसिंहके मकानके चौबारेमें विराजे। अब तो गाँवके सभी लोग कृतार्थ होगये और फिर कभी आपको नहीं भूले।

जबसे शिवरूपमें आपका दर्शन हुआ तबसे मेरा और चौधरी बहादुरसिंहका यह नियम रहा है कि श्रावण और फाल्गुन मास की कृष्णा चतुर्दशियों पर आप जहाँ भी हों वहीं जाकर हरिद्वार से लाए हुए गङ्गाजलद्वारा आपका अभिषेक और पूजन करें। इसके लिये कई बार हमें बहुत खोज भी करनी पड़ी है। एक बार बहुत प्रयत्न करने पर भी हमें आपका पता न लग सका। तब उसी मासकी शुक्ला चतुर्दशीपर आप स्वयं पधारे और कहा, "बेटा! लो, आज ही शिवरात्रि है।" बस, तभी आपका पूजन किया गया। उसके पश्चात् ऐसा कभी नहीं हुआ जो इन तिथियों पर हमें आपका पता न लगे। एक बार आप फर्रुखाबादमें थे। हम दोनों शिवरात्रिपर वहाँ पहुँचे। किन्तु आप कुछ और ही लीला कर रहे थे। आपने किसी दीन भक्त का रोग अपने ऊपर

लिया हुआ था और उस समय आपको १०६ डिग्री ज्वर था। सिविल सर्जनने उठनें तकको मना किया हुआ था, केवल एक आदमी ही पास रह सकता था और जलके सिवा कोई दूसरी चीज आप ले नहीं सकते थे। हम लोग पहुँचे तो यह सब प्रतिबन्ध देखकर कुटीके बाहर ही खड़े रह गये। आपने न जाने किस प्रकार हमें देख लिया। बस, झट बाहर निकल आए और हमें बागके दूसरे किनारेपर जानेका संकेत कर दिया। हम वहीं चले गए और थोड़ी देरमें आप भी घूमते-फिरते वहाँ आ गये। साथमें जो आदमी था उसे तो किसी बहानेसे पानी लेनेके लिए भेज दिया और बोले, "तुम अभी पूजन कर लो।" हम तो डर रहे थे, परन्तु आपने स्वयं कह-कहकर बड़े आनन्दसे पूजन कराया, गङ्गाजल पिया और भोग भी लगाया। इतने ही में वे भक्तमहाशय जल लेकर आ गये। हम उन्हें देखकर डरे, परन्तु वे तो यह सब लीला देख चुके थे। वे हम पर बिगड़ने लगे तो आपने उन्हें डाँटते हुए कहा, "अरे! तू! उल्लू है और तेरा डाक्टर भी उल्लू है। मैं बिलकुल बीमार नहीं हूँ, देख मेरी नब्ज और बुला ले डाक्टर को।" डाक्टरने आकर देखा तो सचमुच ही आप निरोग थे। फिर आप उक्त भक्तसे कहने लगे, "तू इन बालकों पर बिगड़ता है, मैं तो कलसे इनका रास्ता देख रहा था। अब देख मैंने हरिद्वारका गङ्गाजल पी लिया है, मैं ठीक हो गया; देखा तूने हरिद्वारके गंगाजलका प्रभाव।" वे तो अवाक् रह गए। हम भी बैठे सोच रहे थे कि यह गंगाजलका प्रभाव है या स्वयं इनका। यदि जलका ही प्रभाव है तो दूसरे लोग इस प्रकार गङ्गाजल पीकर क्यों नीरोग नहीं हो जाते। पर यह सोचकर चुप रहे कि शिवके लिए गङ्गा बड़ी हैं और गंगाके लिए शिव। 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' बड़ोंका खेल बड़े ही जानें; हमारे लिए तो दोनों ही बड़े हैं।

इस प्रकार हमारा यह नियम बराबर अक्षुण्णरूप से चलता

रहा। अन्तिम वर्ष जब हम पूजाके लिए वृन्दावन गए तो आप अस्वस्थ थे, अतः लोगोंने पूजाके लिए आपत्ति की। कुछ ऐसा वातावरण बना हुआ था कि आग्रह करनेसे संघर्ष पैदा हो सकता था। हमें किसीकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम करना उचित नहीं जान पड़ता था। आपने भी परिस्थिति अथवा भविष्यका विचार करके आज्ञा दी कि चौकीपर चित्र और पादुकायें रखकर पूजन कर लो। अतः 'ईश रजाय शीश सबही के।' यही ठीक मानकर हमने उसी भावसे चित्र और पादपीठका पूजन किया। पास ही आप की पादुकायें थीं। हमें तो उस पूजनमें भी वैसा ही आनन्द मिला। हमारी दृष्टिमें तो उस समय भी चौकीपर स्वय सदाशिव ही विराजमान थे। पीछे आपने हमें अपनी कुटामें बुलाया और वहाँ पुनः पूजा करायी, स्वयं भोग लगाया और हमें भी प्रसाद दिया। यह हमारे लिए भावी पूजाक्रमका संकेत था. क्योंकि उसके ठीक एक मास पश्चात् आप हमारी आँखोंसे ओझल हो गये। अब इसी क्रमसे पूजन होता है। यों तो आप सदा सर्वत्र हैं और कभी-२ कृपा करके दर्शन भी देते हैं. परन्तु अन्तर इतना है कि पहले तो जब हम चाहते थे तभी दर्शन होते थे और अब जब आपकी इच्छा होती है तब दर्शन देते हैं। खैर, ठीक है। 'राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।'

भिरावटी आप कई बार पधारे थे और ५-७ दिन से लेकर २ ३ मास तक एक-२ बारमें निवास किया था। वह सुख हम वर्णन नहीं कर सकते। आज केवल उसकी स्मृतिही शेष है। एक बार बहादुरसिंहके मकान पर ही आप ठहरे हुए थे। सेवामें मैं तथा १-२ निजजन ही थे। एक दिन प्रातःकाल आप जङ्गलमें जाकर एकान्तमें बैठ थे, बोले, "अरे! दर्शन क्या चीज है, कुछ नहीं। बड़ी बात तो यह है कि जब इच्छा हो तभी दर्शन हो जायँ। और

इससे भी बढ़कर यह है कि दर्शन करके हम अपनेको और जिसके दर्शन हों उसको भी भूल जाँय।" हम लोगोंने जब दर्शन की इच्छा प्रकट की तो बोले, "अच्छा, नेत्र बन्द करके बैठ जाओ।" आप भी नेत्र मूँदकर बैठ गये। हमने देखा कि आपके स्वरूपमेंसे एक दिव्य कान्ति निकली और आपका स्वरूप बदलकर शिवरूप हो गया। फिर वह क्रमशः राम, कृष्ण और हमारे महाराजजी (श्रीहरिबाबाजी) के रूपमें बदला। हम यह सब देखकर घबड़ा गये और हमारे नेत्र खुल गये। तब भी हमें इसी प्रकारका दृश्य दीखता रहा। तब हम स्तुति-प्रार्थना करने लगे और कुछ भय-भीत-से हो गये। इसपर आपने हँसकर कहा, 'अरे! ध्यान करते हो या स्तुति।" फिर पुचकारते हुए बोले, "बेटा! डर गए, डरो मत।" पीछे आपने बहुत प्रयत्न किया कि हम उस बात को भूल जायँ और कहा, "किसीने तुम्हें डरा दिया, यह जङ्गल है न। डरो मत। बैठो, ध्यान करो।" परन्तु अब कैसा और किसका ध्यान करते। हमारे सामने तो आप प्रत्यक्ष विद्यमान थे। प्रत्यक्ष को छोड़कर अब आँखें क्यों मूँदे। भेद तो सब खुल ही गया था। इसी झगड़ेमें १२॥ बज गये और हम सब गाँव में लौट आए। इसी प्रकार और भी आपकी अनेकों लीलाएँ हमने तथा दूसरे लोगोंने देखी हैं।

उस दिनके पश्चात् हम लोग आपसे कोई भी बात छिपाते नहीं थे। घरकी, बाहरकी, देशकी सब प्रकारकी अच्छी-बुरी बातें हम एकान्तमें पूछते थे। साधनकी बात पूछनी होता तो सबके सामने पूछ लेते। आपने देश और हमारे भविष्यके विषय में जो-जो बात बतायीं वे सब ज्योंकी त्यों होती जा रही हैं। हम जब कभी आपके दर्शनोंको जाते १५ मिनट मेरे और १५ मिनट बहादुरसिहके लिए बँधे हुए थे। उस समयमें एकान्त में ये ही सब बातें होती थीं। हमें कोई कठिनाई होती और उनसे कह देते

तो वहाँसे लौटते ही वह हल हो जाती थी, हमें उसके लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। उनकी कृपासे हमें तो मानो प्रकृति अपने अधीन जान पड़ती थी। इतनी उदारता और कोमलता देखना तो दूर हमने संसारमें कहीं सुनी भी नहीं। आपका यह सदाका नियम था कि कितना ही प्रसाद आ जाय रात को बाकी नहीं रखते थे। वस्त्रकी भी ऐसी बात थी कि स्वयं तो सामान्य ही वस्त्र धारण करते, किन्तु यदि कोई उत्तम वस्त्र भेंटमें आ जाता तो उसे किसी अत्यन्त सामान्य पुरुषको बुलाकर बिना माँगे स्वयं ही दे देते थे। और कहते, 'अरे ! ले जा, ले जा, यह तेरे ही लिए रख छोड़ा था। जल्दी ले जा, कोई देखेगा तो कहेगा क्या बात है।"

एक बार भिरावटीसे कर्णवासको चले। केवल मैं ही साथ था गङ्गाजीपर पहुँच गये, किन्तु रास्ता छूट गया था। कुछ सचमुच छूटा और कुछ जानकर छोड़ दिया। घाट वहाँ से बहुत दूर था। आपने कहा, "यहाँ थोड़ा ही जल है, ऐसे ही पार कर लें।" बस, घुस पड़े। आप आगे और मैं पीछे। जल सचमुच कमर से नीचे हा रहा। एक आदमी दूर से भागकर आ रहा था और पुकार-पुकारकर कर रहा था—"अरे डूब जाओगे, यहाँ अथाह जल है।" परन्तु आपने उसकी एक न सुनी। जबतक वह आया हम गङ्गा पार कर चुके थे। चौथे दिन मैं घरको चला तो सोचा, उसी रास्ते चलें। परन्तु जब गङ्गा पार करने लगा तो जल सचमुच अथाह था और अनेकों मगर उछल रहे थे। वहाँसे डेढ़ मील लौटकर घाट पर गया तब घर पहुँचा।

एक समय बाँधपर मैं और बहादुरसिंह गंगास्नानको गए। उधरसे पं० सुन्दरलालजी स्नान करके आ रहे थे। सोचा यहीं स्नान कर लें। बस, हम गंगाजीमें घुस गए। वहाँ जबरदस्त कुण्डा था। पण्डितजीका घाट हमसे छूट गया था। एक-दो बड़े-२ मगर

भी दिखायी दिये। हम डर गए। किनारे पर देखा तो आप खड़े हैं। हँसकर बोले, "अरे! डरते क्यों हो? खूब स्नान करो।" हमने अच्छी तरह स्नान किया और नित्यकर्म भी। आप तो चले गये। पीछे हम ढायपर चढ़े तो देखा वहाँ दस-बारह मगर पड़े मुँह फाड़ रहे हैं। सचमुच उस दिन हमारी मृत्यु ही थी। हमारी रक्षाके लिये ही आप पधारे थे। हमने बाँधपर आकर आपको सब बातें सुनायीं तो आप हँस दिये और कहा, "बेटा! अब वहाँ मत जाना, वह स्थान अच्छा नहीं है।"

ऐसी अनेकों लीलायें हमने इन नेत्रोंसे प्रत्यक्ष देखी हैं, कहाँ तक लिखें। हमारी दृष्टिमें वे प्रत्यक्ष कामारि श्रीसदाशिव ही थे। हम कलियुगी जीवोंपर दया करके हमें कृतार्थ करने के लिए ही पधारे थे, अथवा सदाकी भाँति परमप्रिय श्रीहरि की लीलाओं का रसास्वादन करनेके लिए प्रादुर्भूत हुए थे। अब सब कुछ देख कर और दिखाकर हमारे सुकृत पूर्ण हुए जानकर सदा सर्वत्र विराजमान रहते हुए भी अपने निजधामको पधार गए। मनमें अब यही आशा और अभिलाषा है कि देखें कब दर्शन होते हैं; सो सब भक्तजनोंकी कृपापर ही निर्भर है; अपना तो न कोई बल है, न योग्यता है।

श्रीरामेश्वरप्रसादजी, गवाँ (बदायूँ)

पूज्य बाबाकी बड़ी प्रसिद्धि थी। मैं भी उनका नाम सुना करता था। अनूपशहरवाले सेठ रामशङ्करजी बाबाके पास जाया करते थे और मुझसे उनके गुणोंको प्रशंसा किया करते थे। सन् १९२६ या २७ के लगभग श्रीरामनवमीके उत्सवपर बाबा बाँधपर पधारे। तभी मैंने उनका प्रथम दर्शन किया। उस समय मेरे मन पर उनके इस गुणकी सबसे अधिक छाया पड़ी कि वे सबसे प्रेमसे मिलते थे। उनके प्रेममय व्यवहारसे चित्त आकर्षित होता था। फिर तो बाँधके अतिरिक्त रामघाट, कर्णवास आदि अन्य स्थानों में भी, जहाँ वे होते वहाँ उनके दर्शनार्थ जाने लगा। उत्सवों के अवसर पर श्रीमहाराजजी (श्रीहरिबाबाजी) बाबाको बुलाने के लिए मुझे भेजते थे।

बाँधके उत्सवोंपर जब-जब बाबा पधारते उनके परिकर के भोजनकी सेवा मेरी होती थी। मैं तो केवल सामान मँगाकर उनके भक्तोंको सोंप देता था। शेष सारा प्रबन्ध बाबा स्वयंही करते थे। वे स्वयंही सबकी देखरेख रखते थे। बाँधके उत्सवोंपर कभी-कभी बाबा दो दो तीन-तीन महीने विराजते थे। परन्तु प्रबन्धके कामोंसे अवकाश बहुत कम मिलता था; इसलिये मैं बाबाके पास निश्चित होकर थोड़ी देर भी नहीं बैठ पाता था। बाबा स्वयं ही मेरे पास चले आते और हरेक बात पूछते कि क्या प्रबन्ध करना है और क्या नहीं करना है। इससे उनके चरणोंकी छत्रछायामें मुझे

इतना आनन्द रहता कि रात-दिनका भी कोई ध्यान नहीं था। कैसी भी चिन्ताजनक स्थिति हो बाबा कहते, 'अरे ! तू क्यों चिन्ता करता है ? तेरा अकल्याण कभी नहीं हो सकता।" उनके श्रीमुख से ये शब्द सुनकर मैं निश्चिन्त हो जाता था।

बाबा बहुत व्यवहारकुशल थे। घर-बारकी स्थितिके विषयमें भी वे पूरी जानकारी रखते थे। वे दूसरेकी रुचि और स्थितिका इतना ध्यान रखते थे कि उन्होंने मुझसे कभी कोई ऐसी बात कही ही नहीं जिसे मैं न कर सकता। वे अनुकूलता-प्रतिकूलता, रुचि-अरुचि और सामर्थ्य आदिको देखकर ही कोई बात कहते थे। इधर मेरे महाराजजीका फौजी आर्डर होता था, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती थी। उन्हें भी मिलने-जुलने के लिये फुरसत नहीं और बात करने का समय नहीं।

एक बार बाँधका उत्सव समाप्त होने पर बाबा बाँधसे चलकर बेले (गङ्गाजीकी रेती) में डट गए और दस-बारह दिन तक वहीं रहे। उनके साथ अनेकों भक्त भी थे। वैशाख का महीना था। उस भीषण गर्मीमें भी वे झाऊके नाचे रहा करते थे। उन दिनों मैं प्रातःकाल एक-दो बजे उटता। बाबाकी भक्तमण्डलीके लिए भोजन तैयार कराता। सूर्योदय होते-होते हथिनीपर सारा सामान रखवाकर चल देता और आठ बजे के लगभग बाबा के पास पहुँच जाता। फिर दिनभर वहीं रहता। कथा, कीर्तन और सत्सङ्ग सुनता तथा शामको पाँच बजे वहाँसे लौट आता। कभी-कभी रातमें ऐसी लीला होती कि भक्तोंकी चाँदीकी कटोरियोंको सियार झाऊओंमें घसीटकर ले जाते। सबका समय बड़े आनन्दसे बीतता था।

बाबाका महाराजजीसे अत्यन्त प्रेम था। वे सदैव इनकी रुचिका ध्यान रखते थे। इनकी आखें देखते रहते थे। जरा भी

कीर्तनमें शिथिलता देखी कि फौरन पूछते, "क्या बात है ? बाबा प्रसन्न हैं या नहीं ? पूछो।" वे अनेकों प्रोग्राम तो केवल श्रीमहाराजजीकी प्रसन्नताके लिए रखते थे। हम लोग तो केवल प्रेम-२ कहा करते हैं, प्रेम करना जानते नहीं। सच्चा प्रेम तो बाबा और महाराजजीका ही देखा। एक बार किसी कारणवश बाँधके उत्सवपर पहुँचनेमें बाबाको कुछ देरी हो गयी। बस, महाराजजी रूठ गए। बोले, "भैया ! अब उत्सव करके क्या करना है ? बाबा तो आए नहीं। उत्सवमें उत्साह नहीं रहा।" इत्यादि। बाबा ने आकर महाराजजीको बहुत मनाया और दूसरे वर्ष उत्सव में महाराजजीसे भी पहले पहुँचकर उन्हें प्रसन्न कर लिया।

बाबा बहुत ही उच्चकोटिके संत थे। वैसे तो महाराजजी के अतिरिक्त मेरा हर किसीके प्रति आकर्षण नहीं होता; परन्तु बाबाके प्रति मेरा पूरा आकर्षण था। उसका एक यह भी कारण था कि वे मुझपर बहुत ही प्यार रखते थे।

एक बार मेरी पत्नीको क्षयकी बीमारी हो गयी। बरेली में चिकित्सा हो रही थी। डाक्टरोंने रोगको भयानक बताया और परामर्श दिया कि इस वर्ष पहाड़ पर ले जाना चाहिए। परन्तु मेरी हार्दिक इच्छा थी नहीं। उन्हीं दिनों एक रात्रिको स्वप्नमें मुझे बाबा और महाराजजीने दर्शन देकर कहा, "कोई चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जायगा।" उसके पश्चात् स्वाभाविक ही भुवाली सेनीटोरियम के डाक्टर आए। उनकी दवासे तीन-चार दिनमें ही रोग ठीक हो गया। मुझे जब कभी स्वप्नमें बाबा का दर्शन हुआ है साथमें श्रीमहाराजजी भी अवश्य रहे हैं।

श्रीप्रेमवल्लभजी एडवोकेट, रामपुर

प्रथम दर्शन

सन् १९३३ में मैं चन्दौसी कालेज में एफ० ए० में पढ़ रहा था। उस समय साधारण अँग्रेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी तरह ही मेरा जीवन था। हमारे हिन्दीके अध्यापक थे पं० श्रीभगवानदासजी शास्त्री। वे धार्मिक व्यक्ति थे। उनके सत्संगसे मुझमें आध्यात्मिक प्रवृत्ति जाग्रत हुई और ऐसी तीव्र आकांक्षा होने लगी कि मुझे कोई ऐसे उच्चकोटिके महापुरुष मिलें जिनकी कृपा से मेरा जीवन बदल जाय और मैं भजन-साधनमें प्रवृत्त हो आत्म-कल्याण प्राप्त कर सकूँ। मेरी धारणा थी कि जब तक किन्हीं महा-पुरुषका संरक्षण प्राप्त न हो भजन-साधनमें निर्विघ्न प्रगति होना कठिन है। हाँ, यदि कोई महापुरुष अपना लें तो अवश्य प्रगति हो सकती है। पं० भगवानदास तथा पं० याज्ञेश्वरप्रसाद आदि चन्दौसीनिवासी भक्तगण श्रीमहाराजजी की चर्चा और प्रशंसा किया करते थे, जिसे मैं बड़े चावसे सुनता था। इससे मेरे हृदयमें श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठा जाग्रत हुई। सौभाग्यसे मैंने सुना कि बाबा अलीगढ़के महोत्सवमें पधार रहे हैं। चन्दौसी के भक्तगढ़ वहाँ जा ही रहे थे, उन्हींके साथ अपनी मित्रमण्डलीके सहित मैं भी हो लिया। अलीगढ़ पहुँचनेपर मैंने देखा कि वहाँ एक बागमें अनेकों भक्तोंसे घिरे श्रीमहाराजजी विराजमान हैं। उनके पास पहुँचकर मैंने न तो उन्हें प्रणाम किया और न कुछ

बोला ही, केवल निर्मिमेष नेत्रोंसे उनकी ओर देखता रहा और आश्चर्य तो यह कि वे भी उसी प्रकार एक टक दृष्टिसे मुझे देख रहे थे। प्रायः एक मिनट तक यही स्थिति रही। उस समय मुझे स्पष्टतया अनुभव हो रहा था कि मानो ये मेरे चिरपरिचित हैं और इस प्रकार मुझे अपना रहे हैं। उसके पश्चात् मैंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

अलीगढ़में तीन-चार दिन ठहरकर मैं महोत्सव के दर्शन करता रहा। बाबाके दर्शन, सम्भाषण और उपदेश श्रवणका लाभ मिलता ही था। किन्तु परीक्षा समीप ही थी, इसलिये मुझे चन्दौसी लौटनेकी भी जल्दी थी। अतः पूज्य बाबासे मैंने अपने लिए भजन-साधन बतलाने की प्रार्थना की। उन्होंने दो मिनट मुझे एकान्तमें अवसर दिया और भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना, उन्हीं का ध्यान और महामन्त्र का जप करने का आदेश दिया। उसके पश्चात् मैं आज्ञा लेकर चन्दौसी चला आया।

श्रीमहाराजजीके तीन-चार दिनके सम्पर्कसे ही मेरे जीवनमें अद्भुत परिवर्तन हुआ। इससे पूर्व मैं बहुत खाता था, बहुत सोता था, दिनभर साथियोंमें बकवाद किया करता था और पढ़ता लिखता बहुत कम था। परन्तु अब यह सब बदल गया। मैं एक समय भोजन करने लगा, रातको केवल दूध पीता;उससे नींद स्वतः कम हो गयी। साथियोंसे बात बनाना छूट गया और एकान्तमें रहकर भजन करने लगा। भजन-साधनमें मेरी रुचि जोरोंसे बढ़ने लगी। मेरे इस महान् परिवर्तनको देखकर मेरे अध्यापक और सहपाठी आश्चर्य करते थे। कई बार तो मैं एक लाख नामजप पूरा करके ही किसी अन्य कार्यमें लगता था। अब छात्रावास के वातावरण में रहना भी असह्य हो गया। अतः एकान्तमें एक कोठरी लेकर रहने लगा।

परीक्षामें असफलता

तीन-चार महीने बाद मैं श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ कर्णवास गया। इस साल मैं एम० ए० की परीक्षामें अनुत्तीर्ण रहा। बाबाने देखते ही कहा, "क्यों प्रेम ! तू फेल हो गया ?"

मैं—हाँ, महाराजजी।

बाबा क्यों ?

मैं - महाराजजीकी कृपासे।

बाबा—इसमें क्या कृपा है ?

मैं—यदि मैं पास हो जाता तो मुझे पढ़नेके लिये इलाहाबाद जाना पड़ता। तब बार-बार आपके दर्शन और सत्संग का सौभाग्य नहीं मिल सकता था। चन्दौसीसे तो कर्णवास रामघाट आदि पास ही हैं। यहाँ बार-बार आपके दर्शन होते रहेंगे।

यह सुनकर बाबा हँस पड़े। उस साल मैं चन्दौसीमें ही रहा। अब भजनमें तो खूब मन लगता था। परन्तु पढ़ना-लिखना कठिन हो गया था। परीक्षाके दिन समीप आनेपर मैं फिर बाबाके पास गया। बोले, 'अब तू ठीक है। जा, पास हो जायगा।" मैंने परीक्षा दी और मैं पास हो गया।

इलाहाबाद में

(१)

अब आगे पढ़नेके लिये मुझे इलाहाबाद जाना पड़ा। वहाँ भी वही दशा रही। पढ़नेमें मन बिलकुल नहीं लगता था, परन्तु मानसिक जप निरन्तर चलता रहता था। प्रोफेसर आकर पढ़ा जाते, परन्तु मुझे यह ध्यान नहीं रहता था कि क्या पढ़ा गए हैं। नयी बात यह हुई कि अब आत्मजिज्ञासा भी उत्पन्न हो गयी थी। 'मैं कौन हूँ यह प्रश्न खड़ा हो गया, परन्तु समाधान कुछ होता नहीं था। सारा संसार मृत्युके मुखमें पड़ा दिखायी देता था।

इसी समय अर्धकुम्भीके अवसरपर श्रीमहाराजजी झूसी पधारे। मैंने जाकर दर्शन किये। उन्होंने मेरे मनोगत भावों को जान लिया और मेरे प्रति अपार प्रेम प्रदर्शित किया। एकान्तमें प्रायः हृदयसे लगा लेते थे। मैं उनके वेदान्तसम्बन्धी सत्सङ्गमें भी सम्मिलित होने लगा। यदि मैं न होता तो बाबा मुझे बुलवा लेते थे। परन्तु मैं उनसे पूछता कुछ नहीं था। वे मेरे मनके विचारोंको जानकर स्वयंही मेरा समाधान कर देते थे। इस प्रकार मेरी शङ्कायें मिटती जाती थीं। वे मेरी हार्दिक स्थिति जानने में पूर्ण समर्थ थे। जब वे प्रयागसे काशी जाने लगे तो मैं भी साथ चलने को उद्यत हुआ। परन्तु उन्होंने रोक दिया। कहा कि तेरी परीक्षाका समय है। मैंने कहा, 'मैंने कुछ पढ़ा ही नहीं है और न मेरा मनही पढ़नेमें लगता है, परीक्षा क्या दूँगा ?" तब बोले, "बी० ए० तो पास हो ही जायगा। आगे देखी जायगी।" मैं उनके आदेश से रुक गया। परीक्षा दी और पास भी हो गया। परन्तु कैसे हुआ—यह वे ही जानें। मैं तो इसमें उनकी ही कृपा मानता हूँ।

अनेकों वार ऐसी घटनायें भी हुईं कि मैं इलाहबाद से श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ आता और वे मेरे पहुँचनेसे पूर्वही किसीसे कह देते," प्रेम आ रहा है, उसके लिए रोटी रख देना।" पहुँचनेपर पता लगता कि अरे! अभी थोड़ो देर पहले बाबा कह रहे थे कि प्रेम आ रहा है, रोटी रख देना, सो सचमुच तुम आ गये !

(२)

श्रीमहाराजजीकी कृपासे मेरे अनेकों दुर्गुणोंकी निवृत्ति हुई और भजनमें प्रवृत्ति। मेरे जीवनमें महान् परिवर्तन हुआ और वेदान्त विचार द्वारा शान्ति मिली। मुझे जो कुछ भी मिला है उन्हींकी कृपासे मिला है। और किसीमें मेरा गुरुभाव नही हुआ।

मैंने दर्शन तो अनेकों सन्तों के किये हैं, परन्तु आनन्दका जैसा विलक्षण प्राकट्य बाबा में देखा वैसा अन्यत्र देखनेमें नहीं आया।

सन् १९३७ में मैं बीमार पड़ गया था। चौबीसों घटे ज्वर बना रहता था। परन्तु दवा-दारू मैंने कुछ नहीं की। केवल एकांत में पड़ा रहता था। एक दिन मध्याह्नोत्तर ३-४ बजे कुछ तन्द्रा-सी आ गयी। उस अवस्थामें मैंने देखा कि बाबा सामने खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं, "तू शरीरसे पृथक् है, शरीरका द्रष्टा है। शरीरमें पहले ज्वर नहीं था, अब है और आगे भी नहीं रहेगा। तू तो इन सारी अवस्थाओं का साक्षी है।" इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गए। उसके पश्चात् बिना दवा किये उस आनन्दकी स्थितिमें ही ज्वर निःशेष हो गया।

(३)

सन् १९३७ की ही बात है। मैं इलाहाबादमें पढ़ रहा था। एक दिन मैंने स्वप्नमें देखा कि बाबा आये और मैं उनके साथ हो लिया। वे आगे-आगे चले और मैं पीछे-पीछे। हम दोनों एक पहाड़पर बहुत दूर तक चढ़ते चले गये। एक स्थानपर एक शिला थी, वहाँ पहुचनेपर बाबाने उसे हटाया और उसके नीचे गुफामें प्रवेश किया। पीछे-पीछे मैं भी गया। वहाँ एक महात्माके दर्शन हुए। उनसे बाबाकी वेदान्त-चर्चा होने लगी। आश्चर्य की बात यह थी कि उन दोनों में वे ही प्रश्नोत्तर होते थे जो मेरे मनकी शंकायें थीं। मैं मनही मन सोच रहा था कि ये ही शंकायें तो मेरे मनमें भी थीं। इस प्रकार मेरे मनको एक-२ गुत्थी सुलझती जा रही थी। अन्तमें जब बाबा उठकर चले तो मैंने पूछा, "बाबा ! ये कौन महात्मा थे ?" उन्होंने कहा, 'याज्ञवल्क्य ?' इसी प्रकार दूसरे दिन भी मैं बाबा के साथ एक दूसरे महात्माके पास गया और वहाँ भी बाबासे उनके वे ही प्रश्नोत्तर हुए जो मेरे मनकी

शंकायें थीं। उनके विषयमें मैंने पूछा तो बाबाने बताया, "ये वशिष्ठ हैं।" यह क्रम कई दिनों तक चला। इस प्रकार स्वप्नमें ही अनेकों दिन मुझे संतसमागम प्राप्त हुआ और उससे मुझे बड़ी शान्ति मिली।

रामपुर में

इलाहबाद से एल० एल० बी० पास करके मैंने रामपुर में वकालत आरम्भ की। एक बार ऐसा हुआ कि पाँच-सात दिनों तक कचहरीमें कोई काम न होनेके कारण मैं बाबाके दर्शनार्थ चला आया। रामपुर हाईकोर्ट में अपीलमें मेरा एक मुकदमा था। उसकी तारीखसे एक दिन पहले लौटनेके लिये मैंने बाबासे आज्ञा चाही। परन्तु आपने कह दिया. "नहीं, मत जाओ सब ठीक हो जायगा।" मैं प्रायः पन्द्रह दिनों तक रह गया। जब लौट कर रामपुर आया तो मालूम हुआ कि मेरी अनुपस्थितिमें जज साहब ने स्वयं मेरी ओर से बहस की और मैं मुकदमा जीत गया हूँ।

निर्वाणके पश्चात् अब भी अनेकों वार स्वप्नमें बाबा के दर्शन हुए हैं। वे मुझे प्रायः वेदान्त सम्बन्धी उपदेश ही करते हैं।

पं० श्रीशोभारामजी शर्मा, प्रिंसिपल, इण्टर कालेज, दादरी

पूज्यपाद बाबाका साक्षात् दर्शन करनेसे पहले मैंने उन्हें स्वप्नमें देखा था। आध्यात्मिक ज्ञानपिपासाकी शान्तिके लिये मैं किसी महापुरुषके दर्शन करना चाहता था। इसी उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये पं० श्रीभूदेव शर्मा प्रिंसीपल एम. ए. कालेज, बबराला मुझे श्रीअच्युतमुनिजीके पास ले जा रहे थे। अथवा यों कहिये कि मैं ही उनके साथ जा रहा था। ऐसी विचित्र बात हुई कि प्रस्थानके दिन ही प्रातःकाल मैंने स्वप्नमें देखा कि श्रीगंगाजी के किनारे उज्ज्वल रेतीमें पूज्य बाबा विराजमान हैं। भक्तमण्डली उन्हें चारों ओर से घेरे बैठी है और वे मुझसे कह रहे हैं, "तू उधर कहाँ जा रहा है ? इधर आ।" इसके पश्चात् मेरी निद्रा खुल गयी। स्वप्न तो भंग हो गया, परन्तु मुझे उसकी पूरी स्मृति थी। मेरा चित्त बाबाकी ओर आकर्षित हो गया। विचारधारा बदली और साथ ही गन्तव्य स्थान बदल गया। यद्यपि हम दोनोंका प्रस्थान एक ही कालमें एकही साथ हुआ, तथापि वे अच्युत मुनिजीके पास गये और मैं कर्णवास बाबाके पास पहुँचा। जाकर ठीक वही सब दृश्य देखा जो स्वप्नमें देखा था। वही गंगाजीकी उज्ज्वल रेती, चारों ओर बैठी हुई भक्तमण्डली और उसके मध्यमें काषायवस्त्र धारण किये पूज्य बाबा। उनका मुखमण्डल ब्रह्मज्ञानके तेजसे देदीप्यमान था।

बाबाका दर्शन करके चित्त प्रसन्न और गद्गद् हो गया। जब मैंने प्रणाम किया तब बाबा बोले, "अरे भैया ! अब तक तू कहाँ था ? मैं तो तुझे बहुत दिनोंसे याद कर रहा था।" इससे मुझे और भी अधिक प्रसन्नता हुई। बाबाने इस प्रकार मुझपर कृपा की और अन्ततक विशेष कृपा रखी। यही उनका प्रथम दर्शन था। इसके बाद अनेकों बार जब जहाँ वे होते मैं उनके दर्शनोंके लिये जाता, उनके सत्संगसे लाभ उठाता और उनकी छत्रच्छायाका अनुभव करता था।

पहले बहुत वर्षों तक मैं दुग्धपान और फलाहार किया करता था। अन्न नहीं खाता था। ऐसा कई बार हुआ कि बाबा के पास मिष्ठान्न और फल दोनों आये हैं। वे मिष्ठान्नको तो बाँट देते और जब कोई पूछता, "महाराजजो ! ये फल रखे हैं" तो कह देते—"इन्हें रख दे, शोभाराम आता होगा" और उसके थोड़ी देर पश्चात् ही मैं पहुँच जाता। वे दूरदर्शन सिद्धि द्वारा पहले ही जान लेते थे कि कौन मेरे पास आ रहा है, और तद-नुसार व्यवस्था कर लेते थे।

एक बार मैंने बाबासे प्रार्थना की कि आपके पास हजारों लोग आते हैं। आप किसी ऐसी संस्थाका निर्माण करें जिससे लौकिक क्षेत्रमें उन्नति और कोई विशिष्ट कार्य हो। परन्तु बाबाकी रुचि तो अध्यात्म विद्याकी ओर ही अधिक थी। अतः उन्होंने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। परन्तु उनकी कृपा से मेरी तो परमार्थज्ञान और लौकिक अभ्युदय दोनों ही की आकां-क्षायें पूर्ण हो गयीं।

बाल्यकालमें जब मैं पढ़ता था मेरी इच्छा एम० ए० पास करने की थी। मैं बाबाके पास था, उस समय लोग मुझे बुलाने के लिये आये। तब बाबाने उनसे कह दिया, "तुम लोग जाओ। यह एम०ए० पास करेगा।" उनके वचन सत्य हुए, मैंने एम० ए०

पास कर लिया। अध्ययनकालमें मैं अपने अलमस्त स्वभाववश खेतोंमें या नहरके किनारे यों ही पड़ा रहता था। परीक्षाके दिन समीप आजाने पर भी विशेष ध्यान नहीं देता था। उस समय स्वप्नमें या तन्द्रावस्थामें देखता बाबा कह रहे हैं, "यों क्यों पड़ा है ? उठ खड़ा हो, परीक्षाके दिन सिरपर हैं। देख अमुक पर्चे में अमुक-२ प्रश्न आयेंगे, उन्हें तैयार कर ले।' बस मैं उठ कर उन प्रश्नोंके उत्तर याद कर लेता। आश्चर्य की बात यह होती कि उस पर्चेमें ठीक वे ही प्रश्न आते और मैं पास हो जाता।

अन्य लोग प्रायः सत्सङ्गमें बैठकर बाबासे प्रश्नोत्तर करके शंका-समाधान करते थे परन्तु मैं कभी उनसे कोई प्रश्न नहीं करता था। मुझे जो कुछ पूछना होता उसका उत्तर वे सर्वदा स्वप्नमें ही दे दिया करत थे। गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वका उपदेश भी वे स्वप्नमें ही करते थे। तभी नहीं, आज भी जब कि उनका पाञ्चभौतिक शरीर हमारे चर्मचक्षुओंके समक्ष नहीं है. जीवनकी विषम परिस्थितियोंमें मुझे जब-जब प्रकाशकी आवश्यकता होती है, वे अपना समझकर कृपापूर्वक मेरा पथप्रदर्शन करते हैं। लोग उनका पत्र पुष्प एव माला आदिसे पूजन करते थे, परन्तु मैं न तो उनका पूजन करता था और न इन बातोंमें मेरी आस्था ही थी। अलग एकान्तमें अथवा नहरके किनारे चला जाता, ध्यान में बैठता और वे वहीं ध्यानमें ही मेरे मनका समाधान कर देते। कहते, "जब जगत् ही मिथ्या है तो पूजनादि व्यापार भी तो वैसा ही है, तू उसमें आस्था करके क्यों विचार करता हैं ?"

एक बार बाबा विचरते हुए कहीं जा रहे थे। उस समय उनके साथ केवल मैं ही था। सायंकालमें उन्होंने एक वट वृक्षके तले ठहरने का विचार किया। समीपमें ही एक कुँआ था। मुझसे कहा, "जा कमण्डलुमें जल भरला।" मैंने कमण्डलु ले जाकर कुँएमें लटकाया, परन्तु जल खींचते समय न जाने वह कहाँ फँस

गया। ऊपर खींचता तो ऊपर नहीं आता और नीचे छोड़ता तो नीचे भी नहीं जाता। आखिर मैंने रस्सीको ईंटसे दबाकर बाबाके पास जाकर सब हाल कहा। इतने ही में एक साँड़ गर्जता हुआ तेजीसे मेरी ओर दौड़ा। बाबा बोले, "आँखें मूँद ले।" मैंने तुरन्त आँख बन्द कर लीं। जब खोलीं तो साँड़का कहीं पता नहीं था। फिर वटवृक्षके पत्ते और डालियाँ इस जोरसे खड़खड़ाये मानो उन्हें कोई जोरसे हिला रहा हो। बाबा बोले, "भैया! यहाँ कोई ब्रह्मराक्षस रहता है। उसीने कुएँमे कमण्डलु फँसा रखा है, वही साँड़ बनकर आया था और वही अब पत्ते खड़खड़ा रहा है। तुम आओ कमण्डलु भर लाओ।' अब उनके सान्निध्यमें मुझे कोई भय नहीं था मैं गया और कमण्डलु भर लाया।

जिस दिन बाबाने अपना पञ्चभौतिक शरीर त्यागा था उस दिन मैं एम० ए० की परीक्षा दे रहा था। एक पर्चा हो चुका था, तब प्रातःकाल'स्वप्नमें बाबाने दर्शन दिया और बोले, "बेटा! तू परीक्षा दे रहा है, पर मैं अब चलता हूँ।" मैं यह नहीं समझ सका कि बाबाके इस कथनका क्या अभिप्राय है। दूसरे दिन समाचारपत्रमें पढ़ा कि बाबाका निर्वाण हो गया। तब मैंने बाबा के उस वचनका रहस्य समझा और मुझे महान् दुःख हुआ। उनके चरणोंकी छत्रच्छायामें जाकर हम जिस आनन्दको प्राप्त करते थे उसका सौभाग्य अब छिन गया। संतोषकी बात इतनी ही है कि उनकी कृपादृष्टि अब भी हमपर ठीक वैसी ही है जैसी पहले थी। जब कभी उद्विग्नताका अवसर आता तो बाबा स्वप्नावस्थामें कहते-"बेटा! जगत् मिथ्या है तो क्या ये दुःखके निमित्त मिथ्या नहीं है। तुम इन परसे आस्था हटा लो।" अब भी जब कभी लौकिक कार्यक्षेत्रसे जी ऊबता है, उसे छोड़ना चाहता हूँ तब वे यही आज्ञा करते हैं कि तुम इसे छोड़नेकी इच्छा छोड़ दो और सुखः-दुख दोनोंके साक्षी बनकर रहो।

बजेतक अपने शरीरकी कुछ भी परवाह न करके निरन्तर सत्संग का सदावर्त्त लगाये रखते थे।

एक बार किसीने यह प्रश्न किया कि संसारमें विज्ञानवादी एकसे एक बढ़कर चमत्कार दिखा रहे हैं; जिसमे लोग नास्तिक होते जा रहे हैं। आध्यात्मिक नेता लोग भी ऐसा कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाते कि जिससे संसारी मनुष्य उधर आकर्षित न होकर अध्यात्मकी ओर ही आकर्षित हों। इसका उत्तर मिला कि विज्ञानसे तोप और अणुबमोंका आविष्कार हुआ, जिनसे क्षणभरमें लाखों जीव नष्ट हो सकते हैं। पर ज्ञानी तो प्रत्येक क्षणमें लाखों नहीं, करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि और संहार करता है। उसे ऐसी क्या अपेक्षा है जो इस स्वप्नवत् संसारके अपने सकल्पसे उत्पन्न किए जीवोंको सन्तुष्ट करनेके लिए अपने निज-स्वरूपसे उतरकर अज्ञानी जीवोंकी तरह संसारको सत्य माने और इसकी सहज प्रवृत्तिमें हेर-फेर करनेका प्रयास करे। वह तो अणुबम बनानेवालोंमें भी अपनी ही शक्ति देखता है।

फिर प्रश्न हुआ कि ज्ञानी भले ही अपनी ही शक्ति देखता हो परन्तु साधारण जीवोंको ऐसा विश्वास कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह मिला कि यदि कोई आँखोंसे पट्टी बाँध ले और सामने रखी वस्तुको न देख सके, तो इसमें किसीका क्या दोष? इच्छा और वासनाकी पट्टी हटाकर देख लो कि तुम्हारे सिवा क्या और भी कोई ऐसी शक्ति हो सकती है जो एक तिनके को भी इधरसे उधर कर सके।

पूज्य श्रीमहाराजजीके विषयमें सबसे पहले मैंने श्रीशोभाराम नामके एक सज्जनसे सुना था, जो उन दिनों मेरे यहाँ ही रहकर विद्योपार्जन करते थे। उनके छोटे भाई चिन्तामणिजी भी, जो इस समय दिल्ली प्रदेशकी विधान सभाके सदस्य हैं, मेरे ही यहाँ रहते थे। इन दोनोंके मुखसे श्रीमहाराजजीकी बहुत

महिमा सुनकर मैंने सोचा कि हिन्दुओं में अपने गुरु और पूज्य-पुरुषोंके गुणोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहनेकी प्रथा तो है ही, इसीसे ये इनका उतना गुणगान करते हैं। कुछ दिनों पश्चात् मेरे ही घर रहने वाले श्रीशंकरलाल नाम के एक विद्यार्थी, जो अब स्वामी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हैं शोभाराम-जीके साथ पूज्य महाराजजीके दर्शनार्थ गये। शंकरलालजी एक होनहार नवयुवक हैं—इसमें मुझे कभी कोई सन्देह नहीं हुआ। परन्तु जब वे भी वहाँ से लौटनेपर बाबा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे तो मेरे चित्तमें यही विचार हुआ कि यह सीधा-सादा लड़का शोभारामजीकी लंबी-चौड़ी बातोंमें प्रभावित हो गया है।

पर यह एक बड़ी ही शुभ घड़ी थी, क्योंकि तभी से मेरे चित्तमें भी श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी लालसा उत्पन्न हो गयी। जब मैं उनके दर्शनोंके लिए गया तो पता नहीं, यह उन्हींका कोई चमत्कार था या मेरा सौभाग्य कि उनकी प्रेममयी मूर्त्तिसे प्रायः सौ पग दूर रहने पर ही मेरा चित्त व्याकुल हो उठा और मुझ ही को धिक्कारने लगा कि ऐसे महापुरुषके विषयमें तूने क्यों कोई सन्देह किया। उनके दर्शनमात्रसे सब प्रकारकी संसारी चिन्तायें, वासनायें और रागद्वेषादि दोष हवा हो जाते थे। यह मेरा ही नहीं उनके पास जानेवाले सैकड़ों-हजारों व्यक्तियोंका अनुभव है। वहाँ पहुँचने पर उनके मुखसे निकलते हुए जो शब्द कानोंमें पड़ते थे उनका हृदयपर विद्युत्के समान प्रभाव पड़ता था। ऐसा तो कभी नहीं देखा गया कि वे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हुए हों। दूसरोंको वे जो कुछ उपदेश करते थे उसे कई गुना अधिक अपने आचरणसे चरितार्थ करके दिखा देते थे। यदि कोई आश्रम-वासी किसी अन्य व्यक्तिकी शिकायत करता और आपके सामने उसके अवगुणोंकी चर्चा करने लगता तो आप उसीको डांट देते। इसका परिणाम यह होता था कि दोषीको स्वयंही अपने अपराधके

श्रीशम्भूनाथजी वकील, जयपुर

आज पूज्य श्रीमहाराजजीके विषयमें अपने भाव प्रकट करनेसे पूर्व मैं यह लिख देना चाहता हूँ कि इस समय मेरा मन मुझको धिक्कार रहा है। पूर्वकालमें अमृतमय चन्द्र जिस प्रकार वर्षोंतक समुद्रमें रहा, परन्तु मछलियाँ उसे अपनेही समान कोई जलजन्तु समझकर उससे कोई लाभ नहीं उठा सकीं, उस अमृत-सरोवरके समीप रहकर भी उन्हें पूर्ववत् मरणभय बना ही रहा, उसी प्रकार हम पामर जीव भी श्रीमहाराजजीकी असीम अनुकम्पासे कोई लाभ न उठाकर संसारी सुखोंके पीछेही दौड़ते रहे; उनकी कृपासे तो हम सदाके लिये इस जन्म-मरणरूप संसार-चक्रसे मुक्त हो सकते थे। अब यदि आपके प्रयाससे उनके सदुपदेश और संस्मरणोंका संग्रह हो गया तो निश्चित ही श्रीमहाराजजीके भक्तोंके लिये यह मायारूपी समुद्रको पार करने के लिये एक सुदृढ़ नौकाके समान होगा।

सच्ची बात तो यह है कि श्रीमहाराजजीके एक-एक रोम से जैसा प्रेम, दया और करुणाका स्रोत प्रवाहित होता था वैसा अपनी सत्तर वर्षकी आयु में मैंने तो किसी अन्य व्यक्ति में देखा नहीं। आप पूर्ण ज्ञानी और पूर्ण अनुभवी ही नहीं प्रत्युत पूर्ण परब्रह्मकी साकार मूर्त्ति ही थे, तथापि आपका प्रत्येक क्षण संसारी पुरुषोंके उद्धारके लिये ही लगता था। अन्यथा उनका ऐसा क्या प्रयोजन था जो वे प्रातःकाल तीन बजे से रातके ग्यारह-बारह

लिए पश्चात्ताप होता और वह आपके समक्ष अपना दोष स्वीकार कर लेता था। तब आप हँसकर बड़े प्रेमपूर्वक उससे कहते थे, "भैया! मैं यह सब कुछ जानता था।"

मुझे सबसे पहले आपके दर्शनोंका सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ जब आप ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीके साथ प्रयागकी पञ्चकोशी परिक्रमा कर रहे थे। उस यात्रामें मैं आपके साथ तो नहीं रह सका, तथापि मोटरद्वारा जाकर नित्यप्रति आपके दर्शन करता रहा। एक दिन मार्गमें मेरे भाई बाबू रामनामाप्रसाद एडवोकेट और मेरे मित्र पं० रामचन्द्र मिश्रमें इस बातको लेकर विवाद होने लगा कि ब्रह्मचारीके साथ रामलीला मण्डलीका रहना उचित है या नहीं। जब हम श्रीमहाराजजीके पास पहुँचे तो वे स्वयं ही इस शंकाका इस प्रकार समाधान करने लगे मानो उन्होंने हम लोगोंके मुखसे निकला हुआ प्रत्येक शब्द सुना हो। ज्ञानके सामने सिद्धिका महत्त्व मेरी दृष्टिमें कभी नहीं रहा और न श्रीमहाराजजी ही कभी अपने वचन या कर्मोंसे उसे कोई महत्त्व देते थे। परन्तु मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि वे पूर्ण ज्ञानी नहीं, साक्षात् पूर्ण परब्रह्म थे। ऋद्धि-सिद्धि उनके चरणोंमें लोटती थीं और वे कभी उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे।

इसके पश्चात् मुझे कई बार उनके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रेममयी मूर्त्ति मेरे हृदयको सबसे अधिक उस समय आकर्षित करती थी जब वे स्वयं रोटी परोसकर सब लोगोंको भोजन कराते थे। सर्वथा अपरिचित पुरुषों और लंगड़े-लूले भिखारियोंको भी वे ऐसे प्रेमसे भोजन कराते थे कि कोई माता भी अपने एकमात्र पुत्रको क्या करायेगी।

आपने पूछा कि महाराजजीके उपदेशोंका मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा। इस विषयमें मैं ऐसा मानता हूँ कि मेरे चित्त में इतना कालापन भरा हुआ है कि पूज्य श्रीमहाराजजीके उपदेशोंके

सुननेके पश्चात् भी मुझे संसारसे वैराग्य नहीं होता। पर उन्हींकी कृपाका फल है कि जब मेरा मँझला पुत्र मनमोहनलाल मुझसे अलग होकर दो वर्षों तक निरन्तर श्रीमहाराजजीकी सेवामें रहा तो मेरा चित्त मोहवश उसे रोकने की जगह प्रसन्न होता था कि मैं न सही मेरा पुत्र तो सन्मार्गमें लग गया। मनमोहनने श्रीमहाराजजीकी सन्निधिमें रहते हुए एक बीमार वृद्धाकी ऐसी सेवाकी थी कि पूज्य श्रीमहाराजजीके श्रीमुखसे यह आशीर्वाद निकल गया था—'जा! तेरी बन गयी।" इस आशीर्वादके फलस्वरूप मनमोहन आज मनमोहनलाल नहीं है वरन् विरक्त धर्ममें दीक्षित हो गया है। आपकी मुझपर यह महती कृपा है जो आपने मुझे श्रीमहाराजजीके विषयमें कुछ लिखनेकी आज्ञा दी है, क्योंकि इसी मिससे मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो रहा है। आज उनकी एक-एक बातको याद करके ऐसा आनन्द होता है, जैसा सम्भवतः ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने पर भी न होता।

जिस समय श्रीमहाराजजीने इस क्षणभंगुर शरीरको त्यागा था, उस समय मैं और मनमोहन कलकत्ते में थे। मनमोहनके पास ऐसा व्यापार था जिसमें हजारों रुपयोंका लाभ हो सकता था। पर उसका चित्त ऐसा व्याकुल हुआ कि वह उस कार्य को छोड़कर मुझसे वृन्दावन जानेकी आज्ञा माँगने लगा। मैंने बहुत आग्रह किया कि दो दिन बाद चले जाना पर उसने एक न मानी और वह चला गया। मुझे उस समय उसका यह कार्य बुरा तो अवश्य लगा पर पीछे मन ही मन मुझे प्रसन्नता हुई और मैं अपने को धिक्कार कर कहने लगा कि तुम बड़े अभागे हो जो तुम्हारे चित्तमें श्रीमहाराजजीके प्रति ऐसा प्रेम नहीं है। महाराज दशरथ ने महर्षि विश्वामित्रजीकी आज्ञाका पालन करते हुए यद्यपि अपने पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण उन्हें सौंप दिये थे, तथापि मोहवश वे मूर्च्छित हो गये थे। परन्तु यह श्रीमहाराजजीके दर्शन और

उपदेशोंका ही चमत्कार था कि मैंने मनमोहनको उनकी सेवामें जानेसे कभी नहीं रोका। मुझे उसके साधु हो जाने पर भी कोई दुःख नहीं हुआ और जब मेरे अन्य पुत्रोंने उसे पुनः घर-गृहस्थीमें लानेका विचार प्रकट किया तो मैंने सर्वदा उनके ऐसे प्रयत्न को रोका।

श्रीमहाराजजीका अन्तिम समय भी बड़ा चमत्कारी था। उनके शरीरसे पंसेरियों खून निकल चुका था, किन्तु जब डाक्टरों ने इञ्जैक्शनके द्वारा एक क्षणके लिये उन्हें सचेत किया तो उस समय उनके मुखारविंद से जो शब्द निकले वे भी अत्यन्त विचारणीय हैं। उनका सर्वदा यही उपदेश था कि संसारमें कठोर से कठोर परिस्थिति उपस्थित होने पर भी घबड़ाना नहीं चाहिये। यही बात उन्होंने अपने उन अन्तिम शब्दोंसे भी व्यक्त कर दी। इतने गहरे घाव होनेपर भी न तो उनके मुखसे कोई वेदनासूचक शब्द निकला और न अपने घातकके प्रति कोई रोष ही हुआ; बस, केवल यही कहा कि 'यह क्या हो रहा है ?' मानों इस घटना से सर्वथा तटस्थ रहकर वे यह सूचित कर रहे थे कि बड़ीसे बड़ी वेदना होने पर भी तत्वज्ञको रोना, चिल्लाना, घबड़ाना या खेद प्रकट करना उचित नहीं है उसे तो इसी प्रकार उदासीन रहना चाहिये जैसे एक सूखा पत्ता अपनी ओर से किसी प्रकार का प्रतिरोध न करके जिधर वायु उड़ा ले जाती है उधर ही चला जाता है।

श्रीछैलविहारीलाल अष्ठाना, एम० ए०, होलीपुरा (आगरा)

मुझे बाल्यकालसे ही ध्रुव-प्रह्लाद आदिके चित्र और चरित्र बहुत प्रिय थे। मेरी बड़ी अभिलाषा थी कि मुझे भी कोई प्राचीन कालिक महर्षि गुरुरूपमें प्राप्त हो जायँ तो मैं भी वन में निवास कर घोर तपस्या एवं भगवद्भजन करके प्रभुको प्राप्त करूँ। जब १९३१-३२ में मैं आगरा कालेजके इण्टर क्लासमें पढ़ता था उस समय मेरे पास मोहनलाल नामका एक ब्राह्मण रसोई बनानेके लिये रहता था। वह छर्राके पास भुड़िया नामके गाँवका रहनेवाला था। पूज्य श्रीमहाराजजी उसके गाँवमें जाया करते थे। उससे पहली बार मुझे महाराजजीका मौखिक परिचय मिला। फिर सौभाग्य से सन् १९३२ के जून मासमें आप हाथरस पधारे और विशनदयाल के बागमें ठहरे। दोपहरको भिक्षाके लिये आप नित्यप्रति नगरमें पधारते थे। वहीं ला० शंकरलालजी मकान पर मुझे आपके पुण्य दर्शन और परिचय प्राप्त हुए तथा उसी वर्ष जुलाई ७ बृहस्पतिवारको आपने मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ किया। हाथरस से आप कर्णवास पधारे और वहाँ पहुँचकर भाई सुखरामजीसे लिखवाकर मुझे दस उपदेश भेजे, जिनमें से कुछ ये हैं—

१. संसारको स्वप्नवत् समझो।
२. नूतन बालवत् स्वभाव रखो।

३. गङ्गाप्रवाहवत् हरसमय प्रयत्नशील रहो।
४. भगवान्‌को सदैव अपने समीप समझो।

गुरुदेव सदैव पैदल ही यात्रा करते थे और मुझे दशहरा, बड़े दिन और गर्मी आदिकी प्राय: प्रत्येक छुट्टी में उनके साथ चलनेका सौभाग्य प्राप्त होता था। जब कभी उनके पास पहुँचनेमें मुझे देरी हो जाती तो वे पूछते थे, क्योंरे! अब तक कहाँ रहा ?' हम अबोध बालकोंपर उनका कैसा स्नेहमय लाड़-दुलार था!

बड़े-बड़े उच्चकोटि के सन्त और विद्वान उनके सत्सगके लिये लालायित रहते थे। आप प्रातः ३ बजेसे ४ बजेतक सत्सगके लिये बैठते थे। उस समय जिज्ञासुगण आपके आस पास बैठ जाते और वे जैसा प्रश्न करते थे तुरन्त उसका समाधानकारक उत्तर पाते थे। आपके उत्तरोंमें केवल शास्त्रवाक्योंको ही नहीं दुहराया जाता था, वह आपके अनुभवकी बात होती थी। शास्त्रों-में जो सिद्धान्त निहित हैं उनको अनुभव द्वारा मथकर और उनका मक्खन निकालकर आप सरल भाषामें दृष्टान्तपूर्वक जिज्ञासुओंके आगे प्रस्तुत कर देते थे। आपकी युक्तियाँ अकाट्य होती थीं और आप कभी कोई पक्ष लेकर बात नहीं करते थे। आप तो डंकेकी चोट यही घोषित करते थे कि शास्त्रमें इसकी बाबत क्या लिखा है, मैं नहीं कह सकता, किन्तु मेरी समझ में तो ऐसी बात है। आपका प्रत्येक उपदेश ऐसा होता था जिससे सभी मत और सम्प्रदायोंके लोग लाभ उठा सकते थे और जिससे मानवमात्रका कल्याण होना निश्चित था। किसी व्यक्ति या सम्प्रदायकी निन्दा करना आप जानते ही नहीं थे। मैंने अपने सत्रह सालके सम्पर्कमें उन्हें कभी पूरे कण्ठसे भाषण करते नहीं सुना। इनकी दिव्य वाणी सर्वदा बहुत ही महीन और कोमल स्वरमें सुनायी देती थी। लोभ और क्रोधका तो उन्हें स्पर्श भी नहीं

हुआ था। मैंने उन्हें कभी किसीपर क्रोध करते नहीं देखा और न सुना। आप कोमलता और उदारताकी मानो मूर्त्ति ही थे। वड़े से बड़े अपराधको क्षमा कर देनेमें ही आपको प्रसन्नता होती थी तथा भूखोंको खिलाने और दुखियों को सहायता देने में ही आपको आनन्द होता था। संसारके दुःखी जीव आपके चरणोंकी शीतल छायामें पहुँचकर परम शान्ति लाभ करते थे। मैं अपने निजी अनुभवकी बात कहता हूँ कि जब कभी कालेजकी परेशानियोंसे तङ्ग आकर छुट्टी में श्रीमहाराजजीके पास पहुँचता तो मानो एक नवीन सृष्टि में ही पहुँच जाता था। जव वहाँसे लौटता तो मेरा हृदय आनन्दसे परिपूर्ण और चिन्ताओंसे सर्वथा मुक्त रहता था। उनके चरणोंमें पहुँचनेके लिये चित्त सर्वदा ही अत्यन्त लालायित रहता था। चिन्ताओंके समय उनके चरणोदक पान करनेसे भी एक अलौकिक आनन्द और शान्तिका अनुभव होता था।

एक बार सन् १९४४ के अप्रैल मास में श्रीमहाराजजी ग्वालियरके पास करहमें एक उत्सवमें पधारे थे। वहाँसे लौटते समय वैशाख कृ० ११ सं २००१ वि० तारीख १८ अप्रैल को आप अपने भक्तपरिकर सहित मेरे यहाँ होलीपुरा (आगरा) पधारे थे। यहाँ पाँचदिन कुटियापर विराजे। उन दिनोंके कथा,कीर्तन और उपदेशों को यहाँ के लोग अव तक याद करते हैं।

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी एक विश्व नागरिक थे। उनके अनुभव और अभ्यास अद्वितीय थे। वे जो कुछ कहते थे सम्पूर्ण मानवसमाजके लिये कहते थे। हमें ऐसे महात्मा वहुत कम मिलते हैं जो एक वैज्ञानिककी भाँति अनुभवकी प्रयोगशालामे परीक्षित आध्यात्मिक सिद्धान्तोंको बताने वाले हों। श्रीमहाराजजी उन्हीं दिव्य रत्नोंमेसे थे। हम याज्ञवल्क्य आदिके नाम सुनते हैं, परन्तु श्रीमहाराजजी तो प्रत्यक्ष याज्ञवल्क्य अथवा दत्तात्रेय जान पड़ते

थे। उनका स्पर्श सांसारिक चिन्ताओंको हर लेता था, उनकी वाणीसे शान्तिकी स्रोतस्विनी प्रवाहित होती थी और उनकी दृष्टि आध्यात्मिक रहस्योंकी वर्षा करती थी। मुझे ऐसे दिव्य महात्माके दर्शन तो श्रीमहाराजजीमें ही हुए जिसमें गुणातीत और स्थित-प्रज्ञके सब लक्षण मूर्त्तिमान् होकर प्रकट हुए हों। यदि वे विदेशों में वेदान्तसिद्धान्तको समझाते तो स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थसे भी बढ़कर सफलता प्राप्त करते। किन्तु उनका तो सिद्धान्त था—भाषण या उपदेश कभी न करना, केवल जिज्ञासुओं के प्रश्नोंका उत्तर देना ही वे उचित मानते थे। उसमें भी यदि उन्हें कोई कुतर्क दिखाई देता तो शान्त हो जाते थे, रोष कभी नहीं करते थे। आज उनसे बिछुड़कर हम सब प्रायः आश्रय-हीनसे हो गये हैं।
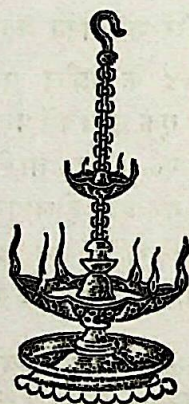
पं० श्रीजगदीशप्रसादजी पुजारी, भिवानी

सं० १९९१-९२ में मनमें यह जिज्ञासा हुई कि किसको गुरु बनावें। संकीर्तनप्रेमी पूज्य घनश्यामदासजी (उपनाम राधेश्यामजी) से सुना कि श्रीउड़िया बाबाजीका पूजा शालग्रामकी तरह होती है। इच्छा हुई कि दर्शन करूँ। दिल्लीकी नवलप्रेम-सभाके श्रीरामचरितमानस पाठमें मैंने महाराजजीके चित्रका दर्शन किया। उससे उनके दर्शनोंकी इच्छा और भी उद्दीप्त हो गयी। सं० १९९३ में गीताप्रेस गोरखपुरमें अखण्ड संकीर्तन यज्ञका आयोजन किया। उस समय मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। वहाँ श्रीकेदारनाथ (कंछी) से परिचय एवं प्रेम हो गया। उनसे महाराजजीकी गुणावली सुनीं तो वहीं से दर्शनोंके लिये चलने का निश्चय कर लिया। श्रीमुनिलालजी और रघुवीरसिंहजीके सत्संगसे भी बाबाके प्रति मेरे प्रेमकी पुष्टि हुई और मैंने उनके चित्र-पट स्वरूप की पूजा प्रारम्भ कर दी। गोरखपुरमें श्रीरघुवीरजी तथा केदारनाथजीके साथही बाबाके पास चलनेका निश्चय हुआ था। परन्तु प्रारब्धवश हम सब बिखर गये। इससे मन बेचैन हो गया। ऐसी अवस्थामें रात्रिको स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने दर्शन दिया और कहा, "परवा मत करो। अकेले चले आओ।"

तब भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे आज्ञा ले मैंने सेहतामें श्रीमहाराजजीके दर्शन किये। चित्त आनन्दसे गद्‌गद हो गया। पूजन किया और मन्त्रदीक्षाके लिये प्राथना की। परन्तु

उन्होंने आनाकानी कर दी। रात्रिको सोते समय मैं रो पड़ा। सोचने लगा, "देखो, कहाँ खाना, कहाँ सोना. काम तो कुछ भी नहीं बना।' प्रातःकाल होते ही श्रीमहाराजजीने मुझे बुलाया और मेरे बिना कहे ही मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ कर दिया। उस वर्ष गुरुपूर्णिमा कर्णवासमें होने वाली थी। वहाँ आने के लिये आज्ञा दी।

मैं कर्णवास गया। वहाँ रात्रिमें स्वप्नमें तीन बार यह आवाज सुनायी दी—'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।" प्रातःकाल श्रीमहाराजजीसे इसका तात्पर्य पूछा। उन्होंने कहा, "अहिंसा व्रत धारण करो।" फिर उन्होंने मुझे नित्यप्रति छ हजार रामषडक्षर मन्त्रका जप करने और श्रीरामायण तथा रामतापनी उपनिषद्का पाठ करनेकी आज्ञा दी। इसके अतिरिक्त यह भी कहा कि नित्यप्रति विनयपत्रिकाका एक पद पाठ किया करो तथा एकादशी, रामनवमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं शिवरात्रिका व्रत किया करो। उनकी उस आज्ञाका यथासाध्य पालन होता आ रहा है। यदि मुझे उनकी शरण न मिली होती तो मेरा जीवन कैसा होता ? यह सोचते ही मन घृणासे भर जाता है। उन्होंने कृपा करके मुझे गहरो खाइयोंसे बचाया है। श्रीमहाराजजीकी गुण-गरिमाका मैं क्या वर्णन करूँ ? उन-जैसा तो मुझे कोई दिखायी ही नहीं दिया —'अस सुभाव कहुँ सुना न देखा।'

हिन्दुस्तान-पाकिस्तानका बटवारा होनेके समय पंजाबमें बड़ा साम्प्रदायिक संघर्ष हुआ था। मैं उस समय कानपुरमें था। मैंने समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि भिवानीमें हिन्दू-मुसलमानोंमें बड़ी घमासान लड़ाई हुई है। हमारा मन्दिर मुसलमानोंके समीप पड़ता है। अतः चित्त चिन्तित हो गया। रात्रिमें ज्वर भी हो आया। 'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः इस श्लोकका पाठ करते हुए श्रीमहाराजजोसे

प्रार्थना की। आँख लगनेपर स्वप्नमें देखा कि भिवानीमें मन्दिरके सामने श्रीमहाराजजी वीरभावसे खड़े कह रहे हैं, "चिन्ता मत करो।" दूसरे दिन मैंने वहाँ पहुँचकर देखा. "मन्दिरके सामनेका मकान तहस-नहस हो गया है, परन्तु हमारा मन्दिर और सारा परिवार प्रभुकृपासे सुरक्षित है।

श्रीमहाराजजीकी कृपा अब भी पूर्ववत् है। वे कभी-कभी स्वप्नमें मेरे साधनकी बात पूछते हैं, आशीर्वाद देते हैं अ र प्रसादी माला भी देते हैं। उनका वरद हस्त अब भी ज्योंका त्यों मेरे सिर पर है।

पं० श्रीशीतलदीनजी शुक्ल, फर्रुखाबाद

वन्दों सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अञ्जलिगत शुभ सुमन जिमि,सम सुगन्ध कर दोउ॥
संत सरल चित जगत हित, जानि स्वभाव सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरण-रति देहु॥

परममङ्गलमय, पूज्यपाद, सर्वभूतहितरत, प्रातःस्मरणीय श्री १००८ श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके पावन पादपद्मोंमें भूरि-भूरि साष्टांग दण्डवत् करते हुए निज गिरा पावनकरनकारण उनकी अनन्त अपार अवर्णनीय गुणावलीका यत्किंचित् अंश अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार लिखनेका प्रयास करता हूँ।

उपर्युक्त दोहेमें कहा गया है कि संत समानचित्त, सरल-चित्त, और जगत्हितकर्ता हुआ करते हैं। यह उनका सहज स्व-भाव है परम पूज्य संत शिरोमणि श्रीउड़िया बाबाजी महाराजमें तो सन्तोंके सभी लक्षणोंका अद्भुत सामञ्जस्य था। उनकी समान-एवं सरलचित्तता और जगत्-हितैषिता तो सर्वदा प्रत्यक्ष देखनेमें आती थी। शत्रु, मित्र, उदासीन कैसा भी व्यक्ति उनके सम्मुख आता सभीके,प्रति आपका अत्यन्त कृपा एवं स्नेहसे भरा सद्व्यबहार होता था। सर्वप्रियताकी तो आप साक्षात् मूर्त्ति ही थे। 'शुनि-चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः' इस गीतोक्तिके आप मूर्त्तिमान् उदाहरण थे। ऋद्धि-सिद्धि सब आपकी अनुगामिनी रहती थीं। यदि एकान्त जङ्गलमें भी आसन लगाकर बैठ जाते तो वहाँ भी

थोड़े ही कालमें सज्जनोंका समागम स्वतः जुट जाता था; ठीक वैसे ही जैसे सरोवरोंमें खिले हुए कमलोंको देखकर उसके आस-पास मधुपगण मँडराने लगते हैं। आपकी प्रसन्नमुखाम्बुजश्री सर्वदा एकरस रहती थी। सत्संगमें पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर स्वरूप आपका वचनामृत पान करनेके लिए समागत प्रेमियोंके कर्णपुट सदा सप्रेम उद्यत रहते थे और वे आपका उपदेशामृत पान करते-करते अघाते नहीं थे। सब यही चाहते थे 'और सुनें'। मैं तो प्रायः यह कह दिया करता था—

'नाथ तवाननशशि स्रवत, कथा सुधा रघुवीर।
श्रवणपुटन मन पान करि, नहिं अघात मति धीर ॥'

श्रीमहाराजजीके चारों ओर प्रसाद, फल, फूल, तथा अन्यान्य सुन्दर खाद्य पदार्थोंके ढेर लग जाते थे। जंगलमें मंगल हो जाता था। यह सब आँखों देखी बातें हैं।

कहेउँ न कछु करि युक्ति विशेषी। यह सब मैं निज नयननि देखी॥

जब-जब श्रीमहाराजजी यहाँ (फर्रुखाबाद) पधारते अथवा अवकाश मिलनेपर मैं श्रीपदके दर्शनार्थ वृन्दावन जाता तो आप श्रीमुखसे बोल उठते—"पंडितजी, आ गये। चित्त प्रसन्न तो है। अब श्रीरामायणकी कथा होनी चाहिये।" मुझे बरबस सरकारी आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ती। पूज्यपादका कृपाबल पाकर मैं भी अपनी टूटी-फूटी भाषामें श्रीरामचरितमानसका भावपूर्ण गायन करने लगता। उसमें कभी-२ तो स्वतःही ऐसा आनन्द आता कि मैं विभोर हो जाता। यह सब उनके पवित्र सान्निध्यका ही प्रभाव था। नहीं तो मुझ अधम, अपावन, दीन, बलहीन में यह बात कहाँ? चुम्बकके सहयोगसे यदि कुधातु लोहेमें आकर्षण प्रादुर्भूत हो तो इसमें चुम्बक ही कारण होता है न कि लोहा। 'शठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।' यह कथन सर्वदा सत्य ही है।

प्राय: बीस वर्ष हुए मुझे सबसे पहले पूज्यपाद महाराजजी-के परम भक्त आदरणीय बाबा रामदासजी और श्रीसियारामजी के मंगलमय दर्शन यहाँ (फर्रुखाबादमें) गङ्गातट पर हुए थे। वे विचरते हुए अकस्मात् यहाँ आ गये थे। गङ्गातट पर दूला-राम की विश्रान्तपर टिके हुए थे। मुझे उन युगल महात्माओंके समागमसे बड़ा सुख मिला। उनके मुखसे निकले हुए ये वाक्य मुझे अबतक स्मरण हैं—

खुदा खानाबदोशोंकी करे खुद कार सामानी।
नया मंजिल नया बिस्तर नया दाना नया पानी॥
युगल सरकार सिरपर हैं तसल्ली दिलको रहती है।
किसीकी नाव पानी में मेरी रेती में चलती है॥

इन्हीं महात्माओंके द्वारा परम पूज्यपाद श्रीमहाराजजीका सुयशसौरभ श्रवणगोचर हुआ था। तभी से यह लालसा उत्तरो-त्तर बढ़ती रही कि 'श्रीमहाराज चरण जब देखौं। तब निज जनम सुफल करि लेखौं।' फलत: प्रभुकी अहैतुकी कृपासे बाँधके सुविशाल महोत्सवमें सम्मिलित होनेका सुयोग लगा। यहाँ के प्रेमीजनोंके साथ वहाँ पहुँचा। वहाँ का पावन वायुमण्डल, श्री-भागीरथीका सुहावन तट, आश्रमकी पवित्रता, अखण्ड हरिनाम संकीर्तन और संतों का समागम सभी बातें एक साथ देखकर सहसा स्वर्गीय सुख का अनुभव होने लगा। वहीं सर्वप्रथम परम पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके दर्शनोंका भी सुअवसर प्राप्त हुआ। केवल दर्शन ही नहीं, पारस्परिक कुशलप्रश्न और सम्भाषण का भी सौभाग्य मिला। बस, मैं तो कृतकृत्य हो गया, मेरी मनो-भिलाषा पूर्ण हो गयी। अधिक क्या कहूँ—

विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुनगन जैसे॥

———

श्रीमथुराप्रसादजी दीक्षित, फर्रुखाबाद

प्राय: पच्चीस वर्षकी वात है हमारी दूकान कुछ आर्थिक संकटमें थी। उस समय दूकानदारोंका ध्यान हमारी ओरसे बिगड़ गया था और वे हमसे अपना रुपया माँग रहे थे। इस तकाजेके कारण चित्त वहुत घवड़ाया और मेरे हृदयमें यह प्रेरणा हुई कि मैं किन्हीं महात्मासे मिलूँ। वे ही हमें इस संकटमें उबार सकते हैं। इन दिनों पूज्यपाद श्रीमहाराजजी फरुखावाद आये हुए थे। मेरे एक कांग्रेसी मित्र श्रीचन्द्रसेनजी भी उस समय मेरे हीपास रहते थे। कांग्रेसका कार्य करनेके कारण उन्हें कई बार जेलकी यात्रा करनी पड़ी थी। अब उनका विचार संन्यास ग्रहण करने का हो रहा था। वे गुरुकी खोजमें थे। जब हमने श्रीमहाराजजी के विषयमें सुना तो हम दोनों ही उनके दर्शनार्थ गये। यही श्रीमहाराजजीसे हमारी प्रथम भेंट थी। पं० चन्द्रसेनजीने जव अपना संन्यास ग्रहण करनेका संकल्प व्यक्त किया तो श्रीमहा-राजजीने उन्हें मना किया। परन्तु उनके विशेष आग्रह करनेपर उन्हें अपने साथ रखना स्वीकार कर लिया। चन्द्रसेनजी अच्छे वड़े जमीदार थे और उनके एक पुत्र भी था। वे श्रीमहाराजजी केसाथ प्रयाग गये। वहाँ उस समय अर्धकुम्भीका पर्व था। इसी अवसरपर श्री महाराजजीकी अनुमतिसे उन्होंने दण्ड ग्रहण किया। उनका नाम हुआ स्वामी आत्मबोध तीर्थ। वे फर्रुखा-वादी दण्डी स्वामीके नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

एकबार श्रीमहाराजजी यहाँ गंगाजीके किनारे शाहबिहारीजी विश्रान्त नामक घाटपर विराजमान थे। उन दिनों गंगाजीके किनारे ही एक मुसलमानोंका मेला होनेवाला था। उनके घाट-पर जानेकी बात दो-तीन दिनोंसे चल रही थी। मेलेका दिन तो था शुक्रवार, किन्तु वे ३-४ दिन पूर्व सोमवार को ही पहुँच गये। हरितालिका का दिन था। उस दिन विशेषरूपसे स्त्रियाँ स्नान करनेके लिये जाती हैं। जो नहीं जा सकतीं उनके रात्रिपूजनके लिये पुरुष ही गंगाजल ले आते हैं। इसी अवसरपर मुसलमानोंका एक झुंड घाटपर पहुँचा और उनमेंसे कुछने हाथमें तलवार लिये हुए हिन्दुओंको ललकारा। बस, दोनों ओरसे ईंट पत्थर और तलवारोंसे आक्रमण होने लगे। इस अवसरपर हमने देखा कि श्रीमहाराजजी तनिक भी नहीं घबड़ाये। प्रत्युत उन्होंने मुसलमानोंको बहुत डाँटा तथा एक आदमीके हाथसे बल्लम लेकर उनकी ओर दौड़े भी। उनका वह अद्‌भुत धैर्य देखते ही बनता था। पीछे लोगोंने विशेष आग्रह कर आपको उस विश्रान्तसे लेजाकर दूसरे स्थानपर ठहरा दिया।

(२)

सन् १९४२-४३ की बात है इस वर्षका चातुर्मास्य श्रीमहाराजजीने फर्रुखाबादमें ही किया था। मैं उस समय आपहीकी कृपासे १०।७ राजपूत रेंजीमेण्ट फतहगढ़का रजिस्टर्ड आर्मी कण्ट्रैक्टर था। मैं सेनाको सामान सप्लाई करता था। वहाँ मेरी छः दूकानें थीं। उसीसमय पल्टनके क्वाटर गार्डसे एक पिस्तौल और कुछ कारतूस चोरी चले गये। जब सूबेदार मेजर श्रीव्रजनन्दन-सिंहको इस चोरीका पता लगा तो बड़े प्रयत्नसे खोज होने लगी परन्तु बहुत ढूंढ़नेपर भी कोई पता न लगा। उस समय यहाँ बारह-तेरह पल्टनोंका हैडक्वार्टर था। प्रायः सभी अफसर अँग्रेज थे। भारतीय अफसर तो केवल कर्नल केरियप्पा थे, जो पीछे

भारतके प्रधान सेनापति भी हुए। ऊपरसे विशेष दवाव पड़नेके कारण सूबेदार मेजर बहुत उद्विग्न हुए। उनका उत्तरदायित्व तो था ही। जब उन्होंने यह सब हाल मुझसे कहा तो मैंने उनसे श्रीमहाराजजीकी चर्चा की। वे रविवारके दिन मेरे साथ श्री-महाराजजीके पास आये। ये सूबेदार मेजर रामायणके बड़े भक्त और अयोध्याके प्रसिद्ध संत बाबा रघुनाथदासजीके शिष्य थे। श्रीमहाराजजीका नाम सुनते ही वे गद्‌गद्‌कण्ठ हो गये और कह-ने लगे कि मैंने 'कल्याण' में श्रीमहाराजजीके उपदेश पढ़े हैं, मैं अवश्य उनके दर्शन करूँगा।

श्रीमहाराजजी इस समय ला० रामभरोसेलाल रस्तोगीके बगीचेमें ठहरे हुए थे। जिस समय हम पहुँचे आप किसीसे एका-न्तमें बात कर रहे थे, अतः हम कुटी के बाहर बैठ गये। जब मेरी आवाज सुनकर आपने हमें भीतर आनेको कहा तो हमने भीतर जाकर आपका चरणवन्दन किया। सूबेदार मेजरको उदास देखकर आपने उनको चिन्ताका कारण पूछा। उनसे सब हाल सुनकर आपने कहा, 'चिन्ता मत करो। तुम तो रामजीके भक्त हो, रामायणके प्रेमी हो, अतः सब ठीक होगा। अभी कुछ समय अवश्य लग सकता है।' इसके पश्चात वहाँ कीर्तन आरम्भ हो गया और हम लोग चले आये। इसके प्रायः एक मास पश्चात् सवेरे चार बजेके लगभग स्वप्न में सूबेदार मेजरसे किसीने कहा कि अमुक तारीखको तुम्हारे क्वाटर गार्डपर अमुक सिपाही और जमादार थे। उनमेंसे एक राजपूत और एक मुसलमान सिपाही-ने यह चोरी की है। ऐसा कहकर उनके गालपर बड़े जोरसे थप्पड़ मारा, जिससे उनकी नींद खुल गयी।

स्वप्न टूटनेपर उन्होंने इसी आधारपर खोज आरम्भ की। धीरे-धीरे सब रहस्य खुल गया और पिस्तौल तथा कारतूस

भी मिल गये। इसके एक रात पूर्व मैं श्रीमहाराजजीके पास था। उन्होंने कहा कि तेरे मित्रकी चोरी का पता लग गया है। मैंने कहा, "अभी तो नहीं लगा। मैं तो वहींसे आ रहा हूँ।" तब आप बोले, "अब जब सवेरे तू पल्टन जायगा तब तुझे मालूम होगा।" मैं जब दूसरे दिन आठ बजे वहाँ गया तो सब बात मालूम हुई। मैंने रातकी बात सूबेदार मेजरसे कही तो उन्होंने मन ही मन श्रीमहाराजजीको प्रणाम किया और कहा, "भाई, यह सब उन्हींकी कृपा है हमारा मुँह उजला हो गया, नहीं तो बड़ी बदनामी थी।"

श्रीमहाराजजीकी कृपासे ये सूबेदार मेजर पीछे नागपुरमें विंग कमान्डर हो गये थे। अब वे रिटायर्ड हो गये हैं।

(३)

प्रायः उन्नीस वर्ष हुए श्रीमहाराजजी फर्रुखाबाद पधारे थे। उस समय हमने रास्तेमें ही आपको घेर लिया और अपने स्थान पर लाकर बैण्ड बाजेके द्वारा स्वागत करते हुए आपका पूजनकिया बैण्डको सुनकर आप बड़े प्रसन्न हुए। आप लाला रामभरोसेलालके बागमें ठहरे। पन्द्रह-बीस दिन पश्चात् बैण्डके सदस्योंने आपको अपने यहाँ निमन्त्रित किया। आपने उन्हें आशीर्वाद दिया कि यह बैण्डमण्डल बहुत दिनोंतक चलता रहेगा। उनके शुभाशीर्वादसे वह बैण्ड बाजा अभीतक विद्यमान है। एक बार आपने उसे श्रीहरिबाबाजीके बाँधकर बुलाया था। वहाँ उसने संकीर्तनोत्सव में अच्छी सेवा की। इसके पश्चात् जब श्रीकृष्णाश्रम वृन्दावनका उद्घाटनोत्सव हुआ तब भी उसबैण्डके सभी सदस्य उसमें सम्मिलित हुए थे। वहाँ समय-समयपर वह उत्सवकी शोभा बढ़ाता था। भण्डारेके दिन आपने बैण्ड मास्टर बलदेवप्रसादको आज्ञा दी कि तुम काठियाबाबाके स्थानपर जाकर वैष्णव महात्माओंके अखाड़ोंका स्वागत करो। उस समय सबको नंगे पैर रहना होगा। आपकी

आज्ञाका अक्षरशः पालन किया गया और सब कार्य बड़ी धूम-धामसे समाप्त होने पर सब लोग लौटे ।

(४)

प्रयागकी अर्ध कुम्भीके अवसर पर, जब आप फर्रुखाबाद होकर जा रहे थे, आपसे श्रीराधेश्याम मिश्रने रात्रिके समय अपने बागमें ठहरनेका आग्रह किया आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । फिर भोजनके लिये आग्रह करनेपर आपने पाँच-छः आदमियोंका भोजन लानेकी आज्ञा दी । किन्तु कीर्त-नादि समाप्त होनेपर वहाँ प्रसाद पाने वालोंकी संख्या अधिक हो गयी । आपने जो सामग्री राधेश्यामजी लाये थे उनसे ले ली और उसपर अपनावस्त्र ढककर बाँटना आरम्भ किया । प्रायः अट्ठा-रह महानुभावोंको भोजन करानेपर भी उसपात्रमें भोजन सामग्री बच रही । यह देखकर मिश्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

पीछे पं० बाबूराम और मैं प्रयाग पहुँचे । साथमें ला० भोलानाथ सर्राफ और राधेश्यामजी भी थे । वहाँ आज्ञा हुई कि रामनवमीके अवसर पर अयोध्या आना । मैं पं० बाबूरामजीके साथ वहाँ उपस्थित हुआ रामनवमीके दिन सरयूमें स्नानकर सब लोगोंके साथ श्रीमहाराजजी हनुमानगढ़ीकी ओर चले । मार्गमें भीड़ बहुत अधिक थी । पुलिस लोगोंको निकलने नहीं देती थी । आपने आज्ञा दी मथुरा प्रसाद और बाबूराम आगे-आगे चलें । हमारे पीछे एक महानुभाव घंटा बजाते चल रहे थे । अन्य सब भक्त 'जय सिया राम जय जय सिया राम' की ध्वनिके साथ कीर्तन करते चल रहे थे । आपके साथ अनेकों गृहस्थ और विरक्त थे । पुलिसने किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं की । जब मन्दिरकी सीढ़ियोंपर पहुँचे तो जनताने तुरंत रास्ता दे दिया । आपका नाम सुनकर पुजारियोंने भी सब यात्रियोंको एक ओर करके सबको खूब

दर्शन कराये। वहाँसे हम सब लोग राम जन्मस्थान पहुँचे। यहाँ भी पुलिसने कोई रोक-टोक नहीं की। ठीक १२ बजे आरती हुई। उस समयका आनन्द देखते ही बनता था। यहाँ एक सुप्रसिद्ध रामायणी मिले। आपका नाम सुनकर उन्होंने आपका चरणस्पर्श किया और हनुमतनिवासकी ओर एकान्तमें बैठकर रामायणकी सुन्दर कथा-वार्ता चलायी। प्रायः तीन घंटेतक वे प्रवचन करते रहे। उनका कथन सुनकर श्रीमहाराजजी बहुत प्रसन्न हुए।

तीसरे दिन श्रीमहाराजजी मौनीजीकी छावनीमें गये। मौनीजी अत्यन्त वृद्ध महात्मा थे। इस समय किसीसे मिलते-जुलते नहीं थे। किन्तु जब उनके एक शिष्यने आपके आनेकी सूचना दी तो उन्होंने तुरंत आपको अपने पास बुला लिया। आपके कारण हमें भी उनके दर्शन हो गये। इस समय वे कुछ अस्वस्थ भी थे।

(५)

श्रीवृन्दावनमें महाराजजीके आश्रमका उद्घाटनोत्सव था। मुझे वहाँसे पत्रद्वारा आज्ञा हुई कि अमुक तिथितक कुछ स्वयं-सेवकोंके सहित उपस्थित हो जाओ। मैं दूसरे ही दिन रात्रिकी गाड़ीसे चल दिया। भीड़ अधिक होनेके कारण सोना बिलकुल न हो सका। दूसरे दिन प्रातःकाल ७ बजेके लगभग आपके श्रीचरणोंमें उपस्थित होगया। श्रीमहाराजजीने मुझे कुछ कार्य सौंपा। परन्तु रातकी थकान और जागरणके कारण मुझे चक्कर आने लगे। मुझे बड़ी ग्लानि हुई। डरते-डरते श्रीमहाराजजीसे कहा, "मुझे तो चक्कर आ रहे हैं।" आप बोले, 'स्नान करके आराम कर ले।' परन्तु यह सब करनेपर भी सायंकालतक वही हाल रहा। रात्रिमें जब आपने पूछा तब भी चक्कर आ ही रहे थे। आपने कहा,' जाकर सो जा' ठीक हो जायगा।" मैं फर्रुखाबादी दण्डी स्वामीके पास जाकर सो गया। रात्रिमें स्वप्नावस्थामें देखा कि श्रीमहाराजजी मेरे पास आकर पूछ रहे हैं, "क्या हाल है ?" मैंने

कहा "वाबा ! अभी तो चक्कर आते हैं ।" तब आपने दीवारपर अंग्रेजीका T बनाया और कहा अब तबियत ठीक हो जायगी । परन्तु दूसरे दिन भी वही दशा रही । आपने दूसरे दिन भी आराम करनेको कहा । मुझे मनमें बड़ा संकोच हो रहा था । फिर आपने चार पांच सन्तरे देकर कहा,' इन्हें खाकर सो जाना।" मैंने वैसा ही किया रात्रिमें प्रायः २ बजे स्वप्नमें फिर देखा कि बाबा मुझसे तबियतका हाल पूछ रहे हैं और मेरे यह कहनेपर कि 'अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ आपने दीवारपर T अक्षर लिखकर बड़े बलपूर्वक मुझसे कहा कि बस, अब कल ठीक हो जायगा। कलसे काम करना । इसके पश्चात् मेरी आखेंखुल गयीं। मेरी तबियत बिलकुल ठीक हो गयी और कई रातें जागकर काम करनेपर भी कोई कष्ट नहीं हुआ ।

भण्डारेमें तो महाराजजीके अनेकों चमत्कार देखे गये। जिस दिन बड़ा भण्डारा था फर्रुखाबादवालोंके हाथमें बीचका भण्डार था । प्रायः तीन सौ आदमी परोसनेके कार्यपर नियुक्त थे । जिसे जो चीज परोसनी थी उसे उसका बेंज लगा दिया गया था । पहली पंक्तिमें प्रातः दो हजार आदमी बैठे । महाराजजीने आकर पूछा," मथुरा प्रसाद ! सब काम ठीक चल रहा है ?" मैंने कहा, महाराजजी ! ठीक है ।" परन्तु जब पारसकी ओर देखा तो कुछ सन्देह हुआ और मेरे मुँहसे निकल गया," पहली बारमें ही काफी सामान खर्च हो गया है ।" आप हँसते हुए बोले, "सब ठीक है।"फिर जहाँ लड्डुओंका ढेर था उसकी ईंटोंसे बनी मेंड़पर बैठ गये । अपने चादरेका सिरा लड्डुओं पर डाल दिया और एक लड्डू तोड़कर सबढेरपर फैलाकर कहा "इसे चटाइयोंसे ढक दो ।" इसी प्रकार पूड़ियोंके ढेरपर भी किया और सागकी नादोंको अपने हाथोंसे स्पर्श किया । फिर यह कहकर कि सब ठीक है, चले गये । इसका परिणाम यह हुआ कि फिर भण्डार बढ़ता ही

गया। रातको १०॥ बजे तक पंगतें बैठती रहीं। जब भण्डार बन्द करनेकी आज्ञा हुई उस समय भी आप वहाँ उपस्थित थे और बहुत प्रसन्न दिखायी देते थे। इतने ही में लड्डुओंवाला ढेर खिसका और जो मेंड बँधी थी वह पूर्ण हो गयी। इसी प्रकार और सब सामानकी भी वृद्धि होती देखी गयी। यह चमत्कार देखकर हम लोग आश्चर्य चकित हो गये।

इसके पश्चात् आप हम सबको छतपर ले गये और अपने कर कमलोंसे परोसकर हमें भोजन कराया। आपका वह प्रेम अब इस जीवनमें हम कहाँ पा सकते हैं।

भण्डारेके समय एक दुर्घटनासे भी कई लोग आपहीकी कृपासे बाल बाल बच गये थे। बड़े फाटकपर अनेकों भक्त प्रबन्धमें लगे हुए थे। अच्छे मजबूत लट्ठोंकी बाड़ लगा दी गयी थी। केवल एक-एक आदमी ही उसमें होकर निकल सकता था। परन्तु बाहरसे लोगोंने ऐसा जोरसे धक्का लगायाकि फाटक पर जो प्रबन्धक थे वे उसे सँभाल न सके। भीड़ एक साथ भीतरघुस आयी। उसके कारण आठ-दस स्त्री-पुरुष गिर गये और अनेकों आदमी उनके ऊपर होकर निकल गये। यह दशा देखकर जो लोग परोसनेमें लगे थे बड़े जोरसे चिल्लाये, "भीतर आनेवालोंको एकदम पीछे ढकेल दो, नहीं तो जो आदमी नीचे दब गये हैं वे मर जायेंगे।" बस, सब लोगोंने भीड़को ढकेलकर फाटक बन्द कर दिया। फिर नीचे गिरे हुए स्त्री-पुरुषोंको उठाया। उनमें दो पुरुष और एक स्त्रीकी दशा बहुत खराब थी। उसी समय वैद्य और डाक्टर आ गये, क्योंकि सरकारी अस्पतालका कैम्प बाहर ही लगा हुआ था। स्त्रीको तो प्रायः एक घण्टेमें चेत हुआ। यह समाचार जब बाबाने सुना तो वे अपनी कुटीकी गुफामें उतर गये और थोड़ी देरमें पुनः ऊपर आकर बोले, 'उस स्त्रीको भोजन देकर उसे उसके स्थानतक पहुँचा दो।" परन्तु स्त्रीने आग्रह किया कि मैं बाबाके चरण छुए

बिना नहीं जाऊँगी। बाबा उसके पास गये और उन्होंने उसके सिरपर हाथ फेरा। वह बाबाको प्रणामकर उनसे प्रसाद लेकर चली गयी। उसका इस प्रकार सहसा स्वस्थ हो जाना एक विलक्षण चमत्कार ही था।

फिर श्रीमहाराजजीकी आज्ञासे भीड़को एक साथ बाहर बैठाकर भोजन कराया गया। पारसकी सामग्रीको देखते हुए इतने बड़े जनसमुदायको एक साथ भोजन कराना भी आश्चर्य ही था। हम तो यह देखकर चकित हो गये।

(६)

श्रीमहाराजजी जिस समय उन्नीस वर्ष पूर्व आये थे उसी समय मेरा चौथा विवाह हुआ था। वे जब मेरे यहाँ भिक्षा करने आये तब फर्रुखाबादी दण्डीस्वामीने उनसे कहा कि बाबा! इनके चार सम्बन्ध हुए हैं और सन्तानें भी हुई हैं। परन्तु कोई जीवित नहीं रही। तब बाबाने कहा, 'अच्छा।'

जब यहाँसे गङ्गाजीके दूसरी ओर, राजेपुर जाने लगे तो हम पाँच मित्र साइकिलें लेकर साथ चले। हमारा विचार था कि आपको राजेपुर पहुँचाकर वहांसे साइकिलों द्वारा लौट आयेंगे। जब आप गङ्गाजीके जलमें चल रहे थे उस समय आपने मुझे यह उपदेश दिया, "तू जन्मसे फौजी है, अधिक तो कुछ करेगा नहीं, परन्तु इतना अवश्य करना कि नित्यप्रति रामायणके एक दोहेसे दूसरे दोहे तक पाठ कर लेना और नित्य नियम करते रहना। देख तेरे ५ पुत्र होंगे। और तुझे क्या करना है? बस, अब गङ्गापार होते ही घर लौट जा, अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं।" उनकी आज्ञाके कारण हम सब उस पार पहुँचाकर लौट आये। आपके वियोगका हम सभीको बहुत दुःख था। परन्तु आज्ञा शिरोधार्य थी।

आपके आशीर्वादसे मेरे पाँच पुत्र हुए। उनमेंसे चारके नाम आपने क्रमशः कुञ्जविहारी, बनविहारी, श्याम विहारी और छैलविहारी रखे। जब पाँचवाँ पुत्र हुआ और मैंने बम्बईसे लौटते समय वृन्दावनमें आपसे उसकी चर्चा की तो आप बोले, "इसकी छठी छः महीने बाद करना।" मुझे सुनकर चिन्ता हुई। इसके ठीक छः मास पश्चात् एक दिन बीमार रहकर वह स्वर्ग सिधार गया।

श्रीमहाराजजीकी मुझपर बड़ी कृपा थी। वे मुझसे बहुत प्रसन्न रहते थे। उनके सत्सङ्गसे मेरी जो बुरी आदतें थीं वे बहुत कम हो गयीं। मैं उनकी आज्ञाका अधिक-से-अधिक पालन कर रहा हूँ और इसी कारण जीवित भी हूँ। मेरी दृष्टिमें बाबा साक्षात् श्रीशङ्करके अवतार थे। ये सर्वगुणसम्पन्न थे। उनके स्वभावने गरीब-अमीर तथा शत्रु और मित्र सभीको मन्त्रमुग्ध कर रखा था। वे सभीको अपना स्वजन समझकर स्वयं ही सबका ध्यान रखते थे। उनकी स्मरणशक्ति विलक्षण थी। जिसे वे एक बार देख लेते थे उसे कभी नहीं भूलते थे। उनके इस भूतलपर न रहनेसे हमलोग बहुत दुःखी हैं, अब सुख-दुःखमें हमें अपना कोई अवलम्ब दिखायी नहीं देता। केवल उनके आशीर्वादका ही सहारा है।

श्रीमती श्यामा फुआजी, फर्रुखाबाद

पूज्य श्रीमहाराजजी एक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठाके निमित्त से फर्रुखाबाद पधारे थे। उन दिनों कभी-कभी प्रसाद पानेके लिये हमारे घर भी पधारते थे। उस समय तक मेरे उदरसे बारह सन्तानें हो चुकी थीं परन्तु उनमेंसे जीवित एक भी नहीं थी। इसका मेरे चित्तमें बहुत दुःख था। जब बाबा प्रसाद पाकर जाने लगे तो इसी दुःखसे मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। उन्होंने पूछा, "तू क्यों रोती है?" मैंने उन्हें अपना दुःख सुनाया तो वे तख्तपर बैठगये और बोले. अच्छा, अब तू चिन्ता न कर।' ऐसा कहकर उन्होंने अपनी चादरके अञ्चलसे एक गोला (खोपरा) निकाल कर मुझे दिया। वह आजतक हमारे घरमें सुरक्षित है। केवल गुरुपूर्णिमाके दिन ही हम उसे निकालकर गुरुदेवके साथ उसका भी पूजन करते हैं। उसके पश्चात् मेरे दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं. जो आजतक सकुशल हैं।

अभी तीन वर्षकी बात है। पूज्य महाराजजी अपनी लीला संवरण कर चुके थे। हमें केवल उनके चित्रपटस्वरूपका ही सहारा था। मेरी छोटी कन्याका विवाह होनेवाला था। खर्चकी बड़ी तंगी थी। एक दिन कीर्तन करते हुए मैं इसी दुःखसे रोने लगी। उसी अवस्थामें मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए। वे बोले, "तू रोती क्यों है? तुम्हारी चिन्ता तो मुझे है। तुम सब प्रबन्ध करो। मैं एक दिनके लिये आऊँगा और तुम्हारी सब व्यवस्था कर दूँगा।" कन्याके टीकेका दिन

आया । उस दिन हमें ग्यारह सौ रुपयेका एक मनीआर्डर मिला । उसमें भेजनेवाले लिखे थे— श्रीपल्टूबाबाजी, वृन्दावन । हमने महात्माके रुपये विवाहमें लगाने उचित नहीं समझे । अतः उन्हें तो सुरक्षित रखा लड़केने कुछ रुपयेका प्रबन्ध कर लिया । उससे विवाहकार्य सम्पन्न हुआ । पीछे उन रुपयोंको लेकर हम श्रीपल्टूबाबाके पास गये और उनसे रुपया वापस लेनेको कहा । वे बोले, "भला, मेरे पास इतने रुपये कहाँसे आये ? यह सब तो श्रीमहाराजजीकी लीला है । उन्होंने जिस निमित्तसे रुपये भेजे हैं उसीमें उनका उपयोग होना चाहिये । अब विवाह तो हो चुका है । अतः इन रुपयोंका उस लड़कीके गौनेमें लगा दो ।'. हमने उनके आदेशानुसार उन्हें लड़की के गौनेमें खर्च कर दिया । ऐसी उनकी अनूठी अनुकम्पा थी और आज भी है ।

उनकी शरणमें आये मुझे प्रायः पचास साल हो गये हैं । मैं पिताजीके साथ उनके पास आया करती थी । तबसे उनकी अहैतुकी कृपासम्बन्धी कितने अनुभव हुए हैं, कह नहीं सकती । आज भी मेरी सब आवश्यकताओंकी पूर्त्ति वे ही करते हैं । मैं तो बात बातमें उनकी कृपाका अनुभव करती हूँ ।

पं० श्रीनारायणजी दीक्षित, फर्रुखाबाद

(१)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

प्रारम्भमें मैं 'कल्याण' में श्रीमहाराजजीके उपदेश पढ़ा करता था । वे मुझे अत्यन्त प्रिय लगते थे । उन्होंने मेरे हृदयमें आपके दर्शनोंकी लालसा जाग्रत् की । एकबार बाँधके उत्सवपर हमारे यहाँसे बा० श्यामसुन्दरलाल, बा० रामचन्द्र एवं यहाँका रामलीलामण्डल गये । उनके तथा लीलास्वरूपोंके आग्रहसे आपने फर्रुखाबाद पधारना स्वीकार कर लिया । जब सन् १९३४ में आप यहाँ पधारे तभी १८ अक्टूबरको गुड़गाँवा देवीपर मुझे पहलीबार आपके दर्शन हुये । जिस समय आपके चरणकमलोंपर मैंने सिर रखा मेरे सारे शरीरमें रोमाञ्च हो गया । आपके श्रीमुखसे निकला, 'आ गया भैया !" मानो मैं आपका कोई पूर्वपरिचित था मैं तो आश्चर्यचकित रह गया, किन्तु उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं थी ।

मैंने अपना सौभाग्य माना । तुरन्त आज्ञा हुई, "कमण्डलु लेकर आगे-आगे चल ।" मैंने कमण्डलु उठा लिया और आगे-आगे चलकर आपको निर्दिष्ट स्थान ला० रामभरोसेलाल के बगीचेमें ले गया । फिर आपकी आज्ञा हुई, 'तू हर समय मेरे पास रहेगा ।" मेरा इससे बढ़कर क्या सौभाग्य हो सकता था ? मैंने अपनेको परम धन्य माना । अब तो मैं आपका अपना हो था ।

शरत्पूर्णिमाको उत्सव आरम्भ हुआ ओर पूरे कार्तिक मास-भर चलता रहा। इस उत्सवमें पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी, ब्रह्म-चारी श्रीप्रभुदत्तजी, स्वामी शिवानन्दजी (ऋषिकेश), बाबा जयरामदासजी 'दीन' रामायणी एवं और भी अनेकों महापुरुष पधारे थे। वृन्दावनसे श्रीरासमण्डली भी आयी थी। इस प्रकार एक महीनेतक फर्रुखाबादमें कथा, कीर्तन, प्रवचन, सत्संग, राम-लीलाका बड़ा सुन्दर आयोजन रहा। इससे जनताको बड़ा आनन्द हुआ। इसी समय श्रीमहाराजजीने मुझे इष्टमन्त्रकी दीक्षा भी दी। इसके पश्चात् आप शिवपुरी चले गये।

(२)

इसके पश्चात् दूसरी बार आप सन् १९२८ में फर्रुखाबाद पधारे और सन् १९३६ में प्रयागकी अर्धकुम्भीपर जाते हुए भी कुछ दिनों यहाँ ठहरे। आप जब भी पधारते थे स्वाभाविक ही उत्सव-सा होजाता था। ला० राभरोसेलालजीने एक शिवमन्दिर बनवाया था। उसका शिलान्यास आपहीके करकमलों द्वारा हुआ। सन् १९४० में उसकी प्रतिष्ठा होनेवाली थी। उस निमित्तसे आप भी पधारे उस समय पन्द्रह दिनतक खूब उत्सव रहा था। अनेकों संत-महात्माओंके अतिरिक्त वृन्दावनसे रासमण्डली भी आयी।

इस प्रकार ला० रामभरोसेलालके बगीचे में तो आपके तत्त्वावधानमें उत्सव चल रहा था। परन्तु उनके घरपर उनका एक पौत्र अत्यन्त रोगग्रस्त था। वैद्य और डाक्टर तो उसके जीवन से निराश हो चुके थे। एक दिन रात्रिके समय एकान्तमें मैंने श्रीमहाराजजी से उसकी दशा निवेदन की तो आप बोले, "अच्छा, कल उसके घर चलेंगे।" प्रातःकाल ही आप मेरे साथ उनके घर गये। वहाँ अपने भोगमेंसे एक किशमिश उठाकर उस बालकको दी और बोले, "यह तो अब अच्छा हो गया।" बस, उसी समयसे वह बालक स्वस्थ होने लगा और आजतक सकुशल है।

(३)

इन्हीं दिनोंकी बात है, एक दिन पण्डित शीतलदीनजी श्रीरामचरितमानसकी कथा सुना रहे थे। उससमय राजा दुर्गानारायणसिंहजी तिर्वानरेश आपके दर्शनार्थ पधारे। मार्गमें राजासाहब ने अपने मित्र मास्टर कन्हैयालालजीसे सलाह की थी कि महाराजसे वैराग्यके विषयमें प्रश्न करेंगे। आप राजासाहबके बैठते ही उनके प्रश्न किये बिना ही वैराग्यके लक्षणोंका वर्णन करने लगे। इससे राजासाहब बड़े चकित हुए और बोले, 'यही प्रश्न करनेका तो मैंने मार्गमें विचार किया था। जान पड़ता है श्रीमहाराजजी दूसरोंके मनकी बात जान लेते हैं।''

(४)

एकबार मैं कलकत्तेमें बहुत बीमार था एक दिन घबड़ाहट बढ़ गयी और मैं आपके चित्रपटके सम्मुख बहुत रोया। फिर सो गया तो श्रीमहाराजजीने स्वप्नमें मुझे दर्शन दिया और आज्ञा दी कि नवद्वीप चला जा, वहाँ अच्छा हो जायगा। मैं प्रातः काल ही नवद्वीप चला गया। वहाँ स्वप्नमें आपने मुझे प्रसादमें एक गिलास दूध दिया। मैंने उसे पी लिया और उसके पश्चात् मैं स्वस्थ हो गया।

(५)

एकबार मैं परिवारके सहित हरिद्वारके कुम्भमें जानेको तैयार हुआ। उस समय स्वप्नमें आपने मुझे आज्ञा दी कि मत जा। मैं नहीं गया। पीछे मालूम हुआ कि जिस गाड़ीसे मैं जानेवाला था वह पुलसे नीचे गिर गयी है और उस दुर्घटनामें अनेकों यात्री हताहत हुए हैं।

इस प्रकार आपकी अनूठी अनुकम्पाकी सूचक अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएँ जीवनमें हुई हैं। उनका कहाँतक वर्णन

करें। अब भी यदि कोई समस्या उपस्थित होती है तो आपसे प्रार्थना करके सो जाता हूँ और वे स्वप्नमें जैसा आदेश देते हैं वैसा ही करता हूँ। मुझमें क्रोध बहुत अधिक था। आपकी कृपासे उसमें भी बहुत कमी हो गयी है और थोड़ा सन्तोषका भाव भी आगया है। श्रीमहाराजजीको तो मैंने कभी क्रुद्ध नहीं देखा। वे सर्वदा प्रसन्न रहते थे और उनके पास धनी या निर्धन जो भी आता था वही समझता था कि बाबा मेरे अपने हैं और उनकी सबसे अधिक कृपा मुझ पर ही है।

पं० श्रीप्रभाकर श्रीलाल याज्ञिक, बंबई

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री १००८ श्रीउड़ियाबाबाजीकी मेरे ऊपर बाल्यकालसे ही अपार कृपा रही है। मुझे बचपनसेही उनके सम्पर्कमें रहनेका सौभाग्य मिला है। अन्य सज्जनोंकी भाँति मैंने यद्यपि उनकी कोई सेवा नहीं की; फिर भी उनकी बातें और उपदेश मेरे जीवनकी अमूल्य निधि हैं। आज गुरुपूर्णिमा है। उनके पूजनके समय मुझे कुछ बातें स्मरण हो आयीं हैं वे ही मैं लिख रहा हूँ। वैसे तो बाबामें मुझे ऐसी बातें मिली जिन्हें आज-कलके युगमें कोई मानेंगे भी नहीं. परन्तु जो कुछ भी लिख रहा हूँ वह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है।

(१)

सन् १९२९-३० की बात है। मैं कांग्रेसका कार्य करता था। विद्यार्थी जीवन था, तथापि जेल जानेको तैयार रहता था। मेरे पूज्य पिताजी बहुत मना करते थे, परन्तु मैं आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेता ही था। पिताजीने पूज्य महाराजजीसे मेरी शिकायत कर दी। पर महाराजजीने मुझसे कहा, "यदि देशका प्रेम है तो अपनेको देशपर निछावर कर दे। जीवनसे प्रेम मत रख। आवश्यक हो तो अपना बलिदान दे दे।" यह थी उनकी देशभक्ति। मैं जब भी उनके समीप होता वे मुझसे आन्दोलनके हाल-चाल पूछते थे।

(२)

सन् १९३७-३८ में मैं बहुत बीमार पड़ गया। घरवाले मेरे

जीवनसे निराश हो गये। मेरी स्त्रीने पूज्य श्रीमहाराजजीसे मेरे जीवनकी भिक्षा माँगी। हाथरसके एक बगीचेमें उन्होंने उससे कहा कि तू प्रदोषका व्रत रख तथा दुर्गासप्तशतीका एक श्लोक बतलाकर कहा, "तुम दोनों निरन्तर इसका जप किया करो।" आपकी आज्ञा पालन करनेसे थोड़े ही दिनोंमें मैं स्वस्थ हो गया और श्वासका रोग जिससे कि मैं पीड़ित था, मेरे लिये केवल स्मृतिमात्र रह गया।

(३)

जब मैं धनोपार्जन करने लगा तो प्रयत्न करनेपर भी मुझे सफलता न मिली। मैंने पूज्य श्रीमहाराजजीसे कहा तो उन्होंने वनदुर्गाके मन्त्रका उपदेश दिया। उसका कुछ दिन जप करनेसे ही मेरे जीवनका प्रवाह बदल गया। मैं उनकीआज्ञानुसार उसका निरन्तर जप नहीं कर सका। फिर भी जब-जब आर्थिक कष्ट आता है मैं उसी मन्त्रकी शरण लेता हूँ और मेरा कष्ट दूर हो जाता है। यदि मैं निरन्तर जप करता रहूँ तो कष्ट आवे ही नहीं।

(४)

एक बार पूज्य बाबाने मुझसे पूछा कि तू सप्तशतीका पाठ करता है या नहीं? मैंने कहा, 'नहीं मुझे इसकी दीक्षा नहीं मिली है।" उन्होंने कहा, "मैं पढ़ाऊँगा।" परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिलता था। मैंने एक दिन उन्हें स्मरण कराया। तब कहा, "प्रातःकाल चार बजे तेरे घरपर आकर पढ़ाऊँगा।" दूसरे दिन सवेरे पौने चार बजे अन्धेरे ही में आप मेरे घरपर आगये और मुझे पाठ पढ़ाया।

(५)

पूज्य श्रीमहाराजजी अनूपशहरमें सिकन्दराबादवालोंकी धर्मशालामें ठहरे हुए थे। एकादशीका दिन था। आपके साथ पन्द्रह-बीस भक्त और थे। उनके सिवा शहरके भी तीस-चालीस

व्यक्ति आपके पास ही प्रसाद पाते थे। उस दिन आपने आज्ञा की कि आज कोईयहाँ भिक्षा नहीं करेगा,शहरमें जाकर मांगकरभिक्षा करो। और दिन तो लोगोंके घरोंसे इतना सामान आ जाता था कि सबकी भिक्षा हो जाती थी। उस दिन आपकी ऐसी आज्ञा होनेके कारण केवल पाँच-सात घरोंसे आपके लिये ही फलाहार आया। ठीक भिक्षाके समय आपने सबको आज्ञा दे दी कि भोजन करने बैठो। देखते-देखते वहाँ तीस-चालीस आदमी बैठ गये। मैं घबड़ाया कि सामान तो कुछ है नहीं और आदमी इतने बैठ गये। भागकर बाजार गया कि कुछ खरबूजे ले आऊँ। परन्तु खरबूजा एक भी न मिला। आकर देखा सबलोग भिक्षा कर रहे हैं। पूज्य बाबा स्वयं सामान देते हैं और दूसरे लोग परोस रहे हैं। उतने सामानमें ही सबकी भिक्षा हो गयी। जिस कमरेमें सामान था उसमें किसीको नहीं जाने दिया।

(६)

एक बार एक सज्जन मेरे यहाँ आये। उनकी पूज्य महाराजजीमें विशेषश्रद्धा नहीं थी। बोलेकि वे कुछ चमत्कार दिखावें तब तो हमारी भी श्रद्धा हो सकती है। बात बातमें यह तय हुआ कि आज हम बाबासे बंबईकी मोसम्बी माँगेंगे। इसके थोड़ी ही देर बाद बाबाके पाससे एक आदमी आया। उसने कहा, "महाराजजीने श्रीलाल (मेरे पिताजी)के लिये ये मोसम्बी भेजी हैं।" यह देखकर हम आश्चर्यमें रह गये।

ऐसी अनेकों घटनाएँ मैंने देखी हैं। सब लिखनेसे बहुत विस्तार हो जायगा। आज वे हमारे सामने नहीं हैं, किन्तु उनकी सरलता और उनके प्रेमका जब स्मरण करता हूँ तो उन्हें अपने सामने ही पाता हूँ। मेरा विश्वास है कि उनके बताये मार्गपर चलकर कोई दुःखी नहीं रह सकता

(गुरुपूर्णिमा, सं० २०१४ वि०)

———

श्रीगिरीशचन्द्रजी, इटावा

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके दर्शनोंसे पूर्व मैंने कुछ ऐसी घटनाएँ सुनी थीं जिनके कारण उनके श्रीचरणोंके प्रति मेरा आकर्षण हुआ उनमेंसे कुछ नीचे लिखता हूँ—

(१) मेरे भाई तथा कुछ अन्य परिचित लोग फर्रुखाबाद के संकीर्तनोत्सवमें सम्मिलित हुए थे। उन्होंने वहाँसे आकर कहा कि श्रीमहाराजजीके दर्शनोंसे उन्हें बड़ी शान्ति मिली। ऐसे उच्च कोटिके संत संसारमें विरले ही होंगे।

(२) इलाहाबादके खजानेके डिप्टी (Treasury officer) श्रीराधेलालजीकी धर्मपत्नीने नीचे लिखी बातें सुनाते हुए श्रीमहाराजजीकी बड़ी प्रशंसा की—

(क) उनका कोई पुत्र जीवित नहीं रहता था। अन्तमें उन्होंने अपने पुत्र बालकोको श्रीमहाराजजीके चरणोंमें डाल दिया। इस समय वह बालक एम० ए० में अध्ययन कर रहा है और पूर्णतया स्वस्थ है।

(ख) एकबार प्रयागकी अर्ध कुम्भीके समय श्रीमहाराजजी सहस्रों मनुष्योंके बीचमें खड़े थे। इन्हें आपके दर्शन नहीं हो रहे थे। तब ज्यों ही इन्होंने उनका स्मरण किया कि वे इनके सम्मुख आकर पूछने लगे, "बेटा! क्या बात है।" इन्होंने प्रेमविभोर होकर चरणस्पर्श किया। इससे इन्हें निश्चय हुआ कि श्रीमहाराजजी अन्तर्यामी हैं।

(३) मेरी एक भावज (स्वर्गीय रिखेश्वरी प्रसादजीकी पत्नी)श्रीमहाराजजीकी बहुत कृपापात्र थीं। उन्होंने आपकेविषय में कुछ ऐसी घटनाएँ सुनायी थीं जिनसे उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी। उन्हींमें से एक घटना यह थी जिसे वे अपनी आँखों देखी बताती थीं। एकबार श्रीमहाराजजी बांध पर अपनी कुटियामें जिस चौकीपर बैठे थे उसीपर एक सर्प आकर फन उठाकर बैठ गया। थोड़ी देरमें श्रीमहाराजजीने कहा, 'बेटा जाओ।' यह सुनते ही वह सर्प लौटकर चला गया।

इन सब घटनाओंको सुनकर श्रीमहाराजजीके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गयी और सन् १९३७ की गुरुपूर्णिमापर कर्णवासमें मैंने उनके पहली बार दर्शन किये। उसी समय मुझे उनसे गुरुमन्त्र भी प्राप्त हुआ। श्रीमहाराजजी मेरे कर्णवास पहुँचनेसे कुछ पीछे पहुँचे थे और पूज्य श्रीहरिबाबाजी पहले आ गये थे। वे इस समय उत्तरकाशीसे पधारे थे और वहां उपस्थित भक्तोंको अपना अनुभव सुना रहे थे। उन्होंने कहा कि एक रात पहले ही उन्होंने यह स्वप्न देखा कि बाबा (श्रीमहाराजजी)मुझसे गुरुपूर्णिमापर कर्णवास पहुँचनेके लिये कह रहे हैं। अतः मैं तुरन्त मोटर और रेल द्वारा जैसे बना वैसे यहाँ पहुँचा हूँ। वहाँसे चलकर मैंने दाँतौन भी कर्णवासमें ही की है।

इस जीवनमें श्रीमहाराजजीके मैंने अनेकों चमत्कार देखे हैं। उनमेंसे कुछ घटनाएँ मैं नीचे लिखता हूँ—

एकबार काजिमाबादमें संकीर्तनोत्सव था। मैं भी उस समय वहाँ उपस्थित था। आकाशमें वर्षा होनेकाकोई लक्षण नहीं था। किन्तु महाराजजीने कहा, "अभी बड़ेजोरकी वर्षा होनेवाली है, सब लोग अपने-अपने घर चले जायँ।" किसीने कोई ध्यान

न दिया। थोड़ी ही देरमें मेरे देखते-देखते मूसलाधार वर्षा होने लगी।

(२)

उसी वर्ष होलीके अवसरपर मेरी एक अँग्रेजसे बात हुई। वे माँ श्रीआनन्दमयीके साथ रहते थे। उन्होंने बताया कि जब मैं विलायतमें था तभी मुझे कुछ योग (आसन-प्रणायामादि) का चाव था। उस समय क्रियामें त्रुटि होनेके कारण मेरे सिरमें दर्द रहने लगा। कुछ मस्तिष्कमें भी दोष आ गया था। जब मैंने सुना कि श्रीउड़िया बाबाजी बहुत बड़े योगी हैं तो मैं उनके पास आया। उन्होंने मेरी गर्दनपर एक हल्की-सी थपकी दी। उससे मेरा सारा कष्ट निवृत्त हो गया।

उन्होंने दूसरी घटना यह सुनायी कि होलीके अवसर पर मुझे लोगोंने रङ्गसे बिलकुल सराबोर कर दिया था। मैं सर्दीसे काँपने लगा और इस भयसे कि अब अधिक रङ्ग न डाला जाय शिवजीके मन्दिरके पीछे खड़ा हो गया। मैं सोचने लगा कि यहाँ बड़ा अनर्थ होता है जो एक परदेशीको इसप्रकार तंग कियाजाता है। बाबा किसीका कोई ख्याल नहीं रखते। मैं यहाँ से चला जाऊँगा। इतनेहीमें बाबा मेरे पास आ गये और बोले, "क्या बात है ?" इतना कहकर उन्होंने मेरा सिर अपनी नाभिके पास लगा लिया। उनका स्पर्श होतेही मेरे सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी और सारी सर्दी दूर हो गयी।

(३)

हम लोग जब श्रीमहाराजजीके पहले निर्वाणोत्सव पर वृन्दाबन गये थे तो दिल्लीवाली धर्मशालामें ठहरे थे। एकरात्रि-में प्रातःकाल उठनेसे पूर्व स्वप्नमें देखा कि श्रीमहाराजजी एक उच्च सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके चारोंओर अनेकों देवगण

आसनोंपर बैठे हुए हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया तो वे मुझसे बोले, "बेटा ! तुम लोग दुःखी क्यों होते हो ? मैं कहीं गया थोड़े ही हूँ। पहले मैं श्रीवृन्दावनमें भगवद्भजन करता था, अब यहाँ प्रेमानन्दमें निमग्न हूँ। तुम निद्रा और आलस्य त्यागकर भगवान्‌के भजनमें लग जाओ। यह मानव देह केवल भजनके लिये ही मिला है। उन्होंने निम्नांकित पद सर्वदा ध्यानमें रखनेका आदेश दिया—

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधनधाम विबुधदुरलभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों॥
कोटिन मुख कहि जात न प्रभुके एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगि हों दीजै परम उदार॥१॥
विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहौं विपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥२॥
कृपा डोरि बनसी पद-अंकुस परम प्रेम मृदु चारौ।
यहि विधि बेगि हरिय दुख मेरो कौतुक राम तिहारौ॥३॥
हैं श्रुति विदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यह जीव मोह-रजु जो बाँध्यो सोइ छोरै॥४॥

(४)

सन् १९३७-३८ की बात है, मैं, मेरी वृद्धा माताजी और मेरे चाचाजी श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ बबरेला रेलवे स्टेशन (जिला आगरा) गये। जब वहाँसे चलनेकी आज्ञा चाही तो श्रीमहाराजजीने हमसे प्रसाद ग्रहण करनेका आग्रह किया। मेरे यह कहने पर कि गाड़ी छूट जायगी आपने कहा, 'बेटा ! चिन्ता न करो, गाड़ी अवश्य मिलेगी।" हम प्रसाद ग्रहण करके चले। हमें दूरसे ही गाड़ी स्टेशनपर खड़ी दिखायी दी। मेरे चाचाजी दौड़कर स्टेशनपर पहुँच गये और गार्डसे अनुनय-विनय करके

थोड़ी देर गाड़ी रोकनेके लिये कहने लगे, जिससे हम भी उसमें चढ़ जावें। गार्डने कहा, 'यह कोई छकड़ा तो है नहीं" और हरी झंडी दिखाकर गाड़ी छोड़ दी। हम स्टेशनकी ओर बढ़ रहे थे और श्रीमहाराजजीके वचनोंको स्मरण करते जाते थे। जबगाड़ी हमारे समीप आयी तो मैं और माताजी पटरीसे कुछ हट गये। इतने ही में गार्डने लाल झंडी दिखाकर गाड़ी रोक दी और हमसे कहा, "झटपट गाड़ीमें चढ़ जाओ।" हम वैठ गये और गाड़ी हमको लेकर चल दी। ईदगाह स्टेशनके पासहमारा लोटा चलती गाड़ी में से गिर गया। परन्तु जहाँ हम लोग ठहरे थे वहाँ कोई सज्जन यह कहकर लोटा दे गये कि यह लोटा इटावेवाले गिरीश बाबूका है। स्मरण रहे. हम लोग यहाँ परदेशी थे।

श्रीमहाराजजीकी ऐसी अनोखी लीला और वाक्यसिद्धि देखकर हम चकित रह गये।

[५]

सन् १९३९ में मैं आगरा कालेजके कार्यालयकी नौकरी छोड़ कर अपनी धर्मपत्नीके सहित श्रीवृन्दावन चला आया। कुछ दिन बीतने पर श्रीमहाराजजीने कहा, "बेटा! अब तेरे पास खर्चा नहीं रहा है, तू घर चला जा। तुझे वहीं अच्छी नौकरी मिल जायगी।" ऐसा कहकर आपने मार्गव्ययके लिये अपने पाससे कुछ रुपये दिये, जिनमें से दो अभीतक मेरे पास शेष हैं। इटावे आते ही मुझे वर्तमान नौकरी मिली, जो पहली नौकरीकी अपेक्षा बहुत अच्छी है।

इटावा आते समय हमारे पास श्रीमहाराजजीका दिया हुआ टिकट (लवंगप्रसाद) था। टूंडला स्टेशन पर एक बदमाश हमारा बक्स उठाकर ले गया। उसमें कुछ बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणादि थे। बहुत खोजकी, परन्तु कोई पता न लगा। किन्तु इस नैराश्यके अन्धकारमें भी श्रीमहाराजजीका टिकट मेरे लिये

आशा दीपके समान था ।मैं उसे लिये हुए दूसरी गाड़ीसे कानपुर गया । वहाँ कानपुर स्टेशनपर अपना बक्स सर्वथा सुरक्षित पाकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा ।

[६]

एकबार श्रीवृन्दावनमें मैंने गाजरके हलुएका प्रसाद भेंट किया । श्रीमहाराजजीने सबको प्रसाद बाँट दिया । मेरी तो भावना थी कि श्रीमहाराजजीको भोग लगाकर मैं प्रसाद घर ले जाऊंगा, किन्तु आपने उसे भक्तोंमें वितरित्त कर दिया । पर जब मैंने घर आकर कटोरदान खोला तो उसमें हलुआ ज्यों का त्यों था ।

[७]

श्रीवृन्दावनमें मैंने सुना था कि एकबार मथुरासे कोई सेठ कार द्वारा आपके दर्शनोंके लिये आया । मार्गमें उसने ड्राइवरसे कहा कि मुझे दो-तीन प्रश्न पूछने हैं. परन्तु तुम देखोगे कि श्रीमहाराजजी विना पूछे ही मेरे प्रश्नों का उत्तर देदेंगे । ड्राइवर यह देखकर चकित हो गया कि श्रीमहाराजजीके पास पहुँचनेपर वही हुआ जैसा कि सेठजीने कहा था ।

सेठजीने श्रीमहाराजजीसेपूछा कि आपने मेरे मनकी बात कैसे जान ली । इस पर आप बोले,"एक कमरेकी आमने-सामने की दो दीवारोंपर चित्रकारी करनेके लिये दो कारीगरोंको नियुक्त किया गया । बीचमें एक पर्दा डाल दिया गया और कहा कि जिसकी चित्रकारी बढ़िया होगी उसे पुरस्कार दिया जायगा । एक कारीगरने चित्रकारी आरम्भ कर दी और दूसरेने दीवारको रगड़करदर्पणके समान चमकदार बना दिया । जब पर्दा हटाया गया तो चित्रकारीका स्पष्ट प्रतिबिम्व सामनेकीदीवारमें दिखायी देने लगा । इसी प्रकार जब भगवद्भजनकी रगड़से हृदय स्वच्छ हो जाता है तो उसमें दूसरे मनुष्यके हृदयका संकल्प प्रतिबिम्बित होने लगता है और वह दूसरेके हृदयको बात जान जाता है ।"

(८)

इटावेमें नवलविहारी टण्डन नामके एक भक्त हैं। एकबार श्रीमहाराजजीके पास जाते समय उन्होंने केवड़ाकी शीशी खरीदी और उसे अपने कोटकी ऊपरकी जेबमें रख लिया। दैववश वह शीशी उनकी जेबसे गिरकर टूट गयी। इत्रकी सुगन्ध सव ओर फैल गयी। इसी समय जहाँ श्रीमहाराजजी थे वहाँ भी वैसी ही महक मालूम हुई। महाराजजीने उपस्थित भक्तोंसे कहा "देखो कैसी अच्छी सुगन्ध है।" जव टण्डन साहब पहुँचे और इन्होंने श्रीमहाराजजीके चरणस्पर्श किये तो आप बोले, "बेटा! तेरा केवड़ा बहुत अच्छा था। उसकी सगन्ध इटावेसे उड़कर यहाँ तक आ गयी।" तथा दूसरे भक्तोंसे कहा, "दखो, वह सुगन्ध इस (टण्डन) के ही केवड़ेकी थी।"

(९)

मेरे कोई सन्तान नहीं थी। स्त्रीकागर्भ नष्टहो जाता था यह बात मेरी भावजने श्रीमहाराजजीसे कही। उन्होंने कह दिया, "इस बार ठीक होगा। यदि कोई गड़बड़ हो तो मेरा स्मरण कर ले।" उनके आशीर्वाद से ठीक ही हुआ। अब उन्हींकी कृपासे दो पुत्र और एक पुत्री हैं। एक विशेष बात यह हुई कि जिस तिथिको वृन्दावनमें पुत्रकी कामना व्यक्त की गयी थी उसी तिथि को पुत्रका जन्म भी हुआ।

इसी प्रकार श्रीमहाराजजीके विषयमें और भी अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएं इन आँखोंसे देखी हैं। उन्हें लिखकर मैं इस लेखका कलेवर और अधिक नहीं वढ़ाना चाहता। अधिक क्या, मेरा तो सब कुछ उन्हींका कृपाप्रसाद है और वे सदैव मेरी रक्षा करते हैं—ऐसा मेरा विश्वास है।

———

श्रीमुंशीलालजी, मोहनपुर (एटा)

साधनके पथपर

एक दिन बाबाने मुझसे पूछा,"तेरा चित्त भगवान् श्रीकृष्ण-की ओर अधिक खिचता है या श्रीरामजीकी ओर ?" मैंने उत्तर दिया, "श्रीकृष्णकी ओर" तब उन्होंने मुझे भगवान् कृष्णका एक मन्त्र बतलाया और श्रीरामचरितमानसका पाठ करनेकी आज्ञा दी ।

मैं पहले चर्स पिया करता था । बाबा एक दिन बोले,"तू चर्स पीना छोड़ दे ।" मैंने कहा 'मुझसे चर्स छूटता नहीं है ।" तब बोले,"उसके बदलेमें पान खा लिया कर ।" आपकी आज्ञासे मैंने चर्स छोड़ दिया और पान खाने लगा । फिर तो धीरे-धीरे पान खाना भी छूट गया ।

अयाचित कृपा

सन् १९३३ ई० की बात है. एक दिन दोपहरके समय मैं श्रीमहाराजजीको पंखा झल रहा था । एकाएक बाबा बोले, "तू क्या चाहता है ?" यद्यपि मेरेमन में अनेकों कामनाएँ उठा करती थीं,तथापि उस समय तो बड़े-बड़े भक्तोंकी तरह मुँहसे यही निकला ' महाराजजी ! मैं तो कुछ नहीं चाहता ।" आप बोले, "नहीं, मैं जानता हूँ, तुम्हारे मनमें और विशेषतः तुम्हारी स्त्रीके मनमें एक लड़केकी इच्छा है ।सो लड़का तो हो जायगा, परन्तु

फिर स्त्री नहीं रहेगी।" मैंने कहा, "महाराज ! मैं ऐसा लड़का नहीं चाहता। जब स्त्री ही नहीं रहेगी तो मैं लड़केको गलेसे बाँधकर कहाँ लटकाये फिरूंगा ?" इसपर बाबा हँस पड़े।

इसके दूसरे दिन जब मेरी स्त्री लड़कीके साथ बाबाका पूजन कर रही थी तब आपने अपनी प्रसादी माला लड़कीके गले-में डाल दी और स्त्रीसे कहा, "इसके एक लड़का होगा, और वही तुम्हारे पास रहेगा।" उसके डेढ़वर्ष बाद, जब कि लड़की हमारे घरपर ही थी, उसके एकलड़का हुआ। उसके नामकरण संस्कारके दिन बाबा स्वयं घरपर आ गये। मैंने बच्चेको उनके चरणोंमें डाल दिया। बाबा बोले, "अरे ! उठा, उठा; मैंने इसका नाम हरिशङ्कर रखदिया।" वह बालक अबभी मेरे ही घरपर रहता है

मांस छुड़ाया

मोहनपुरके कारिन्दा चौधरी अब्दुल मजीद खाँको शिकार-का बहुत शौक था। मांस तो खाते ही थे। उनको गुर्देका दर्द होने लगा। जब दर्द होता तो उनके प्राणोंपर आ बीतती। सैकड़ों रुपये खर्च किये, फिरभी दर्दसे छुटकारा न मिला। बाबामें उनकी श्रद्धा थी। उनके पास आते-जाते और उनका उपदेश सुना करते थे। एकदिन बाबासे प्रार्थनाकी,' महाराज ! गुर्देका दर्द दूर नहीं होता, क्या करें ?" बाबा बोले, "दर्द तो दूर हो जायगा, तुम मांस खाना छोड़ दो।" चौधरी साहबने मांस खाना छोड़ दिया और साथ ही शिकार करना भी। बस, उनका दर्द जातारहा और फिर कभी नहीं हुआ।

मुसलमानकी भिक्षा

एक मुसलमान भक्त थे हकदाद। बाबामें उनकी अच्छी श्रद्धा-भक्ति थी। हिन्दुओंके घरोंमें बाबाको भिक्षा पाते देखकर

उनके मनमें अपने यहाँ उन्हें भोजन करानेकी इच्छा हुई। एक दिन उन्होंने प्रार्थना की "गरीब-परवर ! आप सबके घरोंमें दावत खाते हैं, महरबानी करके एक दिन मेरे घरपर भी दावत मंजूर फरमावें।" बाबाने कह दिया, 'अच्छा, किसी दिन चलेंगे।"

एक दिन जब वे आये तभी बाबाने कह दिया, "हकदाद ! आज हम तुम्हारे घर चलेंगे।" फिर हम पाँच-सात आदमियोंको लेकर बाबा उनके घर पर गये। उन्होंने एकसुन्दर आसनपर उन्हें बिठाया और अंगूर-सेव आदि फल उनके सामने रखे। बाबाने उनमेंसे एक फल हाथमें उठा लिया और हमें संकेत करदिया, सो शेष सब फल हमलोगोंने उठालिये। फिर थोड़ीदेर ठहरकर उनसे बात-चीत करके उन्हें सन्तुष्ट करते हुए बाबा बोले, 'अब तो तुम्हारी इच्छा पूरी हो गयी ?" हकदाद बोले, 'हाँ हुजूर !"तब बाबा वहाँसे चल दिये और हम लोगोंने वे फल आपसमें बाँटकर खा लिये।

लड़का लौटा

एक बार मौजीराम कायस्थका लड़का जगदीश आगरेसे ला पता होगया। बड़ी ढूँढ़-खोज की गयी, परन्तु कहीं पता न लगा। बड़े परेशान हुए। तब मैंने और पुत्तूलालने मौजीरामसे कहा कि तुम श्रीमहाराजजीके पास चले जाओ। उनके साथ हम लोग भी वृन्दावन गये और बाबासे उनका दुःख निवेदन किया। उन्हें दया आ गयी और वे चुपचाप गुफामें चले गये। प्रायः पौन घंटेमें वहाँसे लौटे और शान्तिपूर्वक बोले, "जाओ, तीन-चार दिनोंमें लड़का आ जायगा।" हम लोग दूसरे दिन प्रातःकाल ही चले आये। चौथे दिन लड़का स्वयं ही आगया। हम सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उससे सब हाल पूछा तो उसने बताया कि एकाएक मेरे मनमें उचाट हो गया। कहीं मेरामन लगता ही नहीं

मोहनपुरके भक्त

प्रथम पदार्पण

सन् १९१५ ई० की बात है, श्रीमहाराजजी शहबाजपुरके पास सुनगढ़ीमें श्रीगङ्गाजीके तटपर पं० मोतीरामजीकी पाठशाला में ठहरे हुए थे। वहाँ जो विद्यार्थी पढ़ते थे उन्हें आप भी सारस्वतचन्द्रिका पढ़ा दिया करते थे। मोहनपुरके कुछ प्रेमी प्रत्येक पूर्णिमापर गङ्गास्नानकेलिये शहबाजपुर जाया करतेथे। सौभाग्यवश उन्हें बाबाके दर्शन होगये। उन दिनों आपकी बालवत् चेष्टा रहती थी। उस समय आप बालकोंको कुछ उपदेश कर रहे थे। आपके दर्शन करके और उपदेश सुनकर मोहनपुरके भक्त मुग्ध हो गये और आपसे मोहनपुर चलनेका आग्रह करने लगे। बाबाने उन प्रेमियोंकी प्रार्थना स्वीकार करली और चैत्रकी पूर्णिमाकेदिन मोहनपुर पधारे। गाँवके दक्षिण ओर बाबा बालकदासकी एक पुरानी समाधि है, आपने वही स्थान पसंद किया। वहींएक विल्व वृक्षके नीचे फूसकी कुटिया बना दी गयी, उसीमें आपने आसन लगाया। उनदिनों आपके पासएक काष्ठपात्र,एकखद्दरका चादरा, एक बगलबन्दी और कौपीन-इतना ही सामान था। इससे अधिक वस्त्र आपने स्वीकार नहीं किया। साथ ही एक ताड़पत्रकी कापी और उसपर लिखनेके लिये लोहेकी कील भी थो। उस कापीमें आपनेउड़िया अक्षरोंमें कुछ लिखरखा था और यदा-कदा लिखते भी रहते थे। भिक्षाका ऐसा नियम था कि या तो दो चार घरोंसे

माधूकरी भिक्षा ले आते थे या कुछ घरोंमेंसे किसी एकमें ही बैठ कर पा लेते थे। जैसी आपकी मौज होती वैसा कर लेते।

ध्यानस्थिति

उन दिनों ध्यानाभ्यासमें आपकी स्थिति बहुत बढ़ी-चढ़ी हुई थी। आप कभी-कभी तो सारी रात सिद्धासनसे बैठे रहते थे। चौबीसों घंटे पहरा लगानेपर भी आपको कभी सोते नहीं देखा गया। ध्यानकालमें यदि मुँह खुला होता तो उसमें मक्खियाँ जाती-आती रहती थीं; पर आपको उनका कोई भान नहीं होता था। किसीनेमुँहमें भोजनका ग्रास दिया और उसी समय आप ध्यानस्थ हो गये तो वह ग्रास घंटों मुँहमें ही पड़ा रहता था। उसे चबानेकी प्रवृत्ति नहीं होती थी।

ग्रामवासियोंकी प्रीति

मोहनपुरके भक्त विशेष पढ़े-लिखे तो थे नहीं, परन्तु उनपर आपका प्रेम बहुत था और वे भी आपसे बहुत प्रेम करते थे। वहाँके बालकोंके प्रति भी आपका अत्यन्त स्नेह था। आप नये-नये दृष्टान्त देकर उन्हें उपदेश भी किया करते थे। आपके पास हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आर्यसमाजी आदि सभी विचारोंके लोग आते थे और सभीकी आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। आप सभीको भगवन्नामकीर्तन और अतिथिसेवाका उपदेश करते थे और सभी लोग आपके उपदेशको बड़े चावसे सुनते एवं यथासम्भव कार्यान्वित भी करते थे।

एक बार कुछ लोगोंको आपके विषयमें कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ और वे आपकी परीक्षा करनेके लिये कुटीपर पहुँचे। परन्तु वे जो-जो प्रश्न आपसे पूछना चाहते थे उन सबके उत्तर आपने बिना पूछे ही उन्हें समझा दिये। इससे वे लोग आपके अत्यन्त

प्रेमी वन गये। इस प्रकार आपके प्रेमियोंकी संख्या दिनों दिन बढ़ती गयी। आपके पास लोग जो फल, फूल और मिष्ठान्न आदि लाते थे उन्हें आप बाँट दिया करते थे। आपके पास थोड़ा प्रसाद भी बहुत हो जाता था। एकदिन तीन चार व्यक्ति एक पुड़ियामें थोड़ीसी इलायची लेकर इसी उद्देश्यसे आपके पास गये कि देखें, इतनी इलायचियाँ आप इतने जन-समूहको कैसे बाँटेंगे। परन्तु स्वामीजीने उन्हींमेंसे एक व्यक्तिके हाथमें वह पुड़िया देकर कहा कि सबको बाँट दे। वे महाशय घबड़ाये कि इतनी थोड़ी इलायचियाँ इतने विशाल जनसमूहको कैसे बाँटी जायँगी। उन्हें दुविधामें पड़े देखकर आप दुवारा वोले, "सोचता क्या है ? दो-दो इलायची सबको दे डाल।' उन्होंने वैसा ही किया और सबको दे चुकने पर भी जब पुड़ियामें देखा तो उसमें कुछ इलायचियाँ बची थीं। यह आश्चर्य देखकर उन सबकी भी आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति हो गयी।

कुटिया पर हर समय दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती थी। महाराजजीके कृपाकटाक्षसे बहुत-से निर्धन धनी हो गये, पुत्रहीनोंको पुत्र प्राप्त हुए और रोगी नीरोग हो गये। आप किसीको भी दुःखी नहीं देख सकते थे और दूसरोंके मनकी छिपी वातोंको भी जान लेते थे। आपसे किसीके मनकी वात छिपी नहीं रह सकती थी। रामायणमें प्रसङ्ग आया है कि श्रीलक्ष्मणजीके जब शक्ति लगी तो रावणके सहस्रों योद्धा भी उन्हें उठाने में समर्थ न हुए। कभी-कभी आप भी ऐसा ही खेल किया करते थे। आप लेट जाते और कहते कि हमें उठाओ। तब बहुत-से आदमी मिलकर भी आपको पृथ्वीसे तिलमात्र नहीं उठा पाते थे; यद्यपि उन दिनों आपका शरीर बहुत ही दुबला-पतला था।

पञ्च कन्याएँ

मोहनपुरका पुरुषसमाज तो महाराजजीमें श्रद्धा-भक्ति रखता ही था, प्रत्युत माताओं की भी आपमें अटूट श्रद्धा थी। किसी-किसीका तो आपके प्रति पुत्रवत् वात्सल्य था। आप उनकी गोद में सिर रखकर लेट जाते और वे जब मुँहमें ग्रास देतीं तो लेटे-लेटे ही खाते रहते। उनमेंसे कुछ गीत गा-गाकर आपको सुनाती थीं। उन माताओंमेंसे पाँच बाल-बिधवा थीं। वे पाँचों ही ब्राह्मणी थीं और उनकी आयु भी अधिक थी। आपने उनका नाम 'पञ्चकन्या' रख दिया था। उनके नाम थे—जानकी गीता, पार्वती, यमुना और जयदेवी। इनमें जानकी बहुत अच्छा गाती थी और गीता ढोलक बजानेमें निपुण थी। शेष तीनों मँजीरा बजाती थीं। जबतक आप मोहनपुरमें रहे थे पञ्चकन्याएँ मध्याह्नोत्तर तीन बजेके लगभग कुटीपर जातीं और आपको अपने बीचमें बैठाकर तुलसीदास सूरदास, मीराबाई एवं नरसी आदि भक्तोंके पद गाकर सुनाया करतीं। यह उनका नियम था। आप उनके पदोंको बड़े प्रेमसे सुना करते थे।

बालवत् क्रीड़ा

इस समय यद्यपि श्रीस्वामीजीकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊँची थो, तथापि वे अनेकों बालवत् क्रीड़ाएँ किया करते थे। मोहनपुरनिवासियोंको उनकी जैसी बाल लीलाओंको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे दूसरोंके लिये दुर्लभ ही रही हैं। इसे चाहे तो मोहनपुरवालोंके पूर्व सुकृतोंका परिणाम कहो, चाहे श्री-स्वामीजो महाराजकी अहैतुकी कृपा। श्रीस्वामीजी महाराज जिन घरोंमें मध्याह्नके समय भिक्षा करते थे, त्यौहार आदि विशेष अव-सरोंपर उन सभीमें जा-जाकर थोड़ा-थोड़ा प्रसाद पाते थे। रात्रिमें वे कुछ भी खाना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु फिर भी भक्तजन

पराँवठे या दूध ले ही जाते थे और उन्हें खिलाकरही लौटते थे। उस समयके भोजनकी भी अनोखी पद्धति थी। एक भक्त कुछ ले जाता तो आप कहते, "मैं नहीं खाऊँगा, मुझे अफरा हो रहा है।" वह पहले तो निहोरा करता। परन्तु जब आग्रहसे काम न चलता तो हाथ पकड़ लेता और जबरदस्ती मुँहमें ठूँसता। अब तो आपको मुँह चलाना ही पड़ता। इस प्रकार जैसे-तैसे वह खिलाकर जाता कि दूसरा भक्त भी कुछ लेकर पहुँच जाता। वह कहता, "बाबा! भोजन कर लो।" परन्तु आपका तो वही पेटेण्ट उत्तर होता—"मैं नहीं खाऊँगा; मुझे अफरा हो रहा है।" वह कहता "अफरा हो रहा है तो उसका कैसे खा लिया? जैसे उसका खाया वैसे मेरा भी खाओ।" जब इस प्रकार आप न मानते तो वह भी उसी उपायका आश्रय लेता। हाथ पकड़ लेता और जबरदस्ती मुँहमें ठूँसने लगता। तब आपको उसका अन्न भी खाना पड़ता। इस प्रकार कई लोग आपको जबरदस्ती खिला-पिला जाते। भक्तोंका उनपर प्रेम था और उनकी भक्तोंपर कृपा थी। अतः वे उनके प्रेमपूर्ण आग्रहको टाल नहीं सकते थे।

रात्रिमें बाबाकी कुटियापर दूध भी पर्याप्त मात्रामें आता था। पर आप एक बूँद भी दूध नहीं पीते थे। जब कोई भक्त जबरदस्ती पिलानेका प्रयत्न करता तोआप बड़े जोरसे चिल्लाने लगते, 'अरे रामदास! चल-चल, मिश्रीने मुझे मार डाला।" रामदास आपका बड़ा प्रेमी भक्त था। जब ऐसे काम न चलता तो दो आदमी आपके हाथ पकड़ लेते और तीसरा मुँहमें दूध उड़ेलने लगता। अब तो आपको दूध पीना ही पड़ता। ऐसी थी आपकी वह बालहटमयी विचित्र लीला।

आपके पास चाहे कितना ही प्रसाद आ जाय, जबतक आप स्वयं उठाकर न देते अथवा किसीको आज्ञा न करते तबतक

कोई भी व्यक्ति प्रसादसे हाथ नहीं लगा सकता था और न किसी को उसमेंसे दे ही सकता था। जब दर्शनार्थियोंकी भीड़ अधिक तङ्ग करने लगती तो प्रेमी लोग बाबाको तालेमें बंद कर देते, जिससे लोग समझते कि बाबा कहीं बाहर गये हुए हैं। उन दिनों आपका ऐसा स्वभाव था कि यदि कहीं जाना होता था तो बिना किसीसे कुछ कहे-सुने चुपचाप चल देते थे इसलिये यदि भक्तोंको तनिक भी ऐसा सन्देह होता कि आप जाना चाहते हैं तो कुटिया में बंद करके ताला लगा देते, जिससे कहीं चले न जायँ। यद्यपि लोग आपका चरणामृत लेते, चन्दन लगाते, पूजा करते तथा महाप्रसाद भी लेते थे, तथापि प्रेमकी ऐसी अटपटी चाल ही है कि ये आपके साथ जबरदस्ती करनेसे नहीं चूकते थे। आप भी भक्तों की ऐसी चेष्टाओंसे बुरा नहीं मानते थे। कई बार तो ऐसा भी देखा गया कि रात्रिमें भक्तजन आपको तालेमें बंद करके आये और सबेरे वहाँ जानेपर आपको बाहर टहलते पाया।

लोग जिसे 'बूआ' कहते उसे आप भी 'बूआ' कहते और जिसे 'चाचा' कहते उससे आप भी 'चाचा' कहकर बोलते। मोहनपुर के भक्तोंने वास्तवमें बाबाके महत्त्वको नहीं जाना। हम लोग तो उनके साथ ग्वालबालोंकी तरह खिलवाड़ करते रहे। वे हमारे घरोंकी सास-बहुओंके झगड़े भी निपटाया करते थे और जब भिक्षामें देरी होती तो घरका काम-काज भी कर दिया करते थे।

स्वामीजीको बम्बामें स्नान करना बहुत पसन्द था। बालकों पर भी उनका बहुत स्नेह था। बालक उन्हें जबरदस्ती खिलाते-पिलाते भी थे। जब आप बम्बामें स्नान करने जाते तो साथमें बालमण्डली भी लग जाती। रास्ता चलते समय यदि वे किसीके कंधेपर चढ़ जाते तो कभी कोई बालक उनकेकंधेपर चढ़ बैठता। जलमें घुसकर सबके साथ खूब जलक्रीड़ा होती। वे दूसरोंपर जल

उलीचते और दूसरे उनपर जल उलीचते । कभी स्वामीजी भैंसा बन जाते और तीन-चार बालकोंको अपनी पीठपर चढ़ा लेते और फिर सबको लिये जलमें गोता लगा जाते । तब बालक कूद-कूदकर भागने लगते । कभी 'लालबहू' का खेल खेलते । एक लाल ईंट लेते उसीका नाम होता लाल बहू । उसे बम्बाके जल में फेंककर पूछते, "लाल बहू किसकी ?" सब कहते, "मेरी ।" अच्छा तो सब ढूँढ़ो । सब ढूँढ़ते और जिसे वह मिल जाती उसकी लाल बहू मानी जाती । कभी आप जलमें डुबकी लगाकर भीतर ही भीतर आकर मगरकी तरह किसी बालकका पैर खींचते और कभी कोई बालक आपका पैर पकड़कर खींचता । इसी प्रकार कभी दो बालकोंकी बाहें आपसमें मिलाकर आप बीचमें उन्हें पकड़कर लटक जाते । इस तरह अनेकों क्रीड़ाएँ हुआ करतीं ।

एक बात कहते हुए तो हमें बड़ी लज्जा आती है । वह यह कि हम उनसे डेल फुड़वाया करते थे । और वे अपनी महत्ताको छिपाये चुपचाप डेल फोड़ा करते थे । जैसे समुद्रमें रहते समय अमृतमय चन्द्रमाको मछलियाँ नहीं जान सकीं और जिस प्रकार सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाको यदुवंशी नहीं जान सके, उसी प्रकार हम अज्ञानी जीव बाबाकी महिमाको न जानकर उन से ग्वालबालोंकी भाँति खेल-कूद करनेमें अपना समय बिताते रहे । उनका ऊँचा तत्त्वज्ञान हम कुछ नहीं समझ पाते थे । केवल इतना ही समझते थे कि हमपर उनकी अपार कृपा है । हमारा पूजा-पाठ भी यही था कि हरसमय उनकी सेवामें उपस्थित रहें । कभी-कभी हम लोग बाबाकी सवारी भी निकालते थे । एकबार आपको सिंहासनपर बिठाकर फूलोंकी वर्षा करते हुए सारी बस्तीमें जुलूस निकाला गया । जगह-जगह आरती उतारी गयी और सर्वत्र जय-जयकार हुआ । दो बार पाँवडे डालते हुए बस्तीमें ले गये । किन्तु पीछे आपने मना कर दिया ।

प्रस्थान

यह हमारा सौभाग्य था और उनकी अहैतुकी कृपा, जो हम उनके साथ इस प्रकार खेलते रहे। परन्तु किसीने ठीक ही कहा है—'रमता योगी बहता पानी इनको कौन सके बिरमाय?' हम अपने सौभाग्यातिशयसे गर्वित हो उठे। हम समझने लगे कि अब बाबा कहीं जा नहीं सकते। एक दिन आपने किसी माताके मुँहसे यह गर्वोक्ति भी सुन ली कि अब बाबा हमें छोड़कर कहीं जा नहीं सकते। बस, उसी समय आपने मन ही मन मोहनपुरसे जानेका सकल्प कर लिया। अत्यन्त दयालु तो थे ही इसलिये यह मनका भाव किसीको बताया नहीं। एक दिन चुपचाप आप मोहनपुर छोड़कर चले गये। पीछे भी दो-चार बार आपका शुभागमन तो हुआ. परन्तु वह तो एक जोगीकी फेरी ही थी। दस-बीस दिन ठहरे और चल दिये। हम लोग उत्सवोंपर जहाँ-तहाँ जाकर उनके दर्शन करते रहे, किन्तु अब वह सुख कहाँ था। अन्तमें जब हमारे पुण्य क्षीण हो गये तो आपने अपनी लौकिक लीला संवरण कर ली। हम हाथ मलते, पछताते और अपने भाग्यको कोसते रह गये। अपने हाथ आये महामूल्यमय रत्नको हमने खो दिया। अब, इस जीवनमें आशा की किरण इतनी ही है कि वे हमें अपना समझते थे और हमपर अहैतुकी कृपादृष्टि रखते थे और उनकी वह कृपादृष्टि अब भी कहीं गयी नहीं है, ज्योंकी त्यों बनी हुई है। अतः उनके सहारे हमारी जीवन-नौका इस भवसागरसे पार लग ही जायगी।

———

ब्रह्मचारी श्रीशिवानन्दजी [श्रीआञ्जनेयजी]

प्रथम दर्शन

सत चरित सुभ सरिस कपासू। विरस विसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। वन्दनीय जेहिं जग जस पावा ॥
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।

भगवान् श्याम सुन्दर और सन्त श्रीदासशेष स्वामी की अनूठी अनुकम्पा से मैंने प्रभुप्राप्तिके लिये गृहस्थाश्रम का त्याग किया और किन्हीं सच्चे संतकी खोजमें मैं प्रयाग पहुँचा। परन्तु मुझे किन्हीं ऐसे भगवत्प्राण मधुमय महापुरुषके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त न हुआ जो मेरे जीवन को निर्विकार और मधुर बनाकर उसे मानवमात्रके लिये उपयोगी बनादें। प्रयागमें ही सबसे पहले श्रीसीताराम बाबा और आनन्द ब्रह्मचारीजी के मुखसे मैंने पूज्यपाद श्रीउड़िया बाबाजी और श्रीहरिबाबाजी के शुभ नाम सुने। वहाँसे मैं वृन्दावन होता बाँध पर पहुँचा। यह बाँध भगवन्नामका प्रतीक ही है और इस रूपमें मानो पूज्यपाद श्री हरिबाबाजीकी करुणा एवं दीनवत्सलता ही मूर्त्तिमती हुई है। मैं सत्संगभवन में गया और वहाँ दोनों महापुरुषों को विराजमान देखा। उनमें एक बड़ी शान्त और गम्भीर मुद्रा में सिर नीचा किये बैठे थे और दूसरे अवधूतशिरोमणि ध्यानमग्न अवस्था में सिद्धासनसे विराजमान थे। उनके रोम रोमसे प्रसन्नता एवं

आनन्दका झरना झर रहा था। यही थी उनकी शाश्वती सहज स्थिति।

कथा सम्पूर्ण होनेपर मैंने देखा कि सभी के साथ मिलने जुलने और बातचीत करने में भी उनके मंगलमय वदनारविन्द से प्रेम और प्रसन्नता की वह सुशीतल एवं स्निग्ध धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। मैंने आरम्भ से ही देखा कि अपने संसर्ग में आनेवाले लोगोंकी लौकिक पारलौकिक एवं पारमार्थिक सभी प्रकार की समस्याओं और उलझनों को वे बड़ी आत्मीयता और सहानुभूति से सुलझाते हैं। उन्होंने मानों सम्पूर्ण प्राणियों के हित के लिये अपने को उत्सर्ग किया हुआ था। उनके जीवन में मुझे उदारता के सौन्दर्य, त्याग के आनन्द और सरलता एवं समता के महत्व की झाँकी हुई। मैंने देखा कि सचमुच वे दीन-हीनों के लिये, उग्र प्रकृतिवालों के लिये, विषयासक्तों के लिये और हठपूर्वक अपना अपराध स्वीकार न करनेवालों के लिये भी पूर्ण कृपामय थे। उन दिनों मैंने अपने एक मित्र को लिखा था कि आजकल मैं जिन महापुरुष के पास रहता हूँ उनमें कविकुलचूड़ामणि श्रीभवभूति के कहे सन्त के सभी लक्षण चरितार्थ होते हैं—

> प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
> प्रकृत्या कल्याणी गतिरनवगीतः परिचयः।
> पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासित रसं,
> रहस्यं साधूनां निरुपधिविशुद्धं विजयते ॥ *

---

*महापुरुषों के विशुद्ध एवं निष्कपट जीवन का रहस्य यही है कि उनकी रहनी प्रायः सबको प्रिय लगती है। उसमें विनय की — निरभिमानता की मिठास भरी रहती है, उनकी वाणी में नियम होता है। उनकी बुद्धि सहज स्वभाव से ही सबका कल्याण चाहती है।

साधननिर्देश

श्रीमहाराज जी की शरण में आने के पश्चात् प्रथम दिवस से ही मैंने देखा कि मुझ पर उनका पूर्ण वात्सल्य है। उन्होंने मेरे साधन का निश्चय किया। अपने बालक की तरह वे मुझे रखते थे और कभी जाने के लिये नहीं कहते थे, यद्यपि मेरा स्वभाव असंयत, व्यवहार शिष्टाचारशून्य और जीवन साधनहीन था। उन्होंने मुझे गीताके इस श्लोक पर ध्यान देने और इसके तात्पर्य का अनुसरण करने की आज्ञा दी थी—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥ * (१२।८)

मैंने इसका तात्पर्य यही समझा कि मुझे निरन्तर गुरुदेव का ध्यान और गुरुमन्त्र का जप करना चाहिये—'गुरुमूर्तेः सदा-ध्यानं गुरुमन्त्रं सदा जपेत्।'

एक दिन गंगास्नान के लिये जाते समय आपने मेरी ओर संकेत करके कहा था—"इस लड़के को राग नहीं है।" इस पर रामेश्वर जीने कहा, "यह तो अच्छी बात है।" तब आप बोले, "नहीं, राग बिना वैराग्य भी नहीं होता।"

श्री महाराज जी की यह उक्ति आज मुझे सर्वथा सत्य जान पड़ती है। गुरुदेव और उनकी दी हुई साधनामें राग न होने के कारण मेरे साधना में वैसा विकास नहीं हो रहा है जैसा होना

उनके आस-पास के लोग भी निन्दित आचरण से मुक्त हो जाते हैं। प्रथम मिलन में अथवा अन्तिम मिलन में कभी भी उनके स्नेहरस में कटुता नहीं आती। सच पूछें तो यह महापुरुषों का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है।

* मेरे ही में मन लगाओ, मेरे ही में बुद्धि स्थिर करो। ऐसा करने से अन्त में तुम निःसन्देह मेरे में ही निवास करोगे।

चाहिये था।

गुरु और गोविन्द एक हैं

अब मेरा जीवन उनके चरणकमलों की छत्रच्छाया में व्यतीत होने लगा। बीच-बीच में मुझे कई बार उनकी अन्तर्यामिता के विषय में अनुभव हुए एक बार उनसे विना पूछे मैंने अपने घरवालों को अपनी वियोगव्यथा के लिये सान्त्वना देने के उद्देश्य से पत्र लिखा। परन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि मैं स्वयं एक प्रकार की मानसिक उलझन में पड़ गया। एक दिन कर्णवास में प्रसाद पाकर मैं अपनी गुफामें गया। वहाँ बैठे-बैठे मुझे एक दिव्य प्रकाश दिखायी दिया। उससे मेरा चित्त बड़ा समाहित होगया। उस प्रकाश से मुझे मुरली हीन भगवान् मुरलीमनोहर की भुवनमोहिनी मधुर मूर्त्ति के दर्शन हुए। वे द्वार में से भीतर की ओर झाँक रहे थे। उनके साथ श्रीमहाराजजी के भी दशन हुए। परन्तु उनका शरीर श्रीश्यामसुन्दर की ही तरह नीलोज्वल था। वे ध्यानमुद्रा में विराजमान थे। श्रीश्यामसुन्दर ने महाराजजी की ओर सकेत किया और अन्तर्हित हो गये। उसके पश्चात् श्री महाराज जी भी अन्तर्धान हो गये।

इसका तात्पर्य मैंने यही समझा कि जिन भगवान् श्याम सुन्दर ने मुझे घर से निकाला था वे ही अब संकेत करके बता रहे हैं कि श्रीमहाराजजी मेरे ही वर्तमान विग्रह हैं। उनके रूप में स्वयं मैं ही तुम्हारा गुरु, पथप्रदर्शक और संरक्षक हूँ। कहा भी है—

"आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्धयासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥ *

(भाग० ११।१७।२७)

*आचार्यको स्वयं मेरा ही स्वरूप समझे, कभी उनका अपमान

'यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ।। ×

इस प्रकार उन्होंने मुझे मानो गोविन्दके साथ वर्ण, स्वभाव, आचरण और उपदेश गुरुदेवकी एकता सूचित कर दी। इससे मेरी मानसिक उलझन निवृत्त हो गयी।

शत्रु पर भी प्यार

एक दिन कर्णवासमें आप कुछ भक्तोंके साथ जा रहे थे। अकस्मात् सामनेसे एक आदमी दौड़ता हुआ आया और उसने उछलकर आपकी गर्दन पकड़ ली। आप गिरते-गिरते बचे। भक्तोंने उसे पकड़ लिया और पीटने लगे। पर आपने सबको डाँटते हुए कहा, "यह तो बावला है, इसे मारो मत" फिर उसे चाय पिलायी, मिठाईखिलायी व कपड़ा दिया ऐसी थी उनकी सहृदयता। आप कहा करते थे "साधु वही है जो शत्रुको भी हृदयसे लगाता है।"

'क्रुध्यन्त न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्ट कुशलं वदेत्।
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।। *

"अड़तेसे टलते रहो जलतेसे जल होय।
ऐसा साधु कबीर का मार सके नहिं कोय ।।"

उनकी रहनी

पूज्य श्रीमहाराजजी की रहनी-सहनी पूर्णतया एक जीवन्मुक्त

न करे और न मानव-बुद्धि करके उनका तिरस्कार ही करे, क्यों कि गुरुदेव सर्वदेवमय होते हैं।

× जिसकी भगवान्में अत्यन्त भक्ति है और जैसी भक्ति भगवान् में है वैसी ही गुरुदेव में भी है उस महात्माको ही इन बताये हुए रहस्यों का अनुभव होगा।

* क्रोध करनेवालोंके प्रति क्रोध न करे, कोई बुरा कहे तो भी मिष्टभाषण करे, निन्दा को सहन करे और किसीका अपमान न करे।

महापुरुष की रहनी थी। उनमें भगवान् शंकराचार्यकी यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती थी—

"मौने मौनी गुणिनि गुणवान् पण्डिते पण्डितश्च
दीने दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनि प्राप्तभोगः।
मूर्खे मूर्खो युवतिषु युवा वाग्मिनि प्रौढवाग्मी
धन्यः कोऽपि त्रिभुवनजयी योऽवधूतेऽवधूतः। *

(जीवन्मुक्तानन्दलहरी १८)

वे नित्य उत्सवस्वरूप थे। कहीं भी रहते वहीं एक उत्सव-सा हो जाता था। उनके पास जाने-आनेकी हर समय सबके लिये छूट थी। अपने दैनिक जीवनमें, औरों की तो क्या, जो प्रतिकूल प्रकृति के लोग होते थे वे उनकी भी प्रीति और रुचि रख देते थे—'शठ सेवककी प्रीति रुचि राखहिं राम कृपालु।' वे पूर्णतया अदोषदर्शी थे।

आश्रितरक्षा

श्रीचेतनदेवजी आपके एक अनन्यनिष्ठ सेवक थे। वे बीमार पड़े। उन्हें आन्त्रिक क्षय और राजयक्ष्मा दोनों ही रोग थे। ऐसे संक्रामक रोगोंसे सभी लोग भय मानते हैं। अतः आश्रमवालोंने उन्हें एक प्रकारसे त्याग ही दिया। बाबा रामदासजीके सिवा और कोई उनके पास तक नहीं जाता था। हम लोग उन्हें परम-हंस आश्रममें ले गये। आश्रम छोड़ते समय उन्हें बहुत दुःख

* जो मौनियोंमें मौनी, गुणियोंमें गुणवान्, पण्डितों में पण्डित, दीनों में दीन, सुखियों में सुखी और भोगियोंमें भोगी जान पड़ता है तथा मूर्खोंमें मूर्ख, युवतियोंमें युवा, बोलनेवालोंमें अत्यन्त वाक्पटु और अवधूतोंमे अवधूत है अपने स्वानुभववैभव से तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाला वह महापुरुष धन्य है।

हुआ। कहने लगे, "मैंने एक-एक ईंट ढोकर आश्रम बनानेमें सहयोग दिया था।" लोग उनके पास जानेसे श्रीमहाराजजीको भी रोकते थे। परन्तु वे चुपचाप रातमें ही आते थे। उस समय वे उन्हें आश्वासन देते और अपनी कृपामयी दृष्टिसे उनके दुःख-को हल्का करते थे। प्यारपूर्वक उनके सिरपर हाथ फेरते थे और उन्हें जल पिलाते थे। उनसे कहते कि कोई नहीं देखता तो न सही, मैं तो तुम्हारे साथ हूँ। एक बार श्रीविशारदजीने आप-को अकेले उनके पास जाते देखा तो वे साथ हो लिये। उनसे आप आँखोंमें आँसू भरकर बोले, "चिरञ्जी! ये लोग कैसे हैं? यदि यह रोग मुझे हो जाता तो मुझे भी ये आश्रममें न रहने देते।" एक बार चेतनदेवजीकी बहिन उन्हें देखनेके लिये आयीं। उसने उन्हें स्पर्शतक नहीं किया और न कोई आर्थिक सहायता ही दी। श्रीमहाराजजी कहने लगे, 'देखो, देखो, यह संसार कैसा है। यहाँ कौन किसका भाई और कौन किसकी बहिन? यह सब कुछ इस बहिनको ही दे आया था।"

एक बार उन्हें भयङ्कर दस्त हुए। वह वेदना सहन न कर सकनेके कारण वे रोने लगे। तब आप बोले, "अच्छा, मैं तुम्हारे लिये कीर्तन कराऊँगा, तुम ठीक हो जाओगे।" परन्तु कीर्तन-मण्डलीके आनेसे पूर्व ही वे ठीक हो गये और फिर प्राणान्तपर्यन्त उन्हें कोई असह्य वेदना नहीं हुई।

मुझे श्रीमहाराजजीने उनकी सेवा सौंपी थी। कहा करते थे, 'मैंने इसे सूली पर चढ़ाया है।' परन्तु मैं तो केवल निमित्त-मात्र था। करते-धरते तो सब कुछ वे ही थे। जिस दिन उनका शरीर शान्त हुआ उसके दूसरे ही दिन ब्राह्म मुहूर्त्तमें मैंने देखा कि श्रीमहाराजजीका बालसूर्यके समान एक तेजोमय विग्रह मेरे शरीरसे निकलकर अन्तरिक्षमें अन्तर्धान हो गया। मैं बहुत

रोया। मैंने अनुभव किया कि यह सारी सेवा तो आपने ही मेरे भीतर रह कर की थी. मुझे केवल झूठी प्रतिष्ठा दिलायी। सच है—

उमा दारु योषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गुसाईं।'

उन दिनों मेरे दिल, दिमाग और ओज सभी अलौकिक थे। अब मैं कङ्काल हूँ। उसके पश्चात् आप मुझे कुटियाके ऊपर ले गये और बोले, 'जैसे यह सब इदम् (दृश्य) है वैसे ही इस शरीरको भी दृश्यरूप देखो। मस्त रहो। याद रखो—आँख बन्द करने पर 'नेह नानास्ति किञ्चन' है और आँख खोलने पर सर्वं खल्विदं ब्रह्म' है।

उनकी कुछ बातें

आप प्रायः कहा करते थे—'इस एक श्रुतिसे ही ज्ञान हो सकता है 'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः।' यहाँ आकाश' का अर्थ है कुछ नहीं' अर्थात् आत्मासे कुछ नहीं हुआ।

अभ्यासपर आपका सर्वदा जोर रहता था और अधिक पढने-लिखनेका निषेध करते थे कहा करते थे कि पहले बहुत टीकाएँ कहाँ थीं। अपने मरनेके लिये तो एक सूई काफी है। 'नानुध्यायाद्बहून्छब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्। आपको यह श्लोक बहुत प्रिय था—

'सन्त्यज्य शास्त्रजातं संव्यवहारं च सर्वतस्त्यक्त्वा।
आश्रित्य पूर्णपदवीमास्ते निष्कम्पदीपवद्योगी॥' *

* शास्त्रसमुदायको त्यागकर और सम्पूर्ण व्यवहारको भी सब प्रकार छोड़कर योगी को पूर्ण पदका आश्रय ले निष्कम्प दीपकके समान स्थिर रहना चाहिये।

(२)

एक बार आप वायुसेवनके लिये जा रहे थे। हम लोग साथ थे। उस समय मनोहरजीने पूछा, "आपका सिद्धान्त क्या है ?" आप बोले—

'ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥' *

फिर एक रिटायर्ड जजने, जो उनदिनों विरक्तजीवन व्यतीत करते थे और एक आश्रमके ट्रस्टी थे, पूछा, "मुझे लोग आश्रमके ट्रस्टका प्रधान बनाना चाहते हैं। आप महान् पुरुष हैं, अपने अनुभवसे बताइये, मुझे यह पद स्वीकार करना चाहिये या नहीं ?"

आप बोले, ' महन्त होना महा पाप है। पुण्यवान् तो वही है जो व्रजवासियोंके टुकड़े खाकर 'जय जय कुञ्जबिहारी' रटे और वृक्षोंके तले पड़ा रहे।"

(३)

आगरेकी यात्रामें आपने कहा था—"गुरु वही है जो सबसे राग छुड़ाता है और अपनेमें भी मोह नहीं कराता।"

एक बार चम्बलके किनारे आपने प्रसन्नतापूर्वक कहा था—"हमारा सब परिकर सुखी है।" फिर बोले "जो मेरे दिये मन्त्रका अभ्यास करेगा उसे प्रेतादिकी बाधा नहीं होगी और वह सदा सुखी रहेगा।" आपकी इस उक्तिकी सत्यता अनेकों साधकोंने अनुभव की है।

---

* ज्ञाननिष्ठ विरक्त अथवा मेरा निष्काम भक्त होकर सम्पूर्ण आश्रमोंको उनके लिंगोंके सहित त्याग कर विधि-विधानके अधीन न रहकर व्यवहार करे।

(४)

श्रीवृन्दावनमें माता सरोजिनी नामकी एक बङ्गदेशीया महिला थीं। वे बड़ी भगवद्भक्त विदुषी और साधु प्रकृतिकी थीं। पूर्वाश्रममें श्रीअरविन्द घोषसे भी उनका सम्पर्क रहा था। श्रीमहाराजजीमें उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे उन्हें 'गोपालजी' कहा करती थीं। जब वे बीमार हुईं तो श्रीमहाराजजीने मुझे उनकी सेवामें रखा। एक दिन प्रातःकाल वे मुझसे बोलीं, "आज रातमें मुझे बड़ी असह्य वेदना हुई। उस समय गोपालजी दिव्य देहसे मेरे पास आये और मेरा दुःख शमन करके चले गये"

उनका अन्तकाल उपस्थित होनेसे पूर्व श्रीमहाराजजी उनके पास आये और उनसे पूछा, "यदि तुम्हारे सामने हजारों कृष्ण नाँच रहे हों तो भी क्या तुम्हें ऐसा अनुभव होगा कि ये केवल प्रतीतिमात्र और सत्ताशून्य हैं ?"

माँने कहा, 'गोपालजी ! यदि आपकी कृपा होगी तो हो जायगा।"

(५)

महानिर्वाणके दो दिन पूर्व आपने भगवान् शङ्कराचार्यकी योगतारावलीके इन श्लोकोंको लाल पैंसिलसे रेखाङ्कित किया था—

'नेत्रे ययोन्मेषनिमेषशून्ये वायुर्यया वर्जितरेचपूरः ।
मनश्च संकल्पविकल्पशून्यं मनोन्मनी सा मयि संनिधत्ताम ॥
उन्मन्यवस्थाधिगमाय विद्वन्नुपायमेकं तव निर्दिशायः ।
पश्यन्नुदासीनतया प्रपञ्चं संकल्पमुन्मूलय सावधानः ॥' *

(१७।१९)

---

* जिसके द्वारा नेत्र निमेष-उन्मेषसे रहित हो जाते हैं प्राण आने-जानेसे रुक जाता है और मन संकल्प-विकल्पहीन हो जाता है वह

(६)

हम लोगोंसे कहा करते थे कि किसीमें राग द्वेष मत करो। यह प्रपञ्च आत्मदृष्टिसे आत्मा है, भगवद्दृष्टिसे भगवान् है और मायिकदृष्टिसे माया है। अतः इसमें राग-द्वेषके लिये कोई अवकाश नहीं है।

एक वार बावा रामदासजी पटना गये थे। वहाँ उनका अच्छा मान हुआ। जब वे लौट कर आये तब आपने उनसे कहा, "बेटा! मान हज्म करना कठिन है। देखो—

तृणतुलिताखिलजगतां करतलकलिताखिलरहस्यानाम्।
श्लाघावारवधूटीघटदासत्वं सुदुर्निरसम्॥' *

आपके लिये तो मानापमानका कोई अर्थ ही नहीं था। कहा करते थे– निन्दा-स्तुतिको चिड़ियोंके शब्दके समान समझो।'

निर्वाणके समय भी आपने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया कि 'छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेत। उपल इव तिष्ठासेत्। आकाशमिव तिष्ठासेत्।' अर्थात् शरीरका छेदन होनेपर भी न तो क्रोध करे और न काँपे ही। पत्थरकी तरह निश्चल रहे तथा आकाश की तरह निर्विकार रहे।

आज हम अकुलाते हैं कि माधुर्य और दयासे पूर्ण वह मधुर मूर्ति अब कब और कहाँ मिलेगी ?

मनकी उन्मनी अवस्था मुझे प्राप्त हो। हे विद्वन्! उन्मनी अवस्थाकी प्राप्तिके लिये मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। इस प्रपञ्चको उदासीन दृष्टिसे देखते हुए तुम सावधानीसे संकल्पको निःशेष करो।

* जिन लोगोंने सम्पूर्णजगत्को तृणके समान समझ रखा है, और इसका सम्पूर्ण रहस्य जिनकी मुट्ठीमें है उनके लिये भी प्रशंसा-रूपी वेश्याकी गुलामीको त्यागना अत्यन्त कठिन है।

उपसंहार

धर्म, विज्ञान और जीवनकी शोध करनेवाले व्यक्तिको श्रीमहाराजजीके जीवनद्वारा पता लगता है कि पूर्णताकी प्राप्ति केवल मनोजय, धैर्य और तपस्याके द्वारा ही हो सकतीहै। अतः जो महापुरुष सभीके अन्तरात्मरूपसे सभीके साथ अभिन्न होकर रहता है वही पूर्णता प्राप्त कर सकता है। जो दूसरोंके लिये उदार और स्वयं संयमशील है वही समाजमें सबके लिये आदर्शस्वरूप हो जाता है। भारतवर्षमें त्याग ही शक्तिका स्रोत है। उन्होंने हमें सिखाया कि सर्वस्व खोकर भी अपने स्वरूपको सुरक्षित रखो। मुक्तात्माके प्रेमकी कोई सीमा नहीं होती। सभीमें वे अपने चिन्मय दिव्य स्वरूपकी झाँकी करते हैं और अपने व्यक्तित्वका सर्वभूतहितके लिये बलिदान कर देते हैं।

श्रीऋषिजी ब्रह्मचारी, कर्णवास

जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में जब मेरे हृदय में कुछ वैराग्यकी भावना का उदय हुआ तो मैं भगवत्प्राप्ति की लालसा से किसी अच्छे महात्मा की खोज करने लगा। मैं किन्हीं ऐसे महापुरुष की शरण लेना चाहता था जो पूर्णतया विरक्त और सिद्ध हों। इसी अन्वेषण में मैं पर्वतों में विचर रहा था। मेरे पूर्वपुण्य का उदय हुआ। श्री भगवान् की कृपा से वहाँ मुझको एक सत्पुरुष मिले। उन्होंने मुझे बड़े प्रेमसे समझाया कि जिस प्रकार के महापुरुष की खोज में तुम पहाड़ों मेंभ्रमण कर रहे हो वैसे तो तुम्हारे ही प्रान्त में विद्यमान हैं। वे हैं श्रीउड़िया बाबाजी महाराज। तुम जाकर उनकी शरण ग्रहण करो।

उनकी यह बात सुनकर मैं वहाँ से चला आया। सौभाग्य से उन दिनों बाबा समीप ही शिवपुरीमें विराजमानथे। मैंने वहीं जाकर उनके दर्शन किये और गुरुभाव से चरणों में प्रणाम किया। बाबाने पूछा, "भैया! तुम कौन हो और कहाँसे आये हो?" मैंने अपना परिचय देते हुए कहा; "महाराजजी! मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिये। इसी निमित्तसे मैं आपकी सेवा में आया हूँ।" इस पर बाबा बोले, "मैं जो कुछ कहता हूँ उसे मानो। तीन वर्ष तक गायत्रीका पुरश्चरण करो।" मैंने स्थान के विषय में पूछा तो उन्होंने श्रीगंगातट पर नरवर में रहकर अनुष्ठान करने की आज्ञा दी। इस प्रकार मुझे पूज्य बाबाके चरणों का आश्रय मिला। उसके पश्चात् उनकी आज्ञानुसार नरवर जाकर मैंने गायत्री का एक पुरश्चरण किया। फिर कर्णवास में मैंने बाबाके दर्शन किये इस बार उन्होंने दूसरा अनुष्ठान करने की आज्ञा दी।

बाबाकी आज्ञानुसार मैंने दूसरा पुरश्चरण भी पूरा किया। उसकी समाप्ति पर एक यज्ञ करने की मेरी इच्छा हुई। भगवत्कृपा से एक श्रद्धालु भक्तने यज्ञ की सब सामग्री जुटा देनेका वचन दे दिया। परन्तु यज्ञारम्भ का एक दिन शेष रह जानेपर भी सामग्री नहीं पहुँची। मैं घबड़ाकर बाबाके पास गया और उन्हें अपनी चिन्ता सुनायी। उन्होंने कहा, 'अच्छा एक दिन और प्रतीक्षा करो।" बस उसी दिन वह भक्त सब सामग्री लेकर पहुँच गया। ब्राह्मण पहिले से निमन्त्रित थे ही। अतः श्रीमहाराजजी की सन्निधि में बड़े आनन्द से यज्ञ सम्पन्न हो गया। वहाँ से बाबा बाँध पर चले गये।

जब मैं बाँध पर आपकी सेवा में पहुँचा तो आपने मुझे तीसरा पुरश्चरण आर करने को आज्ञा दी। उस समय मेरी इच्छा संन्यास ग्रहण करने की हो रही थी। मैंने बाबाके आगे अपना संकल्प प्रकट किया तो वे बोले, "अभी तुम्हारी संन्यास ग्रहण करने की अवस्था नहीं हुई है। यदि तुम संन्याम ले लोगे तो फिर तुम्हारा मेरे साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा।" बाबाकी यह आज्ञा शिरोधार्य कर मैंने संन्यास का संकल्प त्याग दिया और कर्णवास जाकर तीसरा पुरश्चरण किया।

एक बार मेरे सामने इष्टदर्शन की चर्चा चल रही थी। उस वार्तालाप का मेरे चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं बहुत ही दुःखी हुआ। मन ही मन सोचने लगा कि अनेकों महात्माओं को अपने इष्टदेव का दर्शन हुआ है, परन्तु मैं ऐसा मन्दभाग्य हूँ कि तीन पुरश्चरण करने पर भी मुझे दर्शन नहीं हुआ। इस प्रकार दुःखित चित्तसे विचार करता मैं रात्रि को सो गया। रात्रि के अन्त में मुझे स्वप्नावस्थामें श्रीगायत्रीदेवीने दर्शन दिया तथापि जाग्रत् अवस्थामें दर्शन न होने के कारण मेरा मानसिक खेद बनाही रहा। तब मैंने बाबा के पास जाकर अपने

मन की बात कही। वे बोले, "भैया! कलियुग में स्वप्नदर्शन भी बहुत है। इसमें दुःख मानने की कोई बात नहीं है। और युगों की अपेक्षा कलियुग में चतुर्गुण अनुष्ठान करने का नियम है। इसलिये अभी तुम जाकर एक अनुष्ठान और करो। मेरा विश्वास है कि मुझे यह गायत्रीदर्शन पूज्य बाबाके संकल्प से ही हुआ था।

इसी प्रकार एकबार स्वप्न में ही मुझे ज्योतिर्मय प्रकाश-पुञ्ज के रूप में कैलाश का दर्शन हुआ। उस समय स्वप्न में ही कोई महापुरुष बता रहे थे— यह कैलाश है।" मैं समझता हूँ यह चमत्कार भी पूज्य बाबाकी कृपाका ही परिणाम था, क्योंकि जीवन में मैंने तो कभी कैलाश के दर्शन किये नहीं हैं।

एकबार श्रीमहाराजजी हाथरस का उत्सव समाप्त करके श्रीवृन्दावन जा रहे थे। साथमें अन्य कई भक्तों के सहित मैं भी था। एकादशी तिथि थी। मैंने सोचा कि लोग बाबाको सिद्ध पुरुष बताते हैं। यहाँ न तो आस-पास कोई गाँव है और न इनके साथ ही कोई खाद्य पदार्थ हैं। यदि यहाँ सबके लिये फलाहार आ जाय तो मैं भी समझूँगा कि बाबा सिद्ध पुरुष हैं। बस, थोड़ी ही देर में एक अपरिचित व्यक्ति आया। वह अपने साथ मेवा, फल आदि बहुत सा फलाहारी सामान लिये हुए था। वह सब सामग्री उसने बाबाको भेंट कर दी। इससे मुझे विश्वास हो गया कि बाबा अवश्य सिद्ध हैं। इसके बाद भी ऐसा कई बार हुआ है कि मेरे कुछ न कहने पर भी बाबा ने मेरी इच्छा जान कर मुझे खाने-पीने की वस्तुएँ और वस्त्रादि दिये हैं। इससे मुझे निश्चय है कि बाबामें दूसरे के मन की बातों को जान लेने का सामर्थ्य था।

पं० किशोरीलालजी, कर्णवास

प्रथम दर्शन

पूज्य बाबा सबसे पहले सन् १९१६ में कर्णवास पधारे थे। उन दिनों आप अहर्निश झाड़ीमें ही रहते थे। केवल मध्याह्नमें पक्के घाटपर आते और ब्रह्मचारी शम्भुदत्त तथा बालब्रह्मचारिणी जमुना बाईसे माधूकरी भिक्षा लेकर पुनः झाड़ीमें ही चले जाते थे। मुझे उन्हीं दिनों श्रीहनुमानजीके मन्दिरपर पहली बार आपका दर्शन हुआ। इस प्रकार प्रायः चार मास ठहरकर आप भेरिया चले गये। वहीं श्रीअच्युतमुनि जी, श्रीबंगाली बाबाजी, श्रीहरिबाबाजी और स्वामी शास्त्रानन्दजी आदि महापुरुषोंसे आपकी भेंट हुई।

दूसरी बार

दूसरी बार सन् १९१८ में आषाढ़ शुक्ला एकादशीके दिन बाबा आये और हनुमानजीके सामनेवाले अट्टेपर ठहरे। इस कुटीमें पहले गंगाराम सनम नामके एक ब्रह्मचारी रहते थे। यहाँ रात्रिमें जब आप ध्यान करनेके लिये बैठते तो एक छायामूर्त्ति आपके सामने आकर बैठ जाती। वह करती कुछ नहीं थी किन्तु बाबाके मनमें उसके सम्बन्धमें विचार होने लगता था। एकदिन आपने उससे पूछा, 'तुम कौन हो ?" उत्तर मिला, 'मैं ब्रह्मराक्षस हूँ और इस कुटामें रहता हूँ। आप यहाँ मत रहो।" आपने उसकी बात मान ली और हनुमानजीके पूर्ववाली कुटीमें चले गये। दिन-

में पता लगानेपर मालूम हुआ कि इस कुटीमें पहले गंगाराम सनम नामके एक ब्रह्मचारी रहते थे। उनके पास रुपया-पैसा भी रहता था। इसलिये लोभवश चोरोंने उन्हें मार दिया था।

बागमें प्रथम बार

इसके पश्चात् एकवार जब आप कर्णवास पधारे तो अपने वगीचेमें ही ठहरे। जिस समय आप आये वहाँ एक साँड़ बैठा था। आते ही वह उठा और गोबर करके चल दिया मानो बाबाके आगमनको शुभ सूचित करके वह स्थान खाली करके चल दिया। स्वयं वावाने भी इसे एक शुभ शकुन वतलाया था। सचमुच इसका परिणाम वड़ा अद्भुत हुआ। आगे चलकर उस बगीचेका सौभाग्य जगा और वह एक तीर्थस्थान ही बन गया। इसके पश्चात् आप प्रायः प्रति तीसरे वर्ष कर्णवास पधारते और इसी बगीचे में ठहरते थे। आपके कारण श्रीगुरुपूर्णिमा, चातुर्मास्य, यज्ञ, पुरश्चरण एवं अनुष्ठानादिके अवसरोंपर यहाँ जैसे-जैसे उत्सव हुए और उनके कारण इस वगीचेकी जैसी सौभाग्य-श्री देखी गयी वैसी शोभा सहस्रों उद्यानोंमेंसे किसी एक ही की देखी जाती है। इस बगीचेमें जिरौलीवाले कुँवर नेत्रपालसिंह और उनके भाइयोंने जो कुटिया बनवायी वह भी बड़ी सौभाग्यशालिनी रही। उसे बनवानेवालोंका सारा परिवार ही श्रीमहाराजजीका अनन्य भक्त हो गया।

उस समय बाबाके पास भक्तोंका विशेष जमघट नहीं रहता था। देवीजीके चन्दी पंडा, गौशालाका सोहना रसोइया और रामस्वरूप नामका एक बढ़ईका लड़का—बस ये ही तीनभक्त अधिकतर आते थे। इनमें से रामस्वरूपने आपके लिये एक छः फुट लम्वी, दो फुट चौड़ी और एक फुट ऊँची चौकी बना दी थी, जिसमें दो-दो अंगुल पर पट्टियाँ लगी थीं। बाबा उसीपर गुदड़ी डालकर सोते थे। वह चौकी अब भी मौजूद है। उसे देखकर

आश्चर्य होता है कि उसपर उन्हें कैसे नींद आती होगी। जिस कुटीमें बाबा सोते थे उसमें प्रकाश या वायुके लिये एक भी छिद्र नहीं था और किवाड़ोंपर भी टीन जड़ा हुआ था। रातको जब हम आते तो बाबा लेटे-लेटे रामस्वरूपका सिर अपनी छातीपर रखकर थपकी लगाने लगते। वह एक मिनटमें ही सो जाता और फिर घटों सोता रहता। बाबा हम बालकोंके साथ बातें करते हुए बालवत् खिलवाड़ किया करते थे। साथ ही हमारी दैनिक चर्या पूछते और हमारे हृदयोंमें शुभ-संस्कार डालनेका प्रयत्न करते थे।

हमारे पथ-प्रदर्शक

एक दिन मैंने कहा, "बाबा! हनुमानजी बड़े अच्छे हैं। आज मदरसेमें मेरी दवात खो गयी थी। मैंने उसके लिये एक पैसे का प्रसाद बोला, तो वह तुरन्त मिल गयी।" इस पर आप बोले, "भैया! हनुमान बाबा तो ऐसे ही हैं। पर तुम्हें उनसे ऐसी ओछी बात नहीं कहनी चाहिये। देखो, जो एक सेठका नौकर है, वह क्या अपने मालिकसे एक लोटा जल लानेके लिये कह सकता है? कदापि नहीं कह सकता। परन्तु यदि वह बीमार पड़ जाय तो सेठ स्वयं ही उसके लिये जल गरम करायेगा, डॉक्टर-वैद्य बुलवायेगा और उसे जल्दी अच्छा करनेका प्रयत्न करेगा। जब कोई नौकर एक साधारण सेठ पर हुकूमत नहीं कर सकता तो जो सारी सृष्टिका स्वामी है उसके ऊपर तुम कैसे हुक्म चला सकते हो? भैया! वह सेवक नहीं जो अपने स्वामी पर हुक्म चलाता है और वह स्वामी सच्चा स्वामी नहीं जो अपने सेवककी आवश्यकता का ध्यान नहीं रखता। इसलिये तुम्हें अपने इष्टदेवसे कभी-किसी कष्टकी बात नहीं कहनी चाहिये। वे तो तुम्हें हर समय देखते ही रहते हैं। इसके सिवा किसीसे कुछ माँगना—यह ब्राह्मणका काम नहीं है। किसी ब्राह्मणको माँगते देखकर मुझे तो बड़ा कष्ट होता

है। कष्ट पड़े तब भी किसीके आगे दीन नहीं होना चाहिये। यदि दीन बनना ही है तो दीनानाथके सामने ही बनो :—

'जग जाँचिये कोउ न जाँचिये तो जिय जाँचिय जानकिजानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाय, जो जारत जोर जहानहिं रे॥'

इसी प्रकार आप हम बालकोंको अनेक प्रकारसे सदुपदेश दिया करते थे। मानो आपने स्वयं ही हमारे जीवननिर्माणका उत्तरदायित्व ले लिया हो और हुआ भी ऐसा ही। जीवनभर हमारे सिरपर आपका वरद हस्त रहा और हमें आपके संरक्षणमें विपत्तिसम्पत्तिका कोई भेद ही नहीं मालूम हुआ। क्या-क्या लिखा जाय ? उनकी एक दिनकी बातें भी पूरी तरहसे नहीं लिखी जा सकतीं। हम तो केवल इतना ही जानते हैं कि हमारा सारा जीवन उनकी छत्रच्छायामें ही बीता है और आगे भी बीतेगा, क्योंकि आप कहा करते थे कि जिसे मैं एकबार पकड़ लेता हूँ उसे कभी नहीं छोड़ता। कहा भी है—'अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।' अतः हमें तो उनके इस आश्वासनका ही भरोसा है और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्षरूपसे इस तथ्यका अनुभव भी करते हैं।

आज किस प्रकार वे हमारा पथप्रदर्शन करते हैं इस विषय में यहाँ एक प्रसंगका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। बाबाके लीलासंवरणके चार-पाँच साल पश्चात् एकदिन मेरे पुत्र ऊँप्रकाश ने स्वप्नमें देखा कि वृन्दावन-आश्रमके कथामण्डपमें श्रोता लोग बैठे हुए हैं और बीचमें खड़े हुए श्रीहरिबाबाजी उन्हें उपदेश कर रहे हैं। परन्तु उनका सब शरीर तो अपना है, पर मुँह श्रीमहाराज जी का है। ठीक यही स्वप्न एकबार आपने मुझे भी दिखलाया था। इसका अभिप्राय यही है कि श्रीहरिबाबाजीके मुखसे मैं ही बोल रहा हूँ। अतः उनके कहे हुए वचनोंको तुम केवल उन्हींके नहीं मेरे भी वचन समझो। वास्तवमें बाबामें दूसरोंके मुँहसे

बोलनेकी सिद्धि थी भो । अतः श्रीहरिबाबाजी हमें यदि कोई आदेश देते हैं तो वह हमें श्रीमहाराजजी की ही आज्ञा जान पड़ती है ।

यज्ञानुष्ठान एवं उत्सव

पूज्य श्रीमहाराजजी जहां-कहीं भी रहते थे वहाँ बड़े-बड़े उत्सव और यज्ञानुष्ठानादि भी होते रहते थे। कर्णवासमें भी आपकी सन्निधिमें अनेकों उत्सव हुए। उनमेंसे कुछ तो ऐसे विलक्षण थे कि जिनकी स्मृति जीवनभर हमारे हृदयपटलसे नहीं जा सकती । यहाँ हम उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं—

गायत्री पुरश्चरण—यह पुरश्चरण सं० १९८४ वि० में गोशालाके बाहर श्रीविश्वेश्वरदयालकी धर्मशालापर हुआ था। इसके यजमान थे हाथरसवाले ला० गनेशीलालजी और आचार्य थे काशीके प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पं० मोतीदत्तजी। इसमें चौबीस विद्वान् ब्राह्मण जापक थे और प्रत्येक जापक नित्य-प्रति तीन सहस्र गायत्रीका जप करते थे। श्रीमहाराजजीकी आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंसे पूछकर उनको रुचिके अनुसार यथेष्ट भाजन कराया जाता था। इस अवसर पर श्रीमहाराजजीका सम्पूर्ण भक्तपरिकर भी एकत्रित हुआ था और कुटीसे लेकर पक्के घाटतक सब लोग ठहरे हुए थे। परन्तु उन दिनों यहाँ का वातावरण ऐसा सात्त्विक था कि किसीकी कोई चीज नहीं खोई। यदि किसीको कोई वस्तु मिली तो वह उसे कार्यकारिणी समितिके पास जमा करा देता था और वहाँसे वह उसके स्वामीको मिल जाती थी। उत्सवकी समाप्तिपर पण्डितस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी और पं० श्रीजीवनदत्तजी आदि अनेकों महापुरुष भी पधारे और एक वृहद् भण्डारे के साथ वह पुरश्चरण सानन्द समाप्त हुआ।

श्रीलम्बेनारायण स्वामीका भण्डारा—श्रीलम्बेनारायणस्वामी—

एक विरक्त परमहंस थे। पूज्य बाबासे उनकी बड़ी प्रीति थी। जिस समय कर्णवासमें वे ब्रह्मलीन हुए बाबा उस समय दिल्लीमें थे। स्वामी श्रीनिर्मलानन्दजीने उनके निमित्तसे एक वृहद् भण्डारे की योजनाकी और मुझे आज्ञा दी कि जबतक बाबा नहीं आयेंगे भण्डारा नहीं होगा। मैं पता लगाता यमुनातटपर छायसा पहुँचा और बाबासे कर्णवास पधारनेकी प्रार्थना की तथा उनकी स्वीकृति मिलनेपर फाल्गुनके कृष्णपक्षमें यह उत्सव मनाया गया। इस अवसरपर खेराके पं० चतुर्भुजजीने श्रीमद्भागवतका सप्ताह कहा तथा निरन्तर अखण्ड संकीर्तन होता रहा। इस संकीर्तनमें अन्य कीर्तनमण्डलियोंके अतिरिक्त एक विरक्तोंकी भी मण्डली थी, जिसमें श्री[illegible]टू बाबा रामदासजी और दण्डिस्वामी सियाराम आदि थे। शिवरात्रिको बड़े समारोहसे रुद्राभिषेक और जागरण हुआ। इसी अवसरपर ब्रह्मलीन स्वामीजीके सेवक ब्रह्मचारी जयजयरामजी ने पण्डितस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजीसे दण्डग्रहण किया और वे श्रीनारायणाश्रम नामसे विख्यात हुए। अन्तिम दिन विशाल भण्डारा हुआ, जिसमें ढाई-तीन हजार व्यक्तियोंने प्रसाद पाया।

महारुद्रयाग—पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके तत्त्वावधानमें यह महायज्ञ हाथरसवाले सेठ गणेशीलालजीने माघमासमें वसन्तपंचमीसे पूर्णिमातक किया था। इसके व्यवस्थापक थे पं० श्रीजीवनदत्तजी, अध्यक्ष थे दण्डिस्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी, आचार्य थे काशीके सुप्रसिद्ध वैदिक महामहोपाध्याय पं० विद्याधरजी और ब्रह्मा थे ऋषिकेशके प्रख्यात वेदपाठी पं० बालकरामजी अग्निहोत्री। इनके अतिरिक्त काशी, ऋषिकेश, नरवर आदि कई स्थानोंके प्रायः पचास विद्वान् इस महायज्ञके ऋत्विक् थे। इस महोत्सवमें श्रीहरि बाबाजी एवं ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी आदि और भी कई महापुरुष पधारे थे और सभीके यथोचित सत्कारकी बड़ी सुन्दर सुव्यवस्था थी। नित्यप्रति प्रायः एक सहस्र व्यक्तियोंका भोजन होता था

तथा कथा-कीर्तन और सत्संगका भी सुन्दर कार्यक्रम रहता था। अन्तिम दिन वृहद् ब्रह्मभोज हुआ, जिसमें आस-पासके कई ग्रामों के सभी ब्राह्मण निमन्त्रित थे। उस दिन प्रायः दस सहस्र व्यक्तियों ने भोजन किया था। इस महायज्ञकी स्मृतिरूप एक पक्की यज्ञशाला बनायी गयी, जो पक्के घाटपर ठीक उसी स्थानपर है जहाँ यह यज्ञ हुआ था।

अभिषेकात्मक रुद्रयाग—सं० १९९८ में बाबाका चातुर्मास्य कर्णवासमें हुआ। उसी समय गुरुपूर्णिमासे जन्माष्टमीपर्यन्त श्रीगणेशीलालजीकी ओरसे अभिषेकात्मक रुद्रयाग हुआ। इस यज्ञमें विभिन्न स्थानोंके अनेकों विद्वान् ब्राह्मण सम्मिलित हुए थे और आचार्य थे काशीवासी प० मोतीलालजी। भगवान् शंकरपर नित्यप्रति कई सहस्र बिल्वपत्र राम नाम लिखकर चढ़ाये जाते थे, जो कुल मिलाकर सवा लक्षकी संख्यामें पूर्ण हुए तथा वेदमन्त्रों द्वारा भगवान्का अभिषेक किया जाता था। इस यज्ञ में भी नित्यप्रति पूछ-पूछकर ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार भोजन कराया जाता था। अन्तमें उन्हें पुष्कल दान-दक्षिणासे सन्तुष्ट किया गया और भाद्रपद कृ० १० को वृहद् भण्डारा हुआ।

विविध उत्सव—पूज्य बाबाके तत्त्वावधानमें कर्णवासमें और भी अनेकों उत्सव हुए। गुरुपूर्णिमा, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, शरत्पूर्णिमा, दीपावली और अन्नकूट आदि पर्वदिन पड़नेपर स्वतः ही एक विशिष्ट उत्सव हो जाता था। शरत्पूर्णिमापर यों तो प्रति वर्ष कई मन दूधकी खीरका भोग लगता और सभी नर-नारियोंको भर पेट प्रसाद मिलता था, तथापि एक बार तो पैंसठ मन दूधकी खीर बनायी गयी थी। कई बार श्रीमद्भागवतके सप्ताह हुए। सं० १९९३ में बिरौलीवाले बौहरे देवीसहायजीकी ओरसे एक सप्ताह हुआ था, जिसका प्रवचन प० जनार्दनजी चौबेने किया था

और सं० १९९८ में एक विरक्त सप्ताह श्रीमुनिलालजीकी ओरसे हुआ, जिसके वक्ता थे स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती। इसी प्रकार जब कभी बाबा पधारते थे तब समय-समयपर श्रीगणेशी-लालजी ठाकुर कञ्चनसिंहजी तथा बौहरे श्रीदेवीसहायजी आदि भक्तोंकी ओरसे मनों दूध श्रीगङ्गा मैयाको चढ़ाया जाता था। उस समय भक्तमण्डल नावोंमें बैठकर 'कलि-मल-हारिणी गंगे! पतितपावनी गंगे!' का कीर्तन करते हुए बड़े भावसे दुग्धकी धार छोड़ते थे। वह दृश्य भी देखने योग्य होता था।

बाबाको समाधि-अवस्था

सं० १९९२ की बात है। एक दिन नित्य-नियमानुसार सायंकालमें समष्टि कीर्तन हुआ। उसके पश्चात् पदगायनके समय सिरसावाले पं० खूबीरामजीने 'मोहन वसि गयो इन नैननमें' यह प्रसिद्ध पद गाया। उसे सुनते सुनते अकस्मात् बाबा समाधिस्थ हो गये। एक घंटा बीत जानेपर भी उत्थान न हुआ। तब तो भक्तजन बहुत घबड़ाये। मैं स्वामी श्रीनिर्मलानन्दजीके पास गया। उन्होंने आकर उनकी दशा देखी और व्युत्थान करानेके लिये पैरका अँगूठा मलनेकी आज्ञा दी। इससे बाबा पुनः प्रकृतिस्थ हो गये।

उनकी कृपा

मैं बाबाके स्नेह और कृपालुताकी बात क्या कहूँ। जब उनकी स्मृति होती है हृदय गद्गद हो जाता है उनके जैसा प्रेम और कृपा करनेवाले कोई संत अभीतक मेरी दृष्टिमें तो नहीं आये। बाबाने मुझे बालककी तरह पाला। उनके सामने मैं बालक था, युवा हुआ और फिर वृद्ध भी हो गया। परन्तु उनका प्रेम सदैव एक-सा रहा। आज भी केवल उनका स्थूल शरीर ही मेरे

सामने नहीं है, शेष सारी बातें तो ज्यों की त्यों चल रही हैं। जब कोई समस्या उपस्थित होती है, दुःखके अवसर आकर घेर लेते हैं तो वे स्वयं ही कृपा करके मार्ग बताते हैं। परन्तु यह बात कहनेको नहीं है। इस रसको तो गूँगेके गुडास्वादनकी तरह वही जानता है जो भोगता है। उनकी कृपालुताकी यह अनुभूति कहने में आ भी नहीं सकती। कहनेपर भी विश्वास तो उसीको होगा जो स्वयं भी ऐसा अनुभव कर रहा होगा, अन्य पुरुषोंको उसमें विश्वास नहीं हो सकता। भक्त अर्जुनके लिये भगवान् श्रीकृष्ण परात्पर ब्रह्म थे, परन्तु अभक्तोंकी दृष्टिमें तो वे ग्वारिया ही बने रहे। अतः इस विषयमें और अधिक न लिखकर उनके पादपद्मोंमें अपनी तुच्छ श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए यह लेख समाप्त करता हूँ।

पं० प्यारेलालजी वैद्यशास्त्री, रामघाट

रामघाटमें पदार्पण

प्रातः स्मरणीय पूज्य श्रीगुरुदेव सबसे पहले सन् १९१६-१७ के लगभग रामघाट पधारे थे और वनखण्डेश्वर महादेवके समीप इमलीवाली कुटीमें विराजे थे। पास ही एक तिदरीमें मेरे दीक्षागुरु परमविद्वान् गायत्रीजापक वेदपाठी ब्रह्मचारी श्रीहीरानन्दजी महाराज रहते थे। मैं प्रायः नित्य ही श्रीशङ्करजी एवं ब्रह्मचारीजीके दर्शनार्थ वहाँ जाया करता था। ब्रह्मचारीजीकी कृपासे ही मुझे पूज्य बाबाका दर्शन और परिचय प्राप्त हुआ। संस्कारवश स्वाभाविक ही बाबाके श्रीचरणोंमें मेरा स्नेह बढ़ता गया और उनके नित्यदर्शन किये बिना मुझे चैन नहीं पड़ता था। उस समय आपके पास एक पीतलका कमण्डलु था, जिसे किसीने चुरा लिया। अतः तबसे आप एक छोटी-सी तूँबी रखने लगे।

उन दिनों आपका साधन बहुत बढ़ा-चढ़ा था। आप दिन-भर सिद्धासन लगाये बैठे रहते थे। रात्रिमें भी आसनपर ही विश्राम कर लेते थे, लेटते नहीं थे। स्त्रियोंको पास नहीं आने देते थे। उस समय आपके पास आने-जानेवाले भक्तोंमें पं० वंशीधर, पं० बाबूराम बगीचीवाले, पं० जयगोपाल पं० शिवनारायण और पं० गङ्गासहाय रावजी आदि मुख्य थे। इनमें पं० वंशीधरका प्रेम और उनकी सेवा विशेष प्रशंसनीय थी। वे नित्यप्रति रातको लौटते समय बाबाकी आरती उतारते, धूप करते और उन्हें सुलाकर घर आते थे। फिर प्रातःकाल ही उन्हें चाय पिला आते थे।

धीरे-धीरे बाबाकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी और उसी अनुपातसे उनके भक्तोंकी संख्या भी बढ़ी। फिर विधिवत् उनका पूजन भी होने लगा, जो अन्ततक होता रहा। उनके पास जो भी आता 'रिक्तहस्ते न गन्तव्यं राजानं देवतां गुरुम्' इस उक्तिके अनुसार कुछ न कुछ पत्र-पुष्प भेंटके लिये अवश्य लाता। इस प्रकार फिर आगन्तुकोंके लिये बाबाके पास प्रसादकी बहुलता भी रहने लगी।

उनकी गुणगरिमा

बाबामें एक प्रकारकी विचित्र आकर्षणशक्ति थी। भले ही विरोधी विचारोंवाला व्यक्ति हो, तथापि जो भी उनके पास जाता था उन्हींका हो जाता था। उनके पास सभी वर्ग और सभी श्रेणियोंके व्यक्ति आते थे। हिन्दू मुसलमान भंगी, चमार, धनी, निर्धन, विद्वान्-मूर्ख सभीके लिये आपका दरबार खुला हुआ था। सब यही समझते थे कि बाबा सबसे अधिक प्रेम मुझसे ही करते हैं। प्रत्येक प्राणी बाबाके प्रेमका पात्र था। उनके भण्डार से कुत्ते को भी प्रसाद मिलता था।

बाबाका व्यक्तित्व महान् था। उनकी प्रतिभा चमत्कारिणी थी। सत्सङ्गके समय अनेकों प्रकारके जिज्ञासु बड़े विकट तर्क उपस्थित करते, परन्तु वे सभी उनका यथोचित समाधान पाकर सन्तुष्ट हो जाते थे। अपने पास आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिकी वे निरन्तर सुधि लेते रहते थे। उसे किसी प्रकारका कष्ट न हो इसका उन्हें सदा ध्यान रहता था उनकी स्मरणशक्ति भी बड़ी अद्भुत थी। जिसे एक बार देख लेते थे, फिर जीवनभर नहीं भूलते थे।

उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र अथवा धन आदिमें उनकी बिलकुल आसक्ति नहीं थी। वे श्रीगीताजीके 'पद्मपत्रमिवाम्भसा'के प्रत्यक्ष उदाहरण थे। चारों ओरसे सब प्रकारकी सामग्रियोंसे घिरे रहनेपर भी वे सर्वथा निर्लिप्त रहते थे। उनका भोजन अत्यन्त

सादा और अल्प होता था। दिनमें केवल एक वार ही भिक्षा करते थे। फल और दूधमें भी उनकी कोई रुचि नहीं थी। वहुत आग्रह करने पर ही थोड़ा ले लेते थे।

उनके उपदेशका प्रभाव

वावा अपने उपदेशमें तम्वाकूके त्यागपर वहुत जोर देते थे। वे इसे वीर्यका घोर शत्रु वताते थे। मुझे और मेरे कई साथियों को तम्वाकू खानेका व्यसन था। वावाके उपदेशसे चित्त छोड़ना तो चाहता था किन्तु अभ्यासवश छूट नहीं पाता था। आखिर एक दिन मैंने प्रतिज्ञा की कि आजसे तम्वाकू खाना मेरे लिये गोमांसभक्षण के समान होगा। वस उसी दिनसे यह दुर्व्यसन छूट गया। इससे मेरे स्वास्थ्यको भी लाभ हुआ। यदि कभी स्वप्नमें कोई पानमें तम्वाकू खिला देता है तो मुझे अपना मुँह कड़वा लगने लगता हैं और मैं थूकने लगता हूँ। उस प्रतिज्ञाका हृदयपर इतना प्रभाव है।

वावाकी आज्ञासे मैं नित्यप्रति गायत्रीका जप तथा रामायण और गीताका पाठ करता हूँ। इससे दुःखके अवसरोंपर भी चित्तमें शान्ति वनी रहती है।

उनकी योगशक्ति

एक वार हाथरसके वैद्यराज पं० भूदेव शर्मा अपने साथ पं० देवशर्मानामक एक सुप्रसिद्ध हठयोगी सज्जनको लेकर वावा के दर्शनार्थ आये। देवशर्माजीकी हठयोगमें अच्छी प्रगति थी। उन्होंने हाथरसमें कई जगह अपने योगका प्रदर्शन भी किया था। वावाके पास भी उन्होंने योगका प्रदर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की। अतः श्रीमहाराजजीको कुटीपर दोपहरको दो वजे सैकड़ों मनुष्य एकत्रित हो गये। सबसे पहले उन्होंने एक लड़केका माध्यम चुना और उसपर अपनी शक्तिका प्रयोग आरम्भ किया। परन्तु डेढ़ घंटेतक सिरतोड़ परिश्रम करनेपर भी वे उस बालकपर कोई प्रभाव नहीं डाल सके। वावा यह सव देखकर मुसकरा रहे थे।

फिर और भी कई पात्र बदले गये। परन्तु उनपर भी उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस प्रकार बाबाके सामने वे अपना चमत्कार दिखानेमें सर्वथा असमर्थ रहे। यह सब बाबाकी योग शक्तिका ही प्रभाव था। यहाँ उससे उनकी शक्ति कुण्ठित हो गयी थी। अन्यत्र तो वे अपनी शक्तिका प्रदर्शन करते ही थे।

दूसरे दिन वे ब्रह्मचारी श्रीजीवनदत्तजी तथा उनकी पाठशालाको देखनेके लिये नरवर चले गये। वहाँ रात्रिमें शास्त्रीके विद्यार्थी ज्वालाप्रसादको काले साँपने डस लिया। विषके प्रभावसे वह विद्यार्थी मूर्च्छित हो गया और उसके मुँहसे फेन निकलने लगा। जब हठयोगीजीको यह समाचार मिला तो उन्होंने तुरन्त आकर कुछ ऐसी योगक्रियाएँ कीं कि वह विद्यार्थी उसी समय विषके प्रभावसे मुक्त हो गया। उसके तो प्राण बच गये, परन्तु हठयोगीजीके ऊपर विषका वैसा ही प्रभाव हो गया जैसा उस विद्यार्थीपर था। यह बात हठयोगीजीने पहले ही सावधानीसे सबको समझा दी थी। अतः परिचारकोंको उनके प्राणनाशकी कोई आशङ्का नहीं हुई। दो दिनतक वे उसी अवस्थामें पड़े रहे। उसके पश्चात् स्वस्थ हो गये और तीसरे दिन हाथरस चले गये। नरवरकी यह घटना सुनकर रामघाटके लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और इससे उन्हें बाबाकी योगशक्तिका प्रभाव भी प्रकट हो गया।

एक बार बाबाकी कुटीके पास एक शेर आ गया। उसने कई पशु मार दिये। इससे बाबाके पास जानेवाले भक्तगण घबड़ाने लगे। कई तो दिनमें ही दर्शन कर आते थे, भयके कारण रात्रिको वहाँ नहीं जाते थे। जब बाबाको यह बात मालूम हुई तो वे बोले, "भैया! वह चामुण्डादेवीके दर्शन करने आता है, अब चला जायगा। इससे डरनेकी कोई बात नहीं है।" उसके बाद सचमुच ही वह शेर चला गया। फिर उसका कोई उत्पात सुननेमें नहीं आया।

वावाकी कुटीमें कई वार सर्प भी आ जाते थे। एक वार तो एक सर्प उनकी गोदमें होकर निकल गया। पर उन्हें न उनसे कोई भय हुआ और न किसी प्रकार की क्षति ही।

बाबाका स्वदेशप्रेम

भारतमें जब स्वतन्त्रताप्राप्तिका आन्दोलन चल रहा था बाबाके पास हिंसावादी (क्रान्तिकारी) और अहिंसावादी (काँग्रेसी) दोनों दलोंके देशप्रेमी आते थे और उनसे अपने कार्यों-के विषयमें परामर्श किया करते थे। कभी-कभी जहाँ-तहाँसे वावा उन्हें आर्थिक सहायता भी दिला देते थे। वावा भारतकी स्वतन्त्रता के कट्टर पक्षपाती थे। कभी-कभी आप कहा करते थे कि देश शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा और अँग्रेज यहाँसे निकाल दिये जायेंगे।

मैं यद्यपि सन् १९२० से ही रामघाट काँग्रेस कमेटीका प्रधान था, परन्तु धीरे-धीरे मेरे विचार क्रान्तिकारी हो गये थे। सन् १९३० में जब मैं जेलसे लौटा तो वावाने मुझे चाँदका फाँसी अङ्क, भारतमें अँग्रेजी राज्य और गीतारहस्य ये तीन पुस्तकें पढ़नेके लिये दी थीं। उससे पूर्व मैं अनेक क्रान्तिकारी इतिहास पढ़ चुका था। एक दिन रात्रिके समय मैंने तथा पं० गङ्गासहाय रावजी एवं टीकारामजी मुनीम आदि पाँच व्यक्ति-योंने बाबाके सामने रिवाल्वर और तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र रखकर उनके चरण छूकर शपथ ली थी कि जैसे भी हो वैसे हम देशके शत्रुओंको देशसे बाहर निकालकर ही दम लेंगे। यदि आवश्यक होगा तो इस कार्य में हम अपने प्राण भी प्रसन्नतापूर्वक दे देंगे। उस समय हमारे साथ वावासे मिलनेके लिये आये हुए मेरठके क्रान्तिकारी दलके सुप्रसिद्ध सदस्य श्रीशम्भुदत्त शर्मा भी उपस्थित थे। बाबाने हमें आशीर्वाद दिया था कि भगवान् तुम्हारा संकल्प पूर्ण करें और तुम्हें शक्ति प्रदान करें।

इस प्रकार यद्यपि पहले श्रीमहाराजजीने हमें हिंसाके लिये भी प्रोत्साहित किया था, परन्तु पीछे वे गान्धीवादके अनुसार अहिंसामार्गद्वारा ही काम करनेकी सलाह देते थे। अतः हम लोगोंने भी उस मार्गको छोड़कर यही पद्धति स्वीकार कर ली थी।

दो श्लोक

बाबाने मुझे दो श्लोक याद करनेकी आज्ञा दी थी। इनमेंसे एकमें उत्कृष्ट भक्तियोगका और दूसरेमें ज्ञाननिष्ठाका प्रतिपादन किया गया है। प्रथम श्लोकमें भगवान् नृसिंह भक्तवर प्रह्लादसे कहते हैं—

क्वेदं वपुः क्व च वयः सुकुमारमेतत् क्वैताः प्रमत्तकृतदारुणयातनास्ते।
आलोचितं विषयमेतदभूतपूर्वं क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये विलम्बः॥*

दूसरा श्लोक इस प्रकार है—

इतो न किञ्चित्परतो न किञ्चिद्यतो यतो यामि ततो न किञ्चित्
विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्स्वात्मावबोधादपरं न किञ्चित्॥१

इस प्रकार बाबाकी वे सब बातें अब केवल स्मृतिमात्र रह गयी हैं। अब तो नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर उनकी मूर्त्तिका ध्यान कर लेता हूँ। जिस दिन स्वप्नमें उनका दर्शन हो जाता है वह दिन अत्यन्त मङ्गलकारी होता है।

—:—

* कहां तो तेरा यह सुकुमार शरीर और अल्प आयु तथा कहाँ उस मतवाले दानवेन्द्रकी दी हुई वे दारुण यातनाएँ। ऐसी बात तो हमने अभूतपूर्व ही देखी है। (पहिले ऐसा कभी नहीं देखा गया)। अतः प्रिय प्रह्लाद! मेरे आनेमें यदि देर हुई हो तो क्षमा करना।

१ न तो इस लोकमें कुछ है और न परलोकमें ही कुछ है। यही नहीं, जहाँ-जहाँ भी जाता हूं वहाँ-वहाँ कुछ भी नहीं है। विचार कर देखता हूँ तो संसार कुछ है ही नहीं। एक आत्मचैतन्यके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

श्रीबिहारीलालजी, रामघाट

श्रीमहाराजजीके संसर्गमें आनेका प्रधान कारण हुआ अपना साधुमङ्गतिका स्वभाव। वे रामघाट पधारे हुए थे। प्रथम मिलनमें ही मैंने उनमें विलक्षण आकर्षण शक्तिका अनुभव किया। जब मैंने उनसे ईश्वरप्राप्तिका साधन पूछा तो वे बोले, "तुम्हारा प्रेम सगुणमें है या निर्गुणमें।"

मैं—सगुण भगवान्में।

श्रीमहाराजजी—सगुण किस रूपमें ?

मैं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीमें।

तब श्रीमहाराजजीने मुझे श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान, स्थिर सुखासन, चित्तशान्ति, ध्येयसे इतर दर्शनका त्याग श्रीरामनाम-जप, रामायणपाठ, सत्सङ्ग और सदाचारपालन आदि साधन बतानेकी कृपा की।

यद्यपि श्रीमहाराजजीके गुणोंका वर्णन करनेमें मैं तुच्छ प्राणी सर्वथा असमर्थ हूँ, तथापि उनके कुछ पुनीत संस्मरण उन्हींके करकमलोंमें यथामति समर्पित करता हूँ।

मैंने उन्हींके श्री मुखसे सुना था कि ब्रह्मचर्यावस्थामें वे बड़ी सादगीसे रहा करते थे। कई वर्षतक वे तूँबीमें कच्चा आटा घोलकर पीते रहे। फिर कुछ वर्ष कच्चे आटेकी पिण्डी, थोड़ी दाल और थोड़ा नमक डालकर अग्निपर रख देते और सिद्ध

होने पर उसीको पा लेते थे। वैराग्य मूर्त्तिमान् होकर उनके समीप नृत्य करता था। उन्हें हमने दिन-रात लगातार एक ही आसनसे बैठे देखा। वे प्राणिमात्रसे प्रेम करते थे। स्वयं चाहे भूखे रह जायँ, पर दूसरोंको खिलानेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। प्रायः प्रतिदिन दोनों समय अपने हाथोंसे परोसकर ही वे भक्तोंको भोजन कराते थे।

प्रेतसे परित्राण

मेरे घरमें एक प्रेत रहता था। उसने मेरे वंशको निर्मूल कर डालनेकी शपथ ले रखी थी। न जाने मुझसे उसका क्या वैर था? जो भी बच्चा होता उसे शैशवकालमें ही समाप्त कर देता था। एक दिन मेरे पिताजीने बाबासे प्रार्थना की कि प्रभो! बच्चे बुरी तरह मारे जाते हैं, मैं क्या करूँ? श्रीमहाराजजी बोले, "तुम सपरिवार जाकर गया-श्राद्ध करो तथा श्रीमद्भागवतका पाठ और ब्राह्मणभोजन कराओ। इससे यह प्रेत तुम्हारा घर छोड़ देगा। पिताजीने स्वीकार किया। उस समय गोदमें एक बच्चा था। जब श्री महाराजजी माधूकरीके लिये घरपर आये तब उन्होंने वह बच्चा देखा था। उसके पश्चात् कुछ दिनोंके लिये आप बाहर चले गये। जब सालभर बाद लौटे और घरपर माधूकरीके लिये पधारे तो उस बालकको नहीं देखा। सायंकाल-मैं जब दर्शनोंके लिये कुटीपर पहुँचा तो बोले, "बिहारी! आज तेरा वह बालक दिखायी नहीं दिया।" मैंने कहा, "प्रभो! आपके जानेके एक महिना बाद वह भी मर गया" यह सुनकर आप चकित होकर बोले, "क्या तुमने गया-श्राद्ध नहीं किया?"

मैं—गयाश्राद्ध तो नहीं हुआ महाराज!

श्रीमहाराजजी—क्यों?

मैं—मेरी शक्ति नहीं है।

श्रीमहाराजजी—तो वंश कैसे चलेगा?

मैं—जो भगवान् करेंगे सो होगा।

तव श्रीमहाराजजी वोले, "अच्छा, कल मैं तुम्हारे घर बैठ कर भिक्षा करूँगा। कल ही प्रेत निकल जायगा।" इससे पूर्व श्रीमहाराजजी किसीके घर वैठकर भिक्षा नहीं करते थे। माधूकरी वृत्तिसे भिक्षा लेकर कुटीपर चले जाते और वहीं प्रसाद पाते थे। दूसरे दिन ठीक समयपर आप मेरे घर पधारे। मैंने आपके श्रीचरण धोकर चरणामृत लिया। स्वयं पिया और सारे परिवार को पिलाया तथा सम्पूर्ण घरमें जहाँ-तहाँ छिड़क दिया। उसके पश्चात् श्रीमहाराजजीने करुणापरवश हो अपने चिरकालीन नियम को तोड़कर मेरे घर बैठकर भिक्षा की और आचमन करके कुटी चले गये। वस, प्रकट रूपमें तो इतना ही हुआ, अप्रकट रूपसे उन्होंने कुछ किया हो तो वे जानें, मुझे उसका कुछ पता नहीं है। उनकी इस कृपाका मैंने यह प्रत्यक्ष फल देखा कि उसके पश्चात् मेरे दो पुत्र हुए, जो अभी तक जीवित हैं। उनमें एकका नाम है शुद्ध-वोध-मुक्त और दूसरा है नित्यप्रकाश अविनाशी। इन दोनों की आयु इस समय बीस वर्षसे ऊपर है। बाबाकी देन होनेके कारण ही इनके नाम ऐसे रखे गये हैं। जिस दिनसे श्रीमहाराजजीने मेरे लिये भिक्षाका नियम तोड़ा उस दिनसे वे सबके घर बैठकर भिक्षा करने लगे यह उनकी अहैतुकी दया ही है।

चोटकी चिकित्सा

श्रीमहाराजजी रामघाटमें विराज रहे थे। गर्मीके दिन थे। मैं अपनी दूकानके सामने सोया हुआ था। एक आदमी बैल लेकर बाजारमें जा रहा था। मेरे पास पहुँचते ही बैलने विगड़ कर जोरसे ऐसी टक्कर मारी कि खाटके पायेके सहित मेरा घुटना दीवारसे जा टकराया. उसकी चोटसे ईंट टूट गयी। चोटके मारे मैं चीख उठा। ज्यों ही सँभलकर उठा मुझे सामने श्रीमहा-

राजजी खड़े दिखायी दिये। बोले, "तू देहसे अलग हो जा, कुछ भी पीड़ा न होगी।" मैं ऐसा ही अनुसन्धान करते हुए फिर खाट पर लेट गया। मुझे नींद आ गयी और जब जगा तो पीड़ा बिल्कुल नहीं थी। सायंकालमें मैं जब बाबाके पास गया तो पूछा कि आप भिक्षा करनेके लिये आज बाजारमें गये थे क्या? बोले, 'नहीं तो, तू क्यों पूछ रहा है?" मैंने उपर्युक्त सब घटना सुनायी। सुनकर बोले, 'चुप हो जा, ऐसी बातें नहीं कहते।" इस बातको सुनकर लोग पता लगानेके लिये बाजारमें आये और सच्ची घटना जानकर चकित हो गये।

गठियाका उपचार

इस शरीर को वायु रोगने दबा लिया था। अंग टेढ़े पड़ गये थे दस वर्ष तक अत्यन्त पीड़ा रही। बड़े-बड़े उपचार हुए, पर लाभ किसीसे न हुआ। उस दु:खित अवस्थामें भी मैं प्राय: नित्य बाबाके दर्शनोंको जाता था। एक दिन आप बोले, 'बिहारी! तेरे शरीरका क्या हाल है? इलाज क्यों नहीं कराता?" एक सज्जनने उत्तर दिया, 'महाराज; इलाज तो बराबर हो रहा है। इनके पिता स्वयं वैद्य हैं। फिर भी यह हाल है।" श्रीमहाराजजीको दया आ गयी और बोले, 'अच्छा कल गंगास्नान करना। गठिया-बठिया सब ठीक हो जायगा।" दूसरे दिन प्रात: काल ही मैंने गंगा मैयामें गोते लगाना आरम्भ किया। इससे शरीरका मैल फूलने लगा। ज्यों-ज्यों मैल फूलता त्यों-त्यों मैं उसे छुड़ाता जाता और इसके साथ ही साथ शरीरके अंग खुलते जाते। घर आकर मैंने भोजन किया और सो गया। बड़ी मीठी नींद आयी। जब जागा तो सभी अंग कोमल और सीधे पाये। फिर मैं उछलता-कूदता श्रीमहाराजजीके दर्शन करने गया। इस घटना को आज चालीस वर्ष हो गये हैं। आजतक मुझे वायुप्रकोप

ने कभी नहीं सताया। ऐसी विचित्र शक्ति थी श्रीमहाराजजी की वाणीमें।

भविष्यवाणी

एक वैश्य प्रायः बाबाके दर्शनोंके लिये आया करते थे। एक दिन जब वे आये तो उनके साथ उनका चार वर्षका लड़का भी था। अभीतक उसका मुण्डन संस्कार नहीं हुआ था। श्रीमहाराजजी बालकके शरीरपर हाथ फेरते हुए पितासे बोले, "तुम क्या करते हो?" उन्होंने कहा, "महाराज! खड़सालका काम करता हूँ।" बाबा बोले, 'खड़साल क्या धूल करता है? यह लड़का यदि रहा तो लक्ष्मीचन्द होगा। शंकरजीके मन्दिरमें नित्य रामायण जीका पाठ करो और उनसे इसकी आयुके लिये प्रार्थना करो।" उन्होंने आज्ञा स्वीकार की और नित्य पाठ करने लगे। किन्तु कुछ ही दिनोंमें पाठ छोड़कर फिर खड़साल-के धंधेमें लग गये।

लड़केका नाम था नत्थीमल। उसने बी० ए० पास किया। अब तो उसके बहुतसे सम्बन्ध आने लगे। पिताने लड़केके विवाहके विषयमें श्रीमहाराजजीसे पूछा। वे बोले, "तीन साल बीत जायँ तब विवाह करना।" परन्तु वैश्य देवता नहीं माने। उन्होंने लड़केका विवाह कर दिया। दूसरी साल लड़का चल बसा। उसके पिता बाबाके चरणोंमें गिरकर विलाप करने लगे। बाबाने कहा, "अब रोनेसे क्या होता है। जो आ पड़ा है उसे भोगो। तुमसे तो पहले ही कहा था तुमने माना ही नहीं।"

भगन्दरसे त्राण

प्रायः बीस वर्षकी बात है। मेरी पत्नीकोभयंकर भगन्दर रोग हुआ। मैंने अंग्रेजी और आयुर्वेदिक दोनों प्रकार की चिकित्साएँ करायीं, परन्तु लाभ न हुआ। वह मरणासन्न अवस्थामें

पहुँच गयी। मेरी आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। आखिर मैं चिन्ताकुल हो 'निर्बलके बलराम' गुरु भगवान् श्रीमहाराजजीका स्मरण करने लगा। उस समय आप रामघाटमें नहीं थे। परन्तु कहीं भी हों वहीं से आपने मेरी प्रार्थना सुन ली। चाँदनी रात थी। मैं श्रीमहाराजजीका चिन्तन करता सो गया। स्वप्नमें देखा कृपालु प्रभु पधारे हैं और मुझे औषधि बता रहे हैं। प्रातःकाल जागने पर मुझे स्वप्नकी पूर्ण स्मृति बनी रही। मैंने वही औषधि तैयार की और पत्नीको देना आरम्भ किया। सात दिनके प्रयोगसे ही वह पूर्णतया स्वस्थ हो गयी और अब तक उसे यह रोग नहीं हुआ। परन्तु स्मृतिदोषसे अब मुझे वह औषधि याद नहीं है।

विषसे रक्षा

होलीका दिन था। सब ओर अबीर, गुलाल और रंगकी धूम मची हुई थी। कुछ लोग ठंडाई भी घोट रहे थे। उनमेंसे ही एकने, जो मुझसे द्वेष मानता था, मुझे ठंडाई पीनेके लिये आमन्त्रित किया। मेरे मनमें कोई आशंका तो थी नहीं। उसका आमन्त्रण स्वीकार कर मैंने ठंडाई पी ली। परन्तु उसमें मिला हुआ था विष। मेरे पेटमें एेंठन होने लगी और जिह्वा टूट गयी। थोड़ी ही देरमें मैं अचेत हो गया। डाक्टर-वैद्योंद्वारा अनेकों उपचार कराये, परन्तु कोई सफलता न हुई। मुँहसे कभी-कभी रामनाम निकल जाता था। जब मैंने देखा कि अन्तकाल समीप है तो बाबू रामसहायजीके द्वारा श्रीमहाराजजीको अपना अन्तिम 'ॐ नमो नारायणाय' कहलाया। उन्होंने पूछा, "क्या हाल है ?" बाबूजीने कहा, "हालत तो खराब ही है।" आप बोले, "अरे ! इमली घोलकर पिला दो, अच्छा हो जायगा।" तुरन्त ही मुझे इमली पिलायी गयी। पीते ही मुझे नींद आ गयी। जगनेपर अवस्था बिलकुल ठीक

थी। मैंने गंगास्नान किया और गुलाल लेकर श्रीमहाराजजी के पास पहुँचा। ज्यों ही श्रीचरणोंमें गुलाल लगाया श्रीमहाराजजी बोले, "अरे बिहारी ! तू तो मर रहा था ?" मैंने कहा, 'प्रभु ! मर तो रहा ही था. परन्तु आपने तो बचा लिया।"

इस प्रकारकी अनेकों घटनाओंसे ज्ञात होता है कि श्रीमहाराजजी अपने शरणागतोंके भवरोगोंके ही नहीं शारीरिक रोगोंके भी वैद्य थे। वे समय-समय पर ऐसी अचूक औषधियाँ बता देते थे जो चमत्कृत कर देती थीं। उनका परिणाम देखकर अच्छे-अच्छे वैद्य भी चकित हो जाते थे। मैं किसी गिनतीमें नहीं हूँ और न इस संसार में मेरी कोई हस्ती ही है। तथापि श्रीमहाराजजी मुझ दीनपर इतनी कृपा रखते थे जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। उनके श्रीचरणोंमें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। वे परम कृपालु केवल इतनेसे ही मुझपर प्रसन्न हों।

उपदेश वाक्य

१. सच्चा हरिस्मरण वह है जिसमें एक प्रेष्ठसे भिन्न और सभीका विस्मरण हो जाय। देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण, मान-अपमान और निंदा-स्तुति ये सारी बातें अन्तः-करणसे सम्बन्ध रखती हैं जब अन्तःकरण ध्येयाकार हो जाता है तब सब प्रकारका भेदज्ञान लुप्त हो जाता है। वास्तवमें सम्पूर्ण प्रपञ्चता अदर्शन ही भगवद्दर्शन है।

२. देह-गेहादि जो नाशवान् पदार्थ हैं उनसे प्रेम करना ही अज्ञान है। इसी तीव्र वैराग्यमें सदैव एकनिष्ठ रहे।

पं० श्रीगंगासहायजी, बिजौली (अलीगढ़)

प्रथम दर्शन और रोगनिवृत्ति

(१)

परम पूज्य प्रातःस्मरणीय श्रीमहाराजजीके दर्शन मुझे सबसे पहले रामघाटमें गंगातटपर इमलीवाली कुटीमें हुए थे। यह बात ५ फरवरी सन् १९७१ की है। उस समय मेरा शरीर बहुत रोगी था। मैंने रोगनिवृत्तिके लिये डाक्टर-वैद्योंकी दवाइयाँ भी बहुत खायी थीं, परन्तु उनमे कोई लाभ नहीं हुआ। प्रथम दर्शनमें ही श्रीमहाराजजी के प्रति मेरा अनुराग हो गया। मैं तीन दिन उनके पास रहा और फिर अपने गाँव लौट आया। परन्तु वहाँ अधिक न ठहर सका। दस दिन पश्चात् फिर राम-घाट पहुँच गया। इस बार मैं दस दिन उनकी सेवामें रहा।

एक दिन श्रीमहाराजजी गंगास्नानको गये। साथमें मैं भी था। मैंने स्नान कराया। मेरे शरीरको बहुत कृश देखकर आपने पूछा, "तू बड़ा कमजोर है। तुझे क्या रोग है ?" मैंने सब हाल बताया। आप बोले, "तेरे पास जो दवाइयाँ हैं उन्हें गंगामें फेंक दे। अब किसीकी दवा मत करना।" मैंने ऐसा ही किया और केवल उनकी कृपासे ही मेरा रोग निवृत्त हो गया। इससे उनके प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़गयी तथा मैं अधिकतर उन्हींके पास रहने लगा।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी काजिमाबाद पधारे थे। वहाँ उत्सव

था। मैं भी गया। वहाँ मुझे हैजा हो गया। मैं अचेत पड़ा था। महाराजजीने एक डाक्टर साहब भेजे। उन्होंने कहा, "रोग भयंकर है।" थोड़ी देर पश्चात् आप स्वयं पधारे और शरीरपर हाथ रखा। इससे थोड़ी ही देर में मेरा रोग शान्त हो गया। ऐसी थी उनकी अनूठी अनुकम्पा।

साधनोपदेश

श्रीमहाराजजीने सबसे पहले मुझे राममन्त्र का उपदेश दिया और उसे जपने की विधि बतायी। फिर मुझ दीनपर कृपा कर के एकान्तमें गंगातटपर स्वयं सिद्धासनमे बैठकर मुझे भी उसी प्रकार बिठाया और ध्यान करनेकी पद्धति समझायी। उस समय दृढ़ सिद्धासनकी महिमा बताते हुए आपने कहा था—'इससे मुख्यतया पाँच लाभ होते हैं—(१) शरीर हल्का होता है, (२) वात पित्त कफ कम होते हैं, (३) मल-मूत्र कम होते हैं, (४) वाणीका दोष दूर होता है और तन, मन वाणी और बुद्धिकी स्थिरता होती है। अतः इसी आसनमे बैठकर अभ्यास करना चाहिये।

फिर आपने पूछा तुम्हारा किस देवतामें प्रेम है। मैंने श्रीरघुनाथजीको अपना इष्टदेव बताया। तब उनके ध्यानकी विधि बताते हुए आपने कहा—'तुम अपने हृदयसिंहासनपर श्रीरघुनाथजीको बिठाकर उनका मानसिक पूजन किया करो। उनके सिर से चरणोंतक अपने मनको छः मिनट घुमाओ तथा श्रद्धापूर्वक अपने अन्तःकरणमें उनका दर्शन कर फिर उनके चरणकमलोंमें ही मनको जोड दो। इस प्रकार बारह सैकण्डसे लेकर दो मिनट चौबीस सैकण्डतक मनको जोड़े रखना 'धारणा' कहलाता है। जब मन २ मिनट २४ सैकण्डसे लेकर २८ मिनट ४८ सैकण्डतक स्थिर रहने लगता है तो इसे 'ध्यान' कहते हैं। इससे अधिक काल होने पर मन भगवान्में लीन होने लगता है। अर्थात फिर ध्येय और ध्याता एक हो जाते हैं। इसके पश्चात् निर्विकल्प समाधि होती है।

'जब यह ध्याता ध्यानमें ध्येयरूप है जाय।
पूरो जानो ध्यान तब, या में संशय नाहिं॥
ध्येयरूप होनो यही, मित्र ज्ञान नहिं होय।
क्षीर नीर जब मिलत हैं, सूझत नाहिंन दोय॥'

यह सब बताकर आपने मुझे शाम्भवी मुद्राका लक्षण बताया और कहा कि यह साधन सर्वथा सरल और निरापद है। तुम्हें गंगाप्रवाहके समान अखण्ड पुरुषार्थ करके नित्यप्रति साधन करना चाहिये। ध्यानके समय सायंकाल, प्रातःकाल, मध्याह्न, शयनसे पूर्व और मध्यरात्रि हैं। प्रातःकाल जगनेपर शौच जानेसे पहले भी ध्यान करना चाहिये। जब आधा घड़ीध्यान होने लगता है तो स्त्री, धन और मानकी सिद्धि होती है। ध्यानसे सब प्रकारके दुःख दूर हो जाते हैं तथा मोक्ष और सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। फिर आपने ध्यानके ये विघ्न बताये—१. लक्ष्यसे अलग रहना, २. आलस्य, ३. भय, ४. अन्धकार, ५. विक्षेप, ६. तेज, ७. कम्प ८. शून्यता; ९. स्त्रीसंग १०. कुसंग, ११. मार्ग चलना, १२. प्रातः स्नान, १३. अग्निसेवन, १४. उपवास, १५. अधिक भोजन, १६. अधिक परिश्रम, १७. सांसारिक नियमोंमें बँधना और १८. ब्रह्मचर्यका अभाव। साथ ही यह भी बताया कि ध्यान करके सोना नहीं चाहिये। इससे गर्मी बढ़ जाती है और स्वप्नदोष हो जाता है। ये सब ध्यानके विघ्न हैं, इनसे बचना चाहिये।

साधनमें सहायता

तब श्रीमहाराजजीके आदेशानुसार मैं साधन करने लगा। आपने मुझे १ घंटा ३५ मिनट स्थिर आसनसे बैठनेके लिये कहा। मेरे गाँवसे थोड़ी दूर एक कुटी है। श्रीमहाराजजी उसमें रहा करते थे। उसीमें एक दिन मुझे अर्धरात्रिमें ध्यान करते समय श्रीसीता और लक्ष्मणजीके सहित भगवान् रामके साक्षात् दर्शन

हुए। दूसरे दिन यह बात सुनानेके लिये मैं रामघाट श्रीमहाराज-जीके पास गया। सुनकर वे बोले, "बेटा! साक्षात दर्शनसे भी ध्यानमें दर्शन होना अधिक लाभदायक है। ध्यानावस्थामें ही अपने इष्टदेवसे भाषण भी होना चाहिये।" इसके पश्चात् मैंने कई बार श्रीमहाराजजीके भी ध्यानमें दर्शन किये। किन्तु फिर मेरे ध्यानमें अनेक प्रकारके विघ्न आने लगे। इन दिनों श्रीमहा-राजजी श्रीहरिबाबाजीके बाँधसे रात्रिमें उठकर कहीं चले गये थे। खोज करनेपर भी उनका कोई पता नहीं लगा। इससे मुझे बड़ा ही असह्य दुःख हुआ। मैं गङ्गाके किनारे ढूँढ़ता-ढूढ़ता किरतौली गया, जो साँकुरेके पास है। वहाँ रात्रिको सोया तो स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने कहा 'मैं गङ्गाके दूसरा ओर झोंपड़ीमें हूँ।' उस एक ही रात्रिमें मैंने तीन बार ऐसा ही स्वप्न देखा। उस समय श्रीमहाराजजीने यह भी कहा कि प्रातःकाल तुम इधर आकर अपने साधनके विषयमें पूछ लो, फिर मैं तुम्हें नहीं मिलूँगा। प्रातःकाल होनेपर मैं गङ्गास्नान कर भजन करने बैठ गया। भजनसे उठनेपर मैंने एक आदमीसे, जो गङ्गाके दूसरे पारसे आया था, पूछा, "तुमने दूसरे तटपर जो झोंपड़ी है उसमें कोई महात्मा तो नहीं देखे?" उसने कहा "वहाँ कोई महात्मा नहीं हैं।" बस, में निराश होकर किरतौली लौट आया। मैंने अपने कपड़े और लोटा रखे ही थे कि एक आदमीने आकर कहा, "तुमको श्रीउड़िया बाबाजी महाराज बुला रहे हैं।' मैं तुरन्त बाबाके पास पहुँचा और उन्हें अपना स्वप्नका सब हाल सुनाया। महाराजजी अब इसी तटपर आ गये थे। वे बोले, 'तू उस आदमी के कहनेमें आकर मेरे पास नहीं आया, मैं तो दूसरे किनारेपर झोपड़ीमें ही था। अब मैं काशीकी ओर जा रहा हूँ।" मैंने बहुत प्रार्थना करके उन्हें तीन दिन किरतौलीमें रोका और उन्हींके साथ एकान्तमें रहा। इससे मेरा ध्यानका विघ्न निवृत्त हो गया।

इसके पश्चात् मैं श्रीमहाराजजीको रामघाट लौटा आया। श्रीमहाराजजीने कहा कि मुझमें अधिक प्रेम होने और ध्यान करने से मेरा पता लग सकता है। एक बार श्री महाराजजीके यहाँ तीन दिनका अखण्ड कीर्तन था। मैंने स्वप्नमें देखा कि बाबा मुझे बुला रहे हैं। मैं दूसरे दिन गया तो आप बोले, "मैंने ही तुम्हें बुलाया है। तुम लोगोंमें अब श्रद्धा-प्रेम नहीं रहा, मैं जब प्रेरणा करके बुलाता हूँ तभी तुम आते हो, स्वयं आनेकी बात नहीं सोचते।"

विघ्नोंके अवसरपर

(१) एक बार मैं श्रीमहाराजजीसे आज्ञा लिये बिना अयोध्या चला गया। उस समय आपके यहाँ श्रीवृन्दावनमें आश्रमके उद्घाटनका विराट् उत्सव था। आपने उस अवसरपर मुझे कई बार स्मरण किया। आपसे आज्ञा लिये विना जानेके कारण मेरे साधनमें बहुत विक्षेप हुआ। तब मैं डरता हुआ वृन्दावन गया और अपने साधनके विघ्नकी बात कही, तो बोले, "तुम लोग तो सिद्ध हो गये हो, हमारे पास अब क्या रखा है ?' मैं बहुत रोया और चरणोंमें गिर गया तब आपने मुझ दीनपर कृपा की। इसके पश्चात् मेरा साधन ठीक हो गया। मेरा साधन तो पूर्णतया उनकी कृपापर ही अवलम्बित था, हम दीन तो कुछ भी नहीं कर सकते थे। जब कभी आप हमारे यहाँ पधारते थे तो यह बात तो प्रायः होती थी कि हम थोड़े ही भोजनका प्रबन्ध कर पाते, किन्तु आपकी कृपासे वही सबके लिये पर्याप्त हो जाता, कभी-कमी न पड़ती। इस प्रकारके चमत्कार तो सैकड़ों बार देखे हैं, उन्हें कहाँ तक लिखें।

(२) एक बार मुझसे एक गुप्त अपराध हो गया। श्रीमहाराजजीने सामने आते ही उसे जान लिया। वे बोले, "मैं

तुम सबके चित्तकी बात जान लेता हूँ, परन्तु सबसे कहता नहीं हूँ। तुम्हें ऐसा अपराध नहीं करना चाहिये।"

(३) शरीर छोड़नेसे पहले श्रीमहाराजजीने कहा था, "यह सृष्टि बहुत गन्दी हो गयी है; अब हमें यहाँ नहीं रहना चाहिये। जो हमारे पास आने वाले हैं वे भी कुछ के कुछ हो गये हैं। मैं अन्तमें ऐसी लीला करूँगा कि मेरे पास कोई नहीं रहेगा।" श्रीमहाराजजीसे हम जो कुछ पूछना चाहते थे उसे वे पूछनेसे पहले ही बता देते थे। अनेक प्रकारकी सांसारिक कामनाएँ तो उनके दृष्टिपातसे ही पूरी हो जाती थीं। अनेकों सांसारिक विघ्न होनेपर भी जब हम उनके दर्शनोंके लिये जाते तो वे विघ्न स्वयं ही निवृत्त हो जाते थे। ऐसी थी हम लोगोंपर उनकी कृपा।

पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री, बरेली

जनवरी, सन् १९३५ ई० की बात है प्रातःस्मरणीय श्रीबाबा फर्रुखाबादके उत्सवमे शिवपुरी जाते समय श्रीराम, तुलसीराम आदि चार ब्रह्मचारियोंके साथ बरेली पधारे थे। यहाँ आपके प्रेमी भक्त श्रीनन्दरामजी, श्रीरामजी गोटेवाले और रामचन्द्रजी हलवाईने आपका बड़ा स्वागत किया। यहाँ तक कि एक ही दिनमें आपका अट्ठाईस स्थानोंपर भिक्षा-उत्सव हुआ। मैं भी आपके पीछे-पीछे लगा रहा। जब दो दिन ठहरनेके पश्चात् तीसरे दिन आप शिवपुरी जाने लगे तब मैंने मार्गकी सुविधा और सत्संगका सुख सोचकर साथ चलनेकी आज्ञा माँगी। आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा, 'साधुओंके साथ साधु बनकर रह सकते हो तो चलो।' यह बात साधारण-सी समझकर मैंने स्वीकार कर ली तथा मार्गके लिये कुछ पाथेय फल आदि और एक कम्बल लेकर चल दिया। मैंने सोचा था कि आज बाबाके प्रातराश (कलेवा) और मध्याह्नके भोजनकी व्यवस्था मैं स्वयं करूँगा।

शिवपुरी बरेलीसे १६ कोस है - थोड़ी ही दूर जानेपर एक दुःखयाके याचना करनेपर पूज्य बाबाकी आज्ञासे वह सब पाथेय और फल उसे दे दिये गये। दोपहरको प्रायः ११ बजे नौ मील चलकर फतहगंज नामक गाँवमें पहुँचे। वहीं विश्रामकी आज्ञा करते हुए श्रीमहाराजजीने सबसे भोजनका व्यवस्था करनेको

कहा। फतहगंजमें मेरे सम्बन्धी रहते थे। अतः मैंने प्रार्थना की कि मैं अभी सब सामग्री मूल्य देकर अथवा सम्बन्धियोंके यहाँसे ले आता हूँ। इसपर मेरी सम्भावनाके विरुद्ध बाबाने बड़ी दृढ़ता से कहा, 'भैया! हमने पहले ही कह दिया था कि साधुओंके साथ यदि साधु बनकर रह सको तो चलो। इसके विरुद्ध यदि तुम्हें कुछ करना है तो तुम अब भी जहाँ इच्छा हो जा सकते हो। साधुओंका ऐसा ही व्यवहार होता है।" अबतक मैं बाबाको अपने घरका व्यक्ति समझता था। उनकी इस बातको सुनकर मैं अवाक् रह गया। अब तो उनकी आज्ञा मेरे लिये ईश्वरीय आदेश थी। अतः अन्य चारों ब्रह्मचारियोंके समान जब मुझे उपले माँगकर लानेकी आज्ञा हुई तो मैं इस कार्यके लिये एक अन्य गाँव भिटौरा गया, क्योंकि फतहगंजमें तो सम्बन्धियोंके कारण याचना करनेका मेरा साहस नहीं हुआ। इस प्रकार मेरा वह सारा अभिमान चूर हो गया जिसके कारण मैं उन्हें अपनी इच्छाओंमें बँधा हुआ मानता था। साथ ही उस समय उनकी आज्ञाका पालन करनेसे मुझे जो अद्भुत आनन्द हुआ उसे आज अट्ठारह वर्ष बीत जानेपर भी मैं ज्योंका त्यों अनुभव कर रहा हूँ। ऐसी है गुरुदेवकी महिमा। इसीसे कहा है—'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।'

अस्तु। उनके आदेशानुसार अन्य ब्रह्मचारियोंकी भाँति मैं भी ईंधन और कंडोंकी भिक्षा माँग लाया। भोजन बनाया गया और नियमानुसार बलिवैश्वदेवके पश्चात् बाबाने भिक्षा की। तदनन्तर हम सभीने प्रसाद पाकर कुछ देर आपकी शरीरसेवाका अनुपम आनन्द लिया। तीन बजेके लगभग पुनः यात्रा आरम्भ हुई और रात्रिको आठ बजे शिवपुरी पहुँच गये। वहाँ पूज्यपाद श्रीहरिबाबा जीका मनको लुभानेवाला अद्भुत सत्सङ्ग पाकर चित्त आनन्दमें

विभोर हो गया । सच है 'सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः ।'*

तीन दिन वहाँका आनन्द लेकर फिर पूज्य बाबाकी आज्ञा पा मैं बरेली लौट आया । दृढ़व्रती बाबाके इस अल्पकालिक सत्सङ्गसे मुझे जिन अद्भुत गुणोंका आभास मिला आज भी उनकी छाप मेरे हृदय पटपर अंकित है । आजभी वह मेरी पथप्रदर्शिका बनी हुई है । ऐसे थे हमारे बाबा ।

---

* जहाँ श्रीभगवान्‌का उदार कथाप्रसङ्ग होता है वहाँ सभी तीर्थ निवास करते हैं ।

श्री श्रीरामजी गोटावाले, बरेली

पूज्य बाबाने मुझपर अपार अनुग्रह किया। उनकी कृपासे मेरी अनेकों आपत्तियाँ निवृत्त हुईं। अब भी वे सर्वदा कृपा करते हैं। जब कभी मेरे सामने कोई उलझन या संकट उपस्थित होता है, वे स्वप्नादिमें मेरा समाधान कर देते हैं अथवा उसका कोई उपाय बतला देते हैं। उन्होंने मुझपर जो स्नेह किया वह लेखनशक्तिसे बाहर है।

(१)

एक बार कर्णवासमें ऋषि ब्रह्मचारीजीके गायत्री-पुरश्चरण समाप्तिपर यज्ञ हो रहा था। बाबा उस समय वहाँ विराजमान थे। एक दिन शिवपुरीनिवासी मिड़ईलालजी वहाँ आये और कहने लगे, 'बाबा! मेरा यह लड़का दो सालसे पागल हो गया है। मैं बहुत परेशान हूँ। घरमें खर्चके लिये पैसा नहीं है, क्योंकि इसके कारण कोई कारबार नहीं कर पाता।" बाबा बोले, "नहीं यह तो बिलकुल ठीक है।" फिर उस लड़केसे कहा, "बेटा! कपड़े पहन।" उसने झट कपड़े पहन लिये और तबसे बिलकुल ठीक हो गया।

(२)

मैंने आजन्म कभी अँग्रेजी दवा नहीं खायी। एक बार मैं बीमार पड़ गया। पेटमें शुद्दे (मलकी गाँठें) पड़ गये। बड़े जोर-का दर्द रहने लगा और बड़ी बेचैनी हुई। घरवालोंने न माना।

उन्होंने डाक्टर को बुलानेके लिये आदमी भेजा। मैंने मन ही मन बाबासे प्रार्थना की कि प्रभो! क्या अब मुझे अँग्रेजी दवा खानी ही पड़ेगी? इसके थोड़ी देर बाद मुझे दस्त हुआ और उसमें सब गाँठें निकल गयीं। मेरी तबियत बिलकुल ठीक हो गयी। डाक्टर तब तक आने भी नहीं पाया।

(३)

एक बार शीतकालकी बात है। मैं बीमार था और कराह रहा था। कभी-कभी कराहते-कराहते मुँहसे 'हा राम! हा राम!' भी निकल जाता था। अकस्मात् मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बाबा मेरे पास बैठे हैं और कह रहे हैं "बेवकूफ! हा राम! हा राम!' क्यों कहता है? सामने देख।" मैंने सामने देखा तो खड़े हुए श्रीसीतारामजी के दर्शन हुए। फिर बोले, "बेटा! सीताराम! सीताराम!' कहो।' मैं 'सीताराम, सीताराम, कहने लगा। घरके और लोग भी सुनकर 'सीताराम, सीताराम' की ध्वनि करने लगे। बस, उसीसे मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया।

श्रीरामस्वरूपजी, चन्दौसी

संवत् १९८८ वि० की वात है, पूज्य श्रीमहाराजजी चन्दौसी पधारे थे और रघुनाथाश्रममें विराजमान थे। वहीं सर्व-प्रथम मुझे उनका दर्शन हुआ। उस समय महात्मा गान्धीका खादीप्रचार काय्र जोरोंपर था। मैं उसका काम करता था और बाबाका भी खादीसे प्रेम था ही; अतः बहुत जल्दी उनके साथ मेरा सम्बन्ध स्थापित हो गया। क्रमशः बाबामें मेरी श्रद्धा और उनकी मुझ-पर अनुकम्पा बढ़ती गयी। ज्यों ज्यों उनसे मेरी घनिष्ठता बड़ी त्यों ही त्यों मैं उनसे अपने आन्तरिक भावोंका पोषण पाता गया। मेरे इष्टदेव थे चित्रकूटवासी भगवान् राम। मैं राम नामका जप करता था और श्रीरामचरितमानस का पाठ। बावा सदैव मेरे इस भक्तिभावका पोषण करते थे।

मुझे कुछ रोग भी थे। उनकी निवृत्तिके लिये बाबाने मुझे सिद्धासनकी विधि समझाकर कहा कि केवल इस आसनके अभ्यास से ही तुम्हारे रोग निवृत्त हो जायेंगे और सचमुच सिद्धासनके अभ्याससे ही मेरे रोग अधिकांश में शान्त हो गये। मेरी पत्नीका देहान्त हो चुका था और पुनः विवाह करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी। इसीलिये बाबासे मैंने प्रार्थनाकी कि ऐसी कृपा करें जिससे मेरा जीवन निर्दोष रहे। इसके लिये भी बाबाने मुझे दो बातें बतायीं–(१) सिद्धासनका अभ्यास और (२) बस्तीसे सर्वथा दूर रहना। बाबाकी इन दोनों आज्ञाओंका मैं छब्बीस वर्षोंसे पालन

करता आ रहा हूँ। इसमें अपना तो कोई पुरुषार्थ है नहीं, उनकी कृपासे ही अबतक मेरा जीवन निर्दोष रहा है। दिनमें एक बार मुख्य रूपसे बाबाका ध्यान कर लेना मेरे नित्य-नियममें है।

जब मैं खादीप्रचार और गोसेवाके कार्योंमें प्रवृत्त हुआ तो बाबाने उसका समर्थन करते हुए कहा कि 'कृषिगोरक्षवाणिज्यम्' इस भगवदुक्तिके अनुसार गोपालन तुम्हारा स्वधर्म है। जब मैंने कहा कि इस कार्यमें अनेकों प्रकारकी अड़चनें हैं, यह पूरा कैसे होगा? तो बोले. "स्वधर्मे निधनं श्रेयः।" बस. मेरे लिये उनका इतना ही संकेत पर्याप्त था।

बाबाने मुझे एक महान् उपदेश यह दिया था कि जब तुम्हारे ऊपर कोई संकट आवे और उस समय तुम्हें उससे छुटकारा पानेका कोई मार्ग न सूझे तो तुम अपने इष्टदेवके चरणोंको पकड़कर लोट जाना। जीवनकी विकट परिस्थितियोंमें मैंने बाबाके इस उपदेशका पालन किया है और इससे मुझे तत्काल लाभ हुआ है। अब भी ऐसे अवसरोंपर मैं यही उपाय करता हूँ। मेरे लिये बाबाका विशेष जोर इस बातपर था कि प्रभुसे प्रेम निष्काम भावसे ही करना, उसमें सकामताकी गन्ध न आने पावे। सकाम भाव आते ही प्रेम दूषित हो जाता है। कैसी ही परिस्थिति आ जाय प्रभुसे कुछ भी मत चाहना। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे सामने अनेको समस्याएँ आयीं, परन्तु मैंने प्रभुसे स्वार्थसाधनके लिये कभी प्रार्थना नहीं की। आखिर भगवत्कृपासे वे सब सुलझ गयीं।

संवत् २००२ की बात है। गोसेवाकार्यमें मेरे सामने आर्थिक कठिनाई आयी। मैं व्याकुल हो गया और जब सुना कि बाबा कर्णवास आये हैं तो दर्शनार्थ गया। एकान्तमें बाबासे मिला और सारी बातें सुनायीं। बाबा बोले "देख, काम तो छोड़ना मत, बराबर करते रहना। जब अन्तिम अवस्था आ जाय, कोई भी

प्रवन्ध न हो सके और गौओंके भूखों मरनेकी नौवत आ जाय तो तुम सब गायोंके गलेकी रस्सी खोल देना। फिर उन्हें चाहे जो ले जाय।" मैंने कहा, "महाराज ! यदि अनधिकारो (कसाई) ले गये तो ?" वोले, "तुम कुछ चिन्ता मत करना। गौओंकी मानसिक सेवा किया करना। उन्हें खूव दूध-जलेवी का भोग लगाना।" मैं निश्चिन्त होकर लौट आया। परन्तु दो ही दिनके भीतर वह आर्थिक संकट निवृत्त हो गया और अवतक गोसेवाका कार्य वरावर चल रहा है।

वावाको मैं परम सिद्ध मानता हूँ। परन्तु उनकी आध्यात्मिक स्थितिके सामने सिद्धियोंका कोई मूल्य नहीं था। मैंने जीवनमें अक्रोध और पक्षपातशून्यताकी प्रतिष्ठा दो महात्माओंमें देखी है—मुख्यरूपसे वावामें और गौणरूपसे महात्मा गान्धी में। वावाके लीलासंवरणके पश्चात् अब कोई और शरणस्थान नहीं दीखता। उनके उपदेशोंसे ही अब भी प्रकाश पाता हूँ।

श्रीविश्वम्भर प्रसादजी, चन्दौसी

प्रथम दर्शन

मेरे बड़े भाई साहब श्रीरामस्वरूपजी श्रीमहाराजजीके भक्त हैं। एक बार जब श्रीमहाराजजी चन्दौसी पधारे थे तो भाईसाहब के प्रार्थना करनेपर वे घरपर भी आये। उसी समय सर्व प्रथम मुझे उनके दर्शन हुए। यों तो बचपनसे ही मैं अनेकों संतमहात्मा-ओंके दर्शन करता रहा हूँ, परन्तु श्रीमहाराजजीके तो प्रथम दर्शन से ही मेरे चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये कोई उच्च कोटिके महापुरुष हैं। उनकी ओर मेरा हृदय आकर्षित हो गया और मैं नित्यप्रति उनके पास कथा-कीर्तन और सत्संगमें जाने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे क्रमशः उनमें मेरी श्रद्धा-भक्ति बढ़ने लगी।

बाबाने मुझे भगवान् श्रीरामकी उपासना और उन्हींका नाम जप करनेका उपदेश दिया था तथा गीता और रामायणके नित्य पाठके अतिरिक्त समर्थ गुरु रामदासका दासबोध पढ़ने की आज्ञा दी थी। श्रीमहाराजजीकी कृपासे मुझे लौकिक और पारमार्थिक दोनों ही क्षेत्रोंमें अनेकों लाभ हुए हैं यहाँ उनका उल्लेख करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाएँ

(१)

एक बार बाबा रामघाटमें चातुर्मास्य कर रहे थे। उन दिनों

श्रीकृष्णजन्माष्टमीके अवसर पर वहाँ श्रीकृपाशंकरजी फर्रुखाबाद-वालोंकी मण्डली श्रीरामलीलाका अभिनय कर रही थी। ठीक जन्माष्टमीकी रात्रिको, जब जन्मोत्सवकी लीला हो रही थी मन्द-मन्द वर्षा होने लगी। सब लोग घबड़ाये। बाबा अभी लीलामें आये नहीं थे। उनसे पूछा गया—'क्या किया जाय?' तब आप स्वयं लीलामें पधारे और चादर ओढ़कर सिद्धासनसे बैठ गये। केवल दो बार ऊपरकी ओर दृष्टि उठाकर देखा। उसके पश्चात् यद्यपि आस-पास वर्षा होती रही तो भी रामलीलाके स्थानपर वर्षा बन्द हो गयी। इससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

(२)

इसके पश्चात् एक बार आप चन्दौसी पधारे वहाँ शिव-सहायवालोंके बागमें आसन था और सत्संगस्थल था श्रीरघुनाथाश्रममें। आपके पास हरि नामका एक बारह वर्षका बालक भी आया हुआ था। वह प्रायः आपके पास ही रहता था। एक दिन वह रघुनाथाश्रममें आपकी चौकीके नीचे सो गया। सत्संग समाप्त होनेपर सब लोग मकानका ताला लगाकर चले गये और श्रीमहाराजजी भी वहाँसे एक मील अपने निवासस्थानको चले गये। सायंकाल आठ बजे जब कीर्तन आरम्भ हुआ और श्रीमहाराजजी सिद्धासन लगाकर बैठे तो तुरन्त बोले, "अरे! हरि आवाज दे रहा है, उसे तुम लोग वहीं बन्द कर आये। उसे ले आओ।" आज्ञानुसार दो आदमी लालटेन लेकर गये और ताला खोलकर उसे निकाला। पूछनेपर उसने बतलाया कि जब मेरी आँख खुली तो मैं कमरा बन्द देखकर घबड़ाया और दो बार 'बाबा! बाबा!' कहकर आवाज दी। तब बाबाने उत्तर दिया, "घबड़ा मत, आ रहे हैं।" उसके थोड़ी देर बाद आप लोगों ने आकर मुझे निकाला।

(३)

एक बार मुझपर जिला बदायूँमें डिफेंस (कंट्रोलके विरुद्ध)

दफा ८१।४ का मुकदमा चला। यह अभियोग जिलेसे बाहर नियम विरुद्ध खांड़ भेजनेके विषयमें था। बाबाने प्रारम्भमें ही कह दिया था कि घबड़ाना मत, कुछ होगा नहीं। मुकदमा तीन वर्षतक चलता रहा। एक दिन जब मैं अनूपशहरमें श्रीमहाराजजीका दर्शन करनेके लिये गया तो उन्होंने कहा, "अरे! तेरा मुकदमा छूट गया है और मैंने उसका प्रसाद भी बाँट दिया है।" मैंने कहा, "महाराजजी! मेरे पास तो कोई ऐसी खबर आयी नहीं है।" तब बोले, "तेरे पास खबर नहीं आयी तो क्या हुआ? मुकदमा छूट गया है।" पीछे महाराजजीकी बात सच्ची निकली। मुझे ३० मार्चको देरसे खबर मिली। उसके बाद जब मैं श्रीमहाराजजीके पास जानेको तैयार हुआ तो उनके लीलासंवरणकी सूचना मिली। हृदय शोकसे व्याकुल हो गया। मानो वे यह जानते थे कि इसे सूचना मिलनेपर यह फिर मुझसे नहीं मिल सकेगा, इसलिये उसका प्रसाद अपने सामने ही बाँट दिया।

इसी प्रकार इस जीवनमें श्रीमहाराजजीके अनेकों चमत्कार देखे हैं, उनका कहाँतक वर्णन किया जाय?

श्रीजयजयरामजी, चन्दौसी

सं० १९८८में पूज्य श्रीमहाराजजो रघुनाथाश्रममें पधारे थे। वहाँ उन दिनों कथा, कीर्तन और सत्संगका कार्यक्रम चलता था। तभी प्रथम बार मुझे आपके दर्शन हुए। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि ये संत तो साक्षात् प्रेमकी मूर्त्ति हैं। फिर तो आप जहाँ-कहीं भी होते मैं समय-समयपर दर्शनार्थ जाता रहता। साधनके विषयमें उन्होंने मुझे ये आदेश दिये थे—

१. यह युग हठयोगके अनुकूल नहीं है, अतः तुम्हें ध्यान-योगका अभ्यास करना चाहिये।
२. सभी आसनोंमें सिद्धासन श्रेष्ठ है। इस आसनका एक घंटे तक ठीक-ठीक अभ्यास हो जानेपर शारीरिक विकार निवृत्त होते हैं और ध्यान लगने लगता है।
३. इष्ट और मन्त्र एक होने चाहिये। इन्हें बदलना उचित नहीं है।

मेरा विश्वास है कि श्रीमहाराजजी परम सिद्ध महापुरुष थे। ध्यानयोगमें उनकी निरन्तर स्थिति रहती थी। वे दूसरोंके मनकी बात जान लेते थे। मैं उनसे कभी प्रश्न नहीं करता था। वे स्वयं ही मेरी शंकाओंका समाधान कर दिया करते थे। एक बार मेरे मनमें यह प्रश्न उठा कि समदर्शी कैसे हुआ जाता है। मैं बाबाके पास गया तो बिना पूछे ही आप कहने लगे, "समदर्शी

होना चाहिये समवर्ती नहीं हुआ जा सकता।" दूसरी बार मेरे मनमें यह शंका उठी कि प्रारब्ध ठीक है या पुरुषार्थ ? मैं इस शंकाकी निवृत्तिके लिये श्रीमहाराजजीके पास गया तो आप स्वयं इसी प्रसंगको उठाकर कहने लगे, "प्रारब्ध और पुरुषार्थ गाड़ीके दो पहियोंकी तरह हैं। एक से ही काम नहीं चल सकता, दोनों ही की आवश्यकता है।" मैंने उनके पास रहकर जानना चाहा कि बाबा सोते हैं या नहीं तो मालूम हुआ कि वे निद्रा-विजयी थे। औरों को तो निद्रा लेते मालूम होते थे, परन्तु प्रायः सर्वदा ध्यानस्थ ही रहते थे।

एक बार एक सज्जनने पूछा, "महाराजजी ! मेरी सन्तान नहीं बचती, मर जाती है।' बाबा बोले 'सन्तान है ही कहाँ, घास-फूँस है। पाँच वर्षतक ब्रह्मचर्य धारण करके सन्तान पैदा करो, कभी नहीं मरेगी। आजकल चौदह-पन्द्रह वर्षके लड़कोंके सन्तान हो जाती है, वह बचे कहाँ से ?"

भगवत्प्राप्तिके विषयमें आप कहा करते थे—लड़के दसवें दर्जेमें पास होनेके लिये जितना परिश्रम करते हैं भगवान्के लिये उतना परिश्रम भी करें तो छः महीनेमें भगवान्का दर्शन होजाय।

भगवत्प्रेमकी उपलब्धिके लिये आप यह पद कहा करते थे—

हरि रस तबहिं तो जाय पइये।
स्वाद विवाद हर्ष आतुरता इतनो दण्ड जो सहिये॥
गये नहिं सोच आये नहीं आनँद ऐसे मारग जइये।
ऐसो जो आवे जिय माहीं ताके भाग्य का कहिये॥

श्रीजगदीशप्रसादजी वार्ष्णेय, चन्दौसी

'गुरु पितु मातु महेश भवानी। प्रणवहुँ दीनबन्धु दिन दानी ॥'

बचपनमें यह विश्वास नहीं होता था कि कोई भी व्यक्ति-विशेष उपर्युक्त सभी विशेषणोंसे सम्पन्न हो सकता है। परन्तु आगे चलकर मैंने अनुभव किया कि मेरे आराध्य श्रीमहाराजजीमें गोसाइंजीके कहे हुए ये सभी विशेषण पूर्णतया चरितार्थ होते हैं। सन् १९२९ में जब मेरी आयु केवल नौ वर्षकी थी मैं अपने पिता श्रीभोलानाथजीके साथ पाँच कोस पैदल यात्रा करके रामघाट गया और वहीं संकीर्तनमण्डलके मध्य विराजमान श्रीमहाराजजीका सर्व प्रथम दर्शन किया। पद गानके अनन्तर प्रसाद मिला और फिर विदा हो गये। बस, प्रथम समागम इतना ही हुआ।

उसके पश्चात् एक वर्षके भीतर ही आप हमारे सौभाग्यसे चन्दौसी पधारे। वहाँ एक सप्ताह पर्यन्त आपके दर्शन और सत्सङ्ग आदिका बड़ा अपूर्व आनन्द रहा। परन्तु मैं उसमें विशेष सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि 'तब अति रहेउँ अचेत।' फिर सन् १९३३ में आप श्रीजयजयरामजीके बगीचेमें पधारे और प्रायः एक मास तक सत्सङ्गादिका आनन्द रहा। सौभाग्यसे यह मेरे ग्रीष्मावकाशका समय था। अतः मैं अपने समवयस्क बालकोंके साथ जाता और रात्रिमें शयनके समय तक हम उन्हें घेरे रहते। श्रीमहाराजजी हम बालकोंका मन रखनेके लिये पुनः पुनः हमारे घरोंमें भिक्षाके लिये पधारते थे। मेरी बुआजी आपकी रुचिके

अनुरूप अरहरकी दाल तथा छुकी हुई मूँग बनानेमें कुशल थीं। एकबार मेरी माताजीने आपसे मेरी शिकायत की कि मैं उनके हाथका बना पक्वान्न भी नहीं खाता हूँ। इसपर श्रीमहाराजजीने मुझे डाँटा और कहा कि मातासे विरोध नहीं रखना चाहिये। मैंने कहा, "महाराजजी ! यह न तो मेरे भगवान्‌को भोग लगाती हैं और न कभी आपको ही निमन्त्रित करती है। तब कैसे खाऊँ ?" इसपर आप हँस पड़े। आपने मुझे रामायणका सुन्दर-काण्ड, दासबोध और साधनपथ पढ़नेकी आज्ञा दी थी। ये तीनों ग्रन्थ पहलेसे ही हमारे घरमें थे। इसके पश्चात् समय-समय पर मुझे आपका सत्सङ्ग प्राप्त होता रहा।

मेरी रुचि प्रधानतया भक्तिमार्गमें थी। अतः श्रीमहाराजजी को भिक्षा करानेका भी चित्तमें विशेष आग्रह रहता था। एक बार कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर मैं आपको छुकी हुई मूँग अर्पण करनेके लिये ले गया और आपके बैठनेके लिये मैंने अपना गुलूबन्द बिछा दिया। उसपर आप विराज गये। हाथसे ग्रास लेते-लेते आप मेरे मुखमें ग्रास देने लगे। ऐसी वात्सल्यमयी माता थे आप। भक्तपरिकरके लिये वे साक्षात् शिवस्वरूप थे और भोजन करानेमें साक्षात् जगज्जननी अम्बा अन्नपूर्णा थे।

सन् १९.८ में मैं सुदूर पूर्वकी यात्रा करके श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसरपर आपके पास वृन्दावन गया। उसी दिन आपकी भी जन्मतिथि थी। यह बात मुझे वृन्दावन जानेपर ही मालूम हुई। उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया गया। रात्रिमें झाँकीके अनन्तर प्रसाद वितरण हुआ। भक्तगण विश्राम करने चले गये। मेरा विचार उस दिन निर्जल रहकर दूसरे दिन पारण करनेका था। अतः मैंने प्रसाद नहीं पाया। रातको दो बजेके लगभग आपने मुझे फटकारा। बोले, "यहाँ भी ससुराल समझते हो जो खुशामद कराकर खाओगे। चल इधर।" बस, अपनी

कुटीमें ले जाकर दो गिलास पञ्चामृत और पर्याप्त प्रसाद दिया ।' गुरोराज्ञा गरीयसी' समझकर मैंने प्रसाद पा लिया । मुझे सांसारिक सम्बन्धोंमें बहुत जकड़ा देखकर आपने कहा कि यहीं रहकर प्रसाद पा, गोपालजीका भजन कर और बाँकेविहारीजी के दर्शन किया कर । कहाँ तो आपकी ऐसी अहैतुकी अनुकम्पा और कहाँ मैं मायाबद्ध जीव ? मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, "महाराजजी ! मेरे पास चन्दौसीतकका टिकट है ।" अतः आपने अनुमति दे दी और मैं आपसे टिकट लेकर घर चला आया ।

श्रीमहाराजजी सर्वदा अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते थे । उनके सम्पर्क में आनेपर भक्तजन उनकी सन्निधिमात्र से निहाल हो जाते थे उनके पास एक-एक पहरतक सत्संगका जमाव होता था । लोग उनसे तरह-तरह के प्रश्न करते थे । और वे सबका यथोचित उत्तर देकर समाधान करते थे । किन्तु 'महूँ सनेह संकोच बस सनमुख कहेहुँ न बैन । दरसन तृषित न आजुलगि प्रेम पियासे नैन ।।' अतः प्रश्न करनेका मुझे कभी साहस ही नहीं हुआ । तथापि उनके सत्संगमें बैठनेपर मुझे ऐसा जान पड़ता था मानो वे मेरी मनोगत विविध शंकाओंका सर्वथा मेरे मनके अनुकूल समाधान कर रहे हैं । इतने बड़े परिकरको वे 'निस दिन यों पोसत रहें ज्यों तम्बोली पान ।'

श्रीमहाराजजीने मुझे इतना दिया कि कभी माँगनेकी अभिलाषा ही नहीं हुई । मेरी माताजी उनके दिये हुए लवंग-इलायची के टिकटसे भी अनेक प्रकारका लाभ उठाती थीं । अतः वे इस प्रसादको सदैव सुरक्षित रखती थीं । बाबाका प्रसाद बोलकर वे अपनी खोई हुई वस्तुएँ प्राप्त कर लेती थीं । उनकी कृपा अब भी पूर्ववत् है अब भी कई बार स्वप्नमें उनके दर्शन होते रहते हैं ।

श्रीफतहचन्दजी, चन्दौसी

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन मुझे बाँधपर हुआ था। उसके तीन मास पश्चात् वे चन्दौसी पधारे। धीरे-धीरे उनके साथ मेरा सम्पर्क बढ़ने लगा। उनकी कृपा थी ही। उन दिनों मुझे एक शारीरिक रोग था। डाक्टरोंने उसे असाध्य तो नहीं, किन्तु कष्टसाध्य अवश्य बताया था। एक बार मैं पूज्य बाबाके दर्शनार्थ वृन्दावन गया। वहाँ उनसे अपने रोगकी भी चर्चा की। आप बोले, 'कहाँ है तेरा रोग ? जा, गंगा सेवन किया कर।" बस, तब से आजतक उस रोगका कोई चिह्न नहीं रहा।

श्रीमहाराजजीने मुझे भगवान् शिवकी आराधना और शिवपञ्चाक्षरी मन्त्रके जपकी आज्ञा दी थी तथा सर्वदा गंगा-सेवन करते रहनेका आदेश दिया था। उनकी उस आज्ञाका मैं यथासम्भव पालन कर रहा हूँ।

एक बार मेरे छोटे भाई राजाराम बाबाके दर्शनार्थ कर्णवास गये। वहाँ उन्हें ज्वर हो गया। उन्होंने बाबासे कहा, "महाराजजी ! मुझे ज्वर हो गया है, मैं चन्दौसी जा रहा हूँ।,, बाबा बोले, "चन्दौसी जानेसे क्या ज्वर दूर हो जायगा ?" राजाराम ने कहा, "बुखारमें यहाँ रहना ठीक नहीं होगा इसलिये मैं चन्दौसी जा रहा हूँ।" यह कहकर वे बाबाकी बात न मानकर चन्दौसी चले आये। नौ महीनेतक तरह-तरहसे चिकित्सा करायी। तथापि उनका ज्वर निवृत्त न हुआ। फिर जब पुनः बाबाके पास गये और उनसे प्रार्थना की तब बुखारने पिण्ड छोड़ा।

श्रीशिशुपालशरणजी, चन्दौसी

सन् १९३२ के माघका महीना था। एक दिन रात्रिको स्वप्नमें मैंने देखा कि श्री गंगाजीके तटपर भगवान्की रासलीला हो रही है। उसमें एक ओर सन्त-महात्माओंकी मण्डली बैठी है और दूसरी ओर गृहस्थ लोग बैठे लीला दर्शन कर रहे हैं। उसके एक ही मास पश्चात् मैं होलीके उत्सवमें बाँधपर गया। वहाँ ठीक उसी प्रकार रासलीला तथा सन्त-महात्माओंके दर्शन हुए। उसी समय श्रीमहाराजजीके प्रथम दर्शन का सौभाग्य हुआ। वहीं एक दिन मुझे उन्होंने एक ग्रास महाप्रसाद भी दिया। उसे पानेपर जैसे अलौकिक स्वादका अनुभव हुआ वैसा तो कभी नहीं हुआ।

दूसरी वार भी मैं बाँधके उत्सवपर ही गया। गंगाजी उस समय दूर चली गयी थीं। जो लोग गंगास्नानके लिये जाते थे वे प्रातःकाल रासलीलामें नहीं पहुँच पाते थे। उन्होंने बाबासे प्रार्थना की। आप बोले, 'अच्छी बात है' कल से गंगाजी यहीं आ जायेंगी।" दूसरे दिन प्रातःकाल से ही गंगाजीकी एक धारा कुटियाके समीप होकर बहने लगी। वह केवल उत्सवके अन्ततक ही रही। चैत्र कृष्णा द्वितीयाको ही बन्द हो गयी।

सरवती ठीक गुरुपूर्णिमाके दिन ही कर्णवासमें मरी थी। उसे गंगाजीमें प्रवाहित करनेके लिये ले गये। उस नावमें मेरे घरके भी कुछ आदमी बैठे थे। नाव भँवरमें फँस गयी। मानो

सरवती अपने साथ बाबाके कुछ और आदमियोंको भी ले जाना चाहती थी। उस समय वह नाव श्रीमहाराजजीकी कृपासे ही बची थी—ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बार बाँधपर बाबाने किसीकी ओरसे श्रीगंगाजीमें दूधकी धार चढ़ायी थी। उसे देखकर मेरे मनमें भी दूधकी धार चढ़ानेका सकल्प हुआ। किन्तु मैंने किसीसे कुछ कहा नहीं। वहाँसे मैं घर चला आया। उसके कुछ ही महीने पश्चात् मैं बीमार पड़ा। उस समय पिताजीने कर्णवास जाकर श्रीमहाराजजी से मेरी बीमारीकी चर्चा की। सुनकर बाबा बोले, "गंगाजीको दूधकी धार चढ़ाओ तो अच्छा हो जायगा।" इस प्रकार मेरे बिना कहे ही उन्होंने मेरा संकल्प पूरा कर दिया।

ऐसी ही उनके विषयमें अनेकों अलौकिक घटनाएँ हैं। उन्हें कहाँ तक लिखें ?

बहिन श्रीशकुन्तला, चन्दौसी

मैंने सन् १९३२ में पिताजीके साथ श्रीहरि बाबाजीके बाँध-पर पूज्य श्रीमहाराजजीके पहली बार दर्शन किये थे। यद्यपि उस समय केवल दो ही दिन दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तथापि पिताजीके साथ वापस लौट आनेपर मेरी ऐसी दशा हो गयी कि बार-बार बाबाकी स्मृति आती रही। मेरा हृदय उनकी ओर खिंचा रहने लगा।

सौभाग्यवश तीन महीने बाद ही बाबा चन्दौसी पधारे। भिक्षाके लिये प्रार्थना करनेपर घरपर दर्शन देनेकी भी कृपा की और ऐसा जान पड़ा मानो अकाशमार्गसे आये हों। किसीको मालूम ही नहीं पड़ा कि किस ओरसे आये हैं। भिक्षा करके घर पवित्र किया। तब मैंने अपनी दुःखमयी परिस्थिति बाबाके सामने रखी। आप बोले, 'मैंने सभी बातें जान ली हैं। यदि तुम करो तो मैं तुम्हें जपके लिये मन्त्र और ध्यान बता दूँ।" मैंने प्रार्थना की और उन्होंने मुझे भगवान् शिवकी उपासना उनके ध्यानकी विधि और जपनेके लिये मन्त्र बतलाया। इसके सिवा नित्यप्रति श्रीरामायणजीका पाठ करनेकी आज्ञा दी और प्रत्येक दोहेके साथ निम्नलिखित चौपाईका संपुट लगानेका आदेश दिया—

'नाथ भक्ति तव सब सुखदायिनि।
देहु कृपा करि सो अनपायिनि।

इससे पूर्व मैंने पाँच लाख 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र लिखने-

का संकल्प किया था और तव तक ढाई लाख पूरे हो चुके थे। बाबाने उस सङ्कल्पको पूरा करनेकी सम्मति दी। मैं सदैव इस चिन्तामें रहती थी कि मेरे दिन सदा दुःखमें ही बीतेंगे। परन्तु बावाने कुछ ऐसी बातें बतलायीं जिन्हें यहाँ प्रकट करना तो उचित नहीं है, परन्तु मेरे मनसे वह चिन्ता जाती रही।

मेरे बड़े भाई बहुत बीमार थे। उनकी आँखोंमें ऐसी उत्कट पीड़ा थी कि उनकी चिल्लाहटके कारण आस-पासके लोग भी बेचैने हो जाते थे। मैं छोटे भाईके साथ वृन्दावन बाबाके पास पहुँची और उनसे सारा दुःख निवेदन किया। लौटनेपर भाई साहबने बतलाया कि जिस समय तुमने बाबासे मेरी दशा निवेदन की उसी समयसे मेरा दर्द कम होने लगा है। बाबाके जीवनकालमें और अब भी जब-जब वे बीमार पड़ते हैं मैं बाबाके चरणोंमें ही उपस्थित होती हूँ और उसीसे उनका दुःख दूर हो जाता है अथवा उसमें कमी तो निश्चय ही हो जाती है।

मेरी ससुराल भी चँदौसीमें ही है और वह धन-धान्यसे पूर्ण है। पर पिताजीका घर सामान्य स्थितिका है। पतिकी बीमारी आदि अनेकों कारणोंसे मैं प्रारम्भसे ही पिताके ही घरपर रही हूँ और जीवनपर्यन्त वहीं रहनेका विचार भी रहा है। मैंने बाबासे प्रार्थना की कि मेरे निर्वाहके लिये पतिके घरसे मुझे कुछ खर्चा मिलना चाहिये। बाबा बोले, "हाँ, ठीक है।" परन्तु ससुरालवाले कहते थे कि चाहे हजारों रुपये खर्च हो जाँय एक पाई भी नहीं देंगे। चँदौसीकी अदालतमें भी दावा किया गया, परन्तु उनके पास हर प्रकारका बल था। तथापि बाबा कहते थे कि अवश्य मिलेगा। अन्तमें कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि उन लोगोंने स्वयं ही पिताजीके पास आकर पचास रुपये मासिक खर्चा देना स्वीकार कर लिया। मैं तो इसे एकमात्र श्रीमहाराजजीकी ही कृपा मानती हूँ।

अनेकों बार ऐसे प्रसंग आये कि मैं बाबा के पास जाती और मुझे कुछ पूछना होता तो वे बिना पूछे ही मेरे हृदयकी बातको जानकर उत्तर दे देते और उससे मेरा समाधान हो जाता। यदि मैं कोई घबड़ाहटका प्रसंग लेकर जाती और मुझे दूसरी ही गाड़ीसे लौटना होता तो वे मेरे सूचना न देनेपर भी स्वयं ही आ जाते और पूछते कैसे आयी ? और यदि कोई जल्दी न होती. निश्चिन्तता होती तो फिर घंटों बाद मिलते।

मैंने बाबामें वैराग्य और दीनवत्सलताका गुण विशेष रूपसे अनुभव किया। वे सब कुछ करते हुए भी सबसे अलिप्त रहते थे। तथा कोई आश्रयहीन व्यक्ति उनका आश्रय लेता तो उसपर सबसे अधिक कृपा करते थे। मुझे जीवनकालमें तथा अब भी अनेकों बार स्वप्नमें बाबाके दर्शन हुए हैं और होते हैं। कोई समस्या आ पड़े तो वे अब भी स्वप्नमें दर्शन देकर समाधान कर देते हैं। यदि बाबाने मुझपर कृपा न की होती तो मेरा कोई सहारा नहीं था, सारा जीवन ही दुःखमें बीतता।

श्रीप्रतापसिंहजी, जिरौली (अलीगढ़)

प्रथम दर्शन

उन दिनों मैं बालक था। पं० रामप्रसादजीके छोटे भाई वासुदेव रामघाट गये थे और बाबाके दर्शन कर आये थे। वे कहा करते थे कि मैं तुम लोगों को एक महात्माके दर्शन कराऊँगा। वे बहुत ही कम बोलते हैं और सर्वदा ध्यानस्थ रहते हैं। उनकी बातें सुनकर मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठा तो होती थी, परन्तु बालक होनेके कारण मैं स्वतन्त्र-रूपसे अकेला नहीं जा सकता था। अकस्मात् एक दिन सुननेमें आया कि बाबा कौड़ियागंज पधारे हैं। और काली नदीके किनारे मन्दिरमें ठहरे हैं। तब मैं पं० रामप्रसादजी आदि कई व्यक्तियोंके साथ उनके दर्शनों को गया। जाकर बाबाके चरणोंमें प्रणाम किया और बैठ गया।

उस समय बाबाका शरीर बहुत हल्का था। वे सदैव शान्त मुद्रामें रहते थे। कोई आये कोई जाये, बहुत ही कम बोलते थे। कभी तो केवल संकेतमात्र ही कर देते थे। बाबाने मेरी ओर संकेत करके पूछा, "यह लड़का कौन है ? इसका क्या नाम है ?" पं० शिव दयाल बतलाने लगे तो बोले, "उसे ही कहने दो।" इस समय इससे अधिक और कोई बात नहीं हुई। मैंने मन्दिरमें एक रुपया चढ़ा दिया था। इसपर कोई बोले, "रुपया चढ़ा दिया है। पुजारी सुल्फेबाज है उसका दुरुपयोग करेगा।' इसपर बाबा बोले,

"उसने तो ठाकुरजी को रुपया चढ़ाया है, पुजारीको तो दिया नहीं है। उसे तो ठाकुरजीको चढ़ानेका ही फल प्राप्त होगा।" उसी समय बाबासे जिरौली पधारनेके लिये प्रार्थना की गयी। आप बोले, "अच्छा, कभी आऊँगा।" उसके पश्चात् होलीके बाद तृतीयाको आप आये और दो दिन ठहरकर तीसरे दिन रामघाट चले गये। फिर तो प्रत्येक तीसरे-चौथे वर्ष जिरौली पधारनेकी कृपा करते रहे।

साधन

मेरे लिये बाबाने गायत्री तथा एक अन्य इष्टमन्त्रका जप और श्रीरामायणजीका पाठ करनेकी आज्ञा दी थी। मेरा स्वभाव था कि मैं उनसे कभी कोई प्रश्न नहीं करता था। सत्संगमें वे जो कुछ कहते उसे ही सुना करता था और उतनेसे ही मेरी जिज्ञासा शान्त हो जाती थी।

एक बार कोई महात्मा बाबाके पास आनेवाले थे। उनके स्वागत-सत्कारके लिये आप बहुत दौड़-धूप कर रहे थे। शरीरसे कृश तो थे ही। मैं मन ही मन सोच रहा था कि महाराज इतनी दौड़-धूप क्यों कर रहे हैं? इतनेमें आपने मेरे पास आकर कहा, "सबहिं मानप्रद आपु अमानी।" उनके मुखसे ये बचन सुनते ही मेरा समाधान हो गया।

उनकी सहनशीलता

मैंने बाबामें विशेष गुण यह देखा कि वे सहन करनेमें सुमेरु पर्वतके समान थे। उनके सैकड़ों-हजारों भक्त थे। वे अनेकों अनुकूल-प्रतिकूल क्रियाएँ करते रहते थे। पर वे सभी सहन कर लेते थे। कभी किसीपर अप्रसन्न नहीं होते थे और न किसीका परित्याग ही करते थे। उनका उसके साथ ठीक वैसा ही व्यवहार रहता था जैसा अपराध करनेसे पूर्व। वे फिर भी उससे 'ले' बेटा ! अमुक वस्तु ले' इत्यादि बोलकर उसके स्नेहको

सुरक्षित रखते थे, भले ही बेटा उनकी जानकारीमें ही उनके विपरीत आचरण कर रहा हो।

एक बार बाबा रामघाटमें सिद्धासनसे विराजमान थे। सामने अनेकों भक्तजन बैठे हुए थे। अकस्मात् एक काला साँप आया और महाराजकी गोदमें होता हुआ निकल गया। तथापि वे चुपचाप शान्त भावसे बैठे रहे। इसी प्रकार एक बार छप्परके नीचे विषखोपड़िया दिखायी दी। उसे हटाने का लोगोंने प्रयत्न भी किया; परन्तु वह सबकी ओर बढ़ी चली आयी। सब लोग भयभीत हो गये। कोई भाग चले और कोई लड़खड़ाकर गिर गये। परन्तु बाबा ज्योंके त्यों शान्त भावसे बैठे रहे। कोई बोल उठा, "महाराज! इसके काटनेपर कोई नहीं बच सकता।" इस पर आप ने कहा, 'क्या सब इसीके काटनेसे मरते हैं?'

एक बार आप रामघाटसे गोरहा जा रहे थे। मार्गमें दिन छिपनेपर आप एक जगह गुदड़ी डालकर लेट गये। नीचे साँप का बिल था। रातभर भुन-भुनकी ध्वनि आती रही, पर आप उठे नहीं। सबेरे गुदड़ी उठाते ही एक काला साँप फुफकार कर उठा, पर उसने आपको काटा नहीं। वह स्थान महाराजने मुझे दिखाया था। इससे भयके अवसरोंपर उनकी विलक्षण निर्भीकता तथा धैर्यका पता चलता है। ऐसे अवसरोंपर दूसरे लोग तो भागने लगते हैं, परन्तु उनके लिये मानो वे कुछ भी नहीं थे।

उदारता और संकल्पसिद्धि

कयामपुरके मुलायमसिंह एकबार अपने दादाजीके साथ श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ रामघाट गये। उस समय वे बालक थे। दर्शन करनेके बाद जब ये लोग विदा हुए तो बाबाने और सबको तो मिठाईका प्रसाद दिया, पर इन दोनोंको केवल लवंग हीदीं। ये बालक तो थे ही, सोचने लगे—बाबाने औरोंको तो

लड्डू दिये, पर हमें केवल लोंग ही दीं। बाबा इनके मानसिक संकल्प को जान गये और इन्हें बुलाकर चार सेर लड्डू प्रसादमें दिये तथा बोले, "बेटा! ये लड्डू तुम ले जाओ, परन्तु खाना नहीं, इन्हें दूसरोंको ही बाँट देना।" बाबाकी आज्ञानुसार इन्होंने ऐसा ही किया।

मुलायमसिंह धनीपुरमें रहते थे। बाबा भी वहीं बागमें ठहरे हुए थे। वहाँ भक्तोंके लिये साग-पूड़ी आदि बना। सब लोग भोजन करने लगे। धीरे-धीरे और भी अनेकों व्यक्ति दर्शनार्थ आये और वे भी भोजनमें सम्मिलित हो गये। परिणाम यह हुआ कि और सामान तो शेष रहा परन्तु आटा समाप्त हो गया। अब तुरन्त आटा कहाँ से आवे? मुलायमसिंह घबड़ाये। तब बाबाने इन्हें बुलाकर कहा, "अब तुम एक पूड़ी भी मत बनवाओ। मेरे पास सब सामान है।" ये बोले, "महाराज! भोजन करनेवाले तो अभी बहुत आदमी हैं और आटा समाप्त हो गया है।" बाबा बोले, 'कोई चिन्ता नहीं! मेरे पास सब सामान है।" उन्हें आश्चर्य हुआ कि सामान कहाँ छिपा है। परन्तु चुप हो रहे। आधा घंटा बाद दिल्लीसे एक कार आयी। उसमें लड्डू, पूड़ी,कचौड़ी सभी सामान पुष्कल मात्रामें भरा था। सबने यथेष्ट प्रसाद पाया।

बाबामें ऐसी ही अनेकों सिद्धियाँ थीं, जिनका सर्व साधारण-को पता नहीं था। मुझपर बाबाका सदा ही स्नेहमय संरक्षण रहा है। अब भी अनेकों बार वे स्वप्नोंमें दर्शन देते हैं। परन्तु पहले की तरह कोई बातचीत नहीं होती।

———

पं० श्रीरामप्रसादजी, जिरौली [अलीगढ़]

संसर्गका सूत्रपात

(१)

मेरे पूज्य पिता पं० गुलाबदत्तजी तथा कुँवर प्रतापसिंहके पिता ठाकुर कल्याणसिंहजी साधुसेवी पुरुष थे। इन्हींकी सेवासे आकर्षित होकर अनेक सन्त हमारे गाँवमें आया करते थे। उनमें पूज्यपाद स्वामी मौजानन्दजीका बहुत अधिक सम्मान था। यमुनापारके लोग उन्हें 'मौजा सिद्ध' कहा करते थे। मेरे तथा ठाकुर साहबके परिवारकी उनमें बहुत अधिक श्रद्धा थी। मुझसे छोटे मेरे दो भाई शिवदयाल और वासुदेव थे। अब वे दोनों ही स्वर्गवासी हो चुके हैं। उन दिनों पूज्यपाद श्रीउड़िया बाबाजीको बहुत कम लोग जानते थे। ये बातें आजसे प्रायः चालीस वर्ष पूर्व की हैं।

एक बार मेरे सबसे छोटे भाई वासुदेव गङ्गास्नानके लिये रामघाट गये। वहाँ उन्होंने लोगोंसे सुना कि आजकल यहाँ एक बड़े ही विरक्त महात्मा आये हुए हैं। वे प्रायः झाड़ी या झाऊओंमें ही पड़े रहते हैं, किसीसे भी मिलते-जुलते नहीं हैं। वासुदेवकी इच्छा उन महात्माजीके दर्शनोंकी हुई। उन्होंने उनकी बहुत खोज की, परन्तु कहीं मिल न सके। इस प्रकार तीन दिन बीत गये। किन्तु यदि सच्ची खोज और तीव्र व्याकुलता हो तो यह हो नहीं सकता कि सन्त कृपा न करें। तब तो वे उसकी अभि-

लाषा पूर्त्तिका कोई न कोई अवसर दे ही देते हैं। इसी न्यायसे चौथे दिन वासुदेवकी लालसापूर्त्तिका सुयोग भी जुट ही गया। वे खोजते-खोजते वनखण्डेश्वर महादेवके समीप इमलीवाली कुटीमें पहुँचे। वहीं उन्हें महाराजजीके दर्शन हुए। उन्होंने देखा वे सिद्धासनसे विराजमान हैं, उनका शरीर कृश है, नेत्र आधे खुले हुए हैं और शरीरपर कौपीनके सिवा और कोई वस्त्र नहीं है। इस अवस्थामें देखकर वासुदेव सहम गये। तब श्रीमहाराजजीने धीमे स्वरमें कहा, "कौन है ?"

वासुदेव—मैं एक ब्राह्मण हूँ।

बाबा—कहाँ रहता है ?

वासुदेव—मैं जिरौली रहता हूँ।

बाबा—यहाँ कैसे आया है ?

वासुदेव—गङ्गास्नानके लिये आया था। तीन दिनसे आपके दर्शनोंके लिये घूम रहा था।

बाबा—तू क्या करता है।

वासुदेव—मैंने दसवीं क्लास पास की है। मेरे भाई मुझे थानेदारीकी शिक्षा पानेके लिये भेजनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

बाबा—तू वहाँ जाना चाहता है या नहीं ?

वासुदेव—नहीं

बाबा—तू नहीं जायगा। अच्छा, अब बस्तीको जा।

वासुदेव—आपके लिये कुछ भिक्षा लाता हूँ।

बाबा—नहीं, मैंने सात दिनमें भिक्षा करनेका नियम लिया हुआ है।

वासुदेव—आज कितने दिन हुए हैं।

बाबा—चार।

वासुदेव—तो महाराजजी ! दूध ले आऊँ।

बाबा—नहीं, दूध क्या भिक्षा नहीं है ?

वासुदेव—महाराज ! आप बहुत दुर्बल हो रहे हैं, दूधके लिये तो आज्ञा दे ही दें।

बाबाने फिर मना कर दिया। वासुदेव तीन दिन और रामघाटमें ठहरे। उन्होंने प्रथम दर्शनमें ही श्रीमहाराजजीके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। अब श्रीमहाराजजीको भिक्षा कराये बिना उसका चित्त जिरौली लौटना नहीं चाहता था। सातवें दिन वे पूड़ी, मिठाई और दूध लेकर झाऊओंमें पहुँचे। देखते ही बाबा बोले, "तू अभी गाँवको नहीं गया ?" वासुदेवने उत्तर दिया, "महाराज आपको भिक्षा कराये बिना जानेको चित्त नहीं हुआ। गाँववालोंसे सुना था कि आप खिचड़ी या पानीमें मीड़कर रोटी खाते हैं। तब बाबाने बिना मीठा मिला आधा पाव दूध पी लिया और अन्य पदार्थमेंसे भी थाड़ासा हथेलीपर लेकर पा लिया। शेष प्रसाद वासुदेवने ही पाया। इसके पश्चात् वे जिरौली चले आये।

जिरौली आकर वासुदेवने मुझसे तथा शिवदयालसे कहा कि इसबार रामघाटमें मैंने एक विचित्र सन्त देखे, ऐसे कोई सन्त तो हमने आज तक नहीं देखे। परन्तु हम लोगोंने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसके बाद भी वासुदेव तो बाबाके दर्शनोंको जाते रहे, किन्तु हम लोग या गाँववालोंमेंसे कोई अन्य लोग नहीं गये। प्राय: डेढ़ वर्ष बाद वासुदेवने हम दोनों भाईयोंसे फिर कहा कि एकबार आप लोग उड़िया बाबाके दर्शन करो तो सही। मैंने कहा, 'तू साधुओंको क्या जानता है ? ऐसे बहुत ठग डोलते हैं। यह भी कोई ठग ही होगा।" इससे वासुदेवको कुछ क्रोध हो आया। परन्तु मुझपर तो आर्यसमाज के संस्कारोंका प्रभाव था और हम लोग स्वामी मौजानन्दके सामने किसी महात्माको कुछ समझते ही नहीं थे। उन्हींको सबसे बड़ा सन्त मानते थे। इस कटु वाक्यको कहकर मैंने जो महदपराध किया उसका मुझे बड़ा पछतावा है, परन्तु बाबा तो

मुझसे यह बात सब लोगोंके सामने कहलाकर खूब हँसते थे। शिवदयालने कहा, "एक बार चलकर देखना तो चाहिये।" बस, इसी समयसे शिवदयालको श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी लालसा रहने लगी।

(२)

उन दिनों शिवदयाल एक पण्डितसे मध्यमाके चौथे खंड की पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे पण्डितजी व्याकरणाचार्य थे। उस समय उनकी आयु प्रायः चालीस वर्षकी थी। दो वर्ष पूर्व उनकी धर्मपत्नीका देहान्त हो चुका था। दूसरा विवाह करनेकी उनकी बड़ी इच्छा थी और इसी निमित्तसे वे दो महीनेसे 'पत्नीं मनोरमां देहिमनोवृत्तानुसारिणीम्। तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्' यह सम्पुट लगाकर दुर्गासप्तशतीका पाठ किया करते थे। शिवदयाल तो उनसे कहा करते थे; "पण्डितजी! अब आप विवाहके झगड़ेमें क्यों पड़ते हैं, भाइयोंके सन्तान है ही।" परन्तु पण्डितजीपर इस बातका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। शिवदयालके मनमें महाराजजीके दर्शनोंकी लालसा तो थी ही। वे पण्डितजीको साथ लेकर रामघाट पहुँचे। श्रीमहाराजजी इमलीवाली कुटीमें ध्यानावस्थित विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर दोनोंने ॐ नमो नारायणाय किया। शिवदयालने चरणस्पर्श करके प्रणाम भी किया।

श्रीमहाराजजीने धीरेसे 'नारायण' कह कर पूछा, "तुम लोग कौन हो?"

शिवदयाल—मैं ब्राह्मण हूँ, जिरौली रहता हूँ। और ये पण्डितजी हैं, आचार्य पास हैं।

बाबा—ये किसी पाठशालामें पढ़ाते हैं?

शिवदयाल—अभी पढ़ाते तो नहीं, किन्तु किसी पाठशालामें पढ़ानेका विचार कर रहे हैं। पहले विवाह करनेकी इच्छा है। इनकी प्रथम पत्नीका देहान्त हो चुका है।

इसके पश्चात् थोड़ी देरतक बाबा दोनोंकी ओर देखते रहे। उस समय शिवदयाल मन ही मन सोच रहे थे कि वासुदेवका कथन ठीक ही था, सचमुच ये बड़े विचित्र महात्मा हैं। फिर बाबाने दोनों ही को यह श्लोक सुनाया—

'पुनरालिङ्‌ग्यते कान्ता पुनरेव तु भुज्यते।
इय बालजनक्रीड़ा लज्जा हि महतां जने ॥'*

इस श्लोकको सुनकर शिवदयाल ऐसे प्रभावित हुए और उनका हृदय बाबाकी ओर ऐसा आकर्षित हुआ कि तबसे वे सदाके लिये बाबाके ही हो गये। परन्तु पण्डितजी पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तब शिवदयालने उनसे कहा कि यदि शास्त्रकी ऐसी आज्ञा है तो कमसे कम जो शास्त्रज्ञ पण्डित हैं उन्हें तो इस आज्ञाका पालन करना ही चाहिये। बाबाने भी कहा कि पण्डितजी ! अब तो आप शेष जीवन पठन-पाठन, भजन-सत्संग और शास्त्रावलोकनमें ही व्यतीत कीजिये। जीवनका क्या भरोसा है। पण्डितजीने यद्यपि ऊपरी मनसे 'अच्छा, महाराज !' कहा और उस दिनसे उक्त सम्पुट भी छोड़ दिया, तथापि उनके मनसे विवाहका संकल्प निकला नहीं। उसके पश्चात् बाबासे आज्ञा लेकर दोनों लौट आये। इसके थोड़े ही दिनों पश्चात् पण्डित-जीका देहान्त हो गया।

जिस दिन शिवदयाल रामघाटसे लौटकर आये उससे दो दिन पूर्व वासुदेवने मुझसे फिर कहा कि तुमने श्रीमौजानन्दजीको तो देखा ही है, एक बार श्रीउड़ियाबाबाजीके भी दर्शन करो। परन्तु मेरा तो फिर भी वही उत्तर था, ' तुम साधुको क्या जानो ? गुफामें रहनेसे कोई साधु नहीं हो जाता। होगा कोई ठग ।" मेरे इस उत्तरसे वासुदेव कुछ रिस-सा हो गया। दो दिन पश्चात्

---

* बार-बार स्त्रीका आलिंगन किया जाता है और बार-बार उसका भोग। यह मूर्खोंकी क्रीडा महापुरुषोंमें लज्जाकी बात है।

शिवदयाल भी लौट आये। वे भी बोले. "भैया! वासुदेव डेढ़ वर्षसे कहता था, परन्तु हम लोगोंने श्रीउड़िया वाबाके दर्शन नहीं किये, बड़ी गलती की। वास्तवमें वे बड़े त्यागी और विरक्त महात्मा हैं। हम तो उनके दर्शन करके मन्त्रमुग्ध हो गये और उन्हींपर निछावर हो गये।' वासुदेव बोला, "मैं तो बहुत दिनोंसे कह रहा हूँ; परन्तु आप लोग न जाने क्या समझ रहे हैं?"

अब तो मेरा मन भी बाबाके दर्शनोंके लिये चलने लगा। संयोगवश उन दिनों वावा मौजानन्द भी जिरौली आये हुये थे। उनके सामने यही प्रसंग चला। वे बोले, "अरे भाई! उड़िया बाबा तो बड़े त्यागी, विरक्त और योगनिष्ठ महात्मा हैं। उनके समान इस देशमें कोई दूसरा साधु है क्या? मैंने उनका दर्शन किया है।" बस अब तो मानो उड़िया वावाजीके उच्च कोटिके संत होनेके विषयमें हम-जैसे मूर्खोंके लिये मुहर लग गयी। अब उनका दर्शन करनेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हुई।

(३)

इसके तीन-चार दिन पश्चात् मैं यज्ञ करनेके लिये शाहगढ़ गया। वहाँ सुननेमें आया कि श्रीउड़िया वावाजी काली नदीके किनारे कौड़ियागंजके महादेव-मन्दिरमें ठहरे हुए हैं। मुझे उनके दर्शनोंकी बड़ी इच्छा हुई। शाहगढ़के विहारीसिंह एवं छत्रसिंह आदि कुछ आर्यसमाजी सज्जन भी साथ चलनेको तैयार हुए। मैंने उनसे कह दिया कि मैं आगे चलता हूँ, बागकी छायामें मिलूँगा और चल दिया। ज्येष्ठका महीना था। पसीनेसे सारा शरीर लथपथ हो गया तथापि चित्त यह देखनेके लिये व्याकुल था कि उड़िया बाबा कैसे हैं? दिनके डेढ़ बजे थे। परन्तु बागकी छायामें कौन बैठे? मैं सीधा मन्दिरपर पहुँचा। पूछा 'यहाँ उड़िया बाबा आये हैं?" एक वैष्णव साधुने उत्तर दिया, 'आये

तो हैं परन्तु न जाने कहाँ चले गये हैं ? आस-पास देखो, किसी पेड़के नीचे होंगे।" मैंने चारों ओर देखा। खोजते-खोजते एक छोटी-सी गुमटीमें, जिसमें शिवलिंग है, एक साधु पड़े दिखायी दिये। उनसे मैंने बड़ी आतुरतासे पूछा, "यहाँ उड़िया बाबा आये हैं, कहाँ हैं ?" बड़े धीमे स्वरमें उत्तर मिला. "क्यों ?" मैंने कहा, 'दर्शन करूँगा।" बोले 'कहाँसे आया है ?" मैंने कहा, "शाहगढ़से।' वे बोले, "बैठ जा, तेरा गाँव कौन-सा है ?" मैंने कहा, 'बाबा ये बातें पीछे बताऊँगा। पहले उड़ियाबाबाजीके दर्शन कर लूँ।"

इस प्रकार मैं उनसे बातें करते-करते माथेका पसीना पोंछता जाता और इधर-उधर देखता जाता था। उनसे बोला, "वे इधर आये हैं, कहीं चले तो नहीं गये। यदि कोस-दो कोस निकल गये हों तो दौड़कर दर्शन कर लूँगा। आपको मालूम हो तो जल्दी बता दें, देर न करें।" उन्होंने कहा "तू ब्राह्मण है ? बैठ जा।" उनके कहनेसे मैं मन मार कर बैठ गया। सोचा कि बिना बैठे ये बतायेंगे नहीं, व्यर्थ देर कर रहे हैं। वे बोले, "इस दोपहरीमें क्यों आया, ठंडक पड़नेपर आता। तुम कितने भाई हो ? पंडित हो ?' अब मुझसे न रहा गया। मैं धीरे-धीरे उठकर खड़ा हो गया और बोला, "महाराज ! मैं आपको ये सब बातें बताकर ही जाऊँगा, परन्तु पहले उड़िया बाबाजीके दर्शन कर लूँ।' यह कहकर मैं फिर इधर-उधर देखने लगा।

मेरी अधीरता देखकर वे उठकर बैठ गये और बोले, 'यह मेरा ही नाम है।" मैंने आश्चर्यसे कहा, "ऐं' महाराज ! आपको ही उड़िया बाबा कहते हैं ?" वे मधुर मुसकानके साथ बोले, "हाँ।" मैंने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, आप !" वे फिर हँसे और हाथसे बैठनेका संकेत किया। मैं यों ही बैठ गया उन्होंने

कहा, 'ठीकसे बैठ जा। तेरा गाँव जिरौली है ? तू वासुदेवका भाई है ?" बस, अब मैंने जानलिया कि ये ही उड़िया बाबा हैं। इन्होंने वासुदेव और शिवदयालके समान आकृति होनेके कारण मुझे पहचान लिया है। मैंने आश्चर्यसे कहा, 'हाँ बाबा! आप ही हैं उड़ियाबाबा? मैं तो समझता था आप बड़े लम्बे-चौड़े और मोटे होंगे। आप तो बहुत ही हल्के और छोटे-से दिखाई दे रहे हैं।" बाबा बोले, 'क्या हल्का, पतला, छोटा साधु नहीं होता ?' मैंने हाँ' कहते हुए बाबाके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और उन्होंने हँसते हुए धीरे से 'नारायण' कहा।

उस समय मुझे जो हर्ष और कौतूहल हुआ उसे बाबा ही जानते हैं। मैं आनन्दसे गद्‌गद हो गया। मानो मुझे जीवनकी अमूल्य निधि मिल गयी। मन ही मन पछता रहा था कि मैंने वासुदेवके कहनेसे अवतक दर्शन नहीं किये यह बड़ी गलती की। बाबा बोले. 'तेरा गाँव यहाँसे कितनी दूर है ?' मैंने कहा, 'डेढ़-दो मीलके लगभग है।' तब बोले, 'मैं तेरे गाँव चलूँगा।' यह कहकर तो मुझे बाबाने अपार आनन्द और प्रेममें सराबोर कर दिया। बिना ही कहे इतना अनुग्रह कर रहे हैं। उन्होंने मुझे सदाके लिये अपना लिया और मैंने भी उनके श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण कर दिया। उस समय बाबा मेरी हार्दिक स्थिति और मुखाकृतिको बड़ी करुणाभरी दृष्टिसे देख रहे थे। इस प्रकार तीन घंटेतक बाबाके दर्शन और एकान्त-चर्चासे जो आनन्द मिला उसका क्या वर्णन करें ?

इतनेमें शाहगढ़के कई सज्जन आ गये और कोई दण्डवत् तथा कोई नमस्ते आदि कहकर बैठ गये। उनके प्रश्न करनेपर बाबा उनसे भगवत्‌चर्चा करते रहे। आर्यसमाजी संस्कार होनेके कारण वे तो ईश्वरको केवल निराकार ही मानते थे। परन्तु

बाबाने उन्हें बताया कि ईश्वर साकार भी है और निराकार भी। केवल निराकार माननेसे ईश्वरकी सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। अतः वह साकार भी है, निराकार भी है और साकार निराकारसे भिन्न भी। फिर 'महात्मा गान्धीकी जय' के नारे लगाते पचासों मनुष्य आ गये। उनमें बच्चे ही अधिक थे। कुछ देर बैठकर सभी बाबाके दर्शन करते रहे। फिर सायंकाल समीप जानकर सब लोग आज्ञा लेकर अपने-अपने गाँवोंको चले गये। मैं भी उस दिन जिरौली लौट आया और दूसरे दिन नेत्रपालसिंह नरसिंहपालसिंह, प्रतापसिंह एवं शिवदयालको साथ लेकर पुनः दर्शन करनेके लिये गया। महाराजके दर्शन करके सभी लोग आनन्दमग्न हो गये। पीछे भी जबतक बाबा कौड़ियागंजमें रहे हम लोग दर्शनोंको जाते रहे तथा अपने अपने घरोंसे उनके लिये भिक्षा भी ले गये। और भी अनेकों गाँवोंसे दर्शनार्थी आते और आपके दर्शन करके अपने को कृतकृत्य मानते थे। इस प्रकार कई दिन तक आपने वहाँ विश्राम किया।

जिरौलीमें पहली बार

कौड़ियागंजसे बाबा शाहगंज पधारे। तीसरे दिन मैं अखाड़े पर पुरुषसूक्तकापाठ कर श्रीरामचरितमानसका पारायण कर रहा था। गाँवके ठाकुर साहब तथा कुछ अन्य लोग बाबाके दर्शनार्थ शाहगंज जानेकी तैयारी कररहे थे। मैं अखाड़ेके ऊपर बनी पुरानी कुटीमें था। मैंने देखा कि बाबा तो ऊपर चढ़कर मेरी ही ओर आ रहे हैं। उनकी ऐसी अहैतुकी अनुकम्पा देखकर मैं तो हर्षसे गद्‌गद्‌ हो गया। ऐसा आनन्द हुआ मानो साक्षात् श्रीभगवान् ही आ गये। तुरन्त चरणोंमें प्रणाम किया और बैठनेके लिये आसन बिछाना ही चाहता था कि आप अपनी गुदड़ी डालकर बैठ गये। मैं ठाकुर नेत्रपालसिंहको आपके आगमनकी सूचना देनेके लिये

दौड़ा, किन्तु आपने रोक दिया। मैंने मीठा डालकर शर्बत तैयार किया। उसमें से थोड़ा आपने मुँहमें डाल लिया। इतनेमें नेत्रपाल-सिंह, प्रतापसिंह आदि अनेकों भक्त आ गये। डेढ़ वर्षमे जिनकी महिमा सुन रहे थे उन्हीं श्रीउड़िया वाबाजीको अपने ही स्थान-पर पाकर सबको अतीव हर्ष हुआ। थोड़ी देरमें घरसे भिक्षा बनकर आ गयी। उसमेंसे थोड़ी-सी केलेके पत्तेपर रखकर आपने पा लीं। रात्रिमें गाढ़ा मलाई पड़ा दूध लाया तो बोले, 'मुझे अभ्यास नहीं है।' मैं दूध नहीं पीता।' मैंने बहुत आग्रह करके छटाँक भर दूध पिलाया। फिर भी आपने उसमेंसे मलाई निकलवा दी। मलाई तो आप अब भी नहीं पीते थे। इस प्रकार तीन दिन ठहरकर आप पिलखना होते हुए रामघाट चले गये। गाँवके कई लोग दूर तक साथ गये। मैं पिलखनातक पहुँचाकर लौट आया।

बाबा और वासुदेव

हम तीनों भाइयोंमें सबसे पहले वासुदेवने ही बाबाके दर्शन किये थे और उसका श्रीचरणोंमें अनुराग भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था। एकबार किसी कारणवश वह बाबासे रूठ गया और उसने उनके पास आना छोड़ दिया। एकदिन रामघाटमें अकस्मात् बाबा मुझसे बोले, 'आज वासुदेव ग्वालियर से आ रहा है।' मुझे तो विश्वास भी न हुआ, सोचा कि वह तो रूठा हुआ है और आज-कल कहाँ है इस बातका भी पता नहीं है। किन्तु देखते हैं कि रातको ११ बजे वह फलोंकी टोकरी और दूध आदि लिये कुटीपर आ रहा है। आकर उसने बाबाके चरणोंमें प्रणाम किया और बैठ गया। बाबा-ने पूछा, 'कहाँसे आ रहा है?' वह बोला, महाराज! ग्वालियर से आया हूँ।' वहाँसे वह बाबाके लिये एक पत्थरका गिलास भी लाया था। बाबा बड़े प्रसन्न हुए, मानो कोई घरका रूठा हुआ आत्मीयजन ही आ मिला हो। हम लोगोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई

एक दिन बाबा मुझसे कहने लगे 'रामप्रसाद ! विपत्तिमें घबड़ाना नहीं चाहिये।' मैं उनके इस संकेतको समझ नहीं सका। इसके कुछ ही दिन पश्चात् वासुदेवको मुकदमा लग गया। उसमें बहुत खर्चा करनेपर वह जजीसे छूटा। फिर पिताजी रोगग्रस्त हुए और उनका स्वर्गवास हो गया। यहाँ तक भी विपत्तिका अन्त नहीं हुआ। इसके कुछ काल पश्चात् वासुदेवसे भी हमारा वियोग हो गया। दुर्दान्त कालने उसे भी हमारे हाथसे छीन लिया।

बाबा और माताएँ

उन दिनों बाबा माताओंको अपने पास नहीं आने देते थे। प्रारम्भमें तो ऐसा नियम किया हुआ था कि यदि कोई माई मेरी दृष्टिके आगे आ जायगी तो मैं स्थान छोड़कर चला जाऊँगा। इसलिये रामघाटमें किसी भी माईको कुटीपर जानेकी आज्ञा नहीं थी। परन्तु वहाँ एक विरक्त बंगालिनी माता रहती थीं। वे श्रीरामकृष्ण परमहंसकी शिष्या और एकान्तमें समाधिका अभ्यास किया करती थीं। कभी-कभी कई दिनोंतक उनकी कुटी के किवाड़ बन्द रहते थे। केवल वे ही बाबाके पास जा सकती थीं। वे उनसे योगसम्बन्धी प्रश्न किया करती थीं। बाबा उनसे बहुत प्रसन्न थे। एकदिन आपने उनसे पूछा कि माताजी ! आप-को यह समाधि-सिद्धि किस प्रकार प्राप्त हुई ? तब उन्होंने उत्तर दिया, बाबा ! यह सब गुरुकृपा ही है—'गुरुमूर्ति सदा ध्यायेद् गुरुमन्त्रं सदा जपेत्।' बस, इसीसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है।' वे अपने पास गुरुदेवका एक चित्र भी रखती थीं।

ऐसी ही एक माता वृन्दावनमें भी थीं। वे भी बंगाली थीं उनका नाम था श्रीसरोजिनी माँ। ऐसी माताएँ बहुत कम देखनेमें आती हैं। बाबापर उनका अत्यन्त स्नेह था। वे इन्हें 'गोपालजी' कहा करती थीं।

जिरौलीमें भी पहले तो कोई भी माता आपके पास नहीं जा सकती थीं। किन्तु धीरे-धीरे उनका आगमन होने लगा। वे झुण्डकी झुण्ड प्रसादादि लेकर मंगलगान करती आतीं। किन्तु आप उन्हें दस मिनटसे अधिक नहीं ठहरने देते थे। फौरन चुटकी बजाकर कह देते—'टरको।' कभी मुझसे कह देते इनसे कह दो अब जायँ।, मैं जब उनसे जानेको कहता तो वे नाराज होकर कहतीं. 'तुम्हें क्या ?' इस प्रकार खासा मनोरंजन हो जाता।

प्रथम फोटो

उन दिनों इस प्रान्तमें बाबाका कोई फोटो नहीं था। वे फोटो उतारने ही नहीं देते थे। जब हम ऐसी कोई चर्चा चलाते तो कह देते, 'फोटोकी कहोगे तो मैं चला जाऊँगा।' इससे किसीकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। कई वर्षों बाद जब आपसे सम्पर्क बढ़ गया और हमारे हृदयसे संकोचका भाव जाता रहा तब एक दिन हम लोगोंने फिर फोटोका प्रस्ताव रखा। परन्तु आपने तो वही उत्तर दिया। मैं अब कुछ ढीठ हो गया था। बोला, 'जाना हो तो चले जाना. फोटो तो हमारे पास रहेगा ही।' इसपर आप मधुर मुस्कानके साथ गुदड़ी कंधेपर डालकर तुरंत खड़े हो गये। प्रतापसिंह आदिने तो समझा कि बाबा चल दिये। अतः वे घबड़ाये। परन्तु हम लोगोंने पहलेसे ही कैमरा आदि ठीक कर रखा था। बड़े आनन्दसे एक वृक्षके नीचे फोटो उतार लिया गया। इस प्रान्तमें आपका सबसे पहला फोटो यही है। यह सं० १९७२ में उतारा गया था।

उनकी कृपा

बाबा जब कभी हमारे गाँवमें आते थे तो हम उन्हें बंबामें स्नान करानेके लिये ले जाते थे। हम स्वयं तैरते और उन्हें भी तैराते। परन्तु उन्हें तैरना नहीं आता था। फिर वे एकान्तमें बैठ

कर हमें जपकी विधि, ध्यानकी रीति और अनुष्ठान आदिके विधान बतलाते थे। छः मास तक तो मेरी इसी बातको लेकर बहस रही कि द्रौपदीके पाँच पति क्यों थे? बाबाके सत्संगसे ऐसी अनेकों शङ्काएँ निवृत्त हो गयीं। उन्होंने मेरी अनेकों दुर्वासनाओंको छुड़ाकर सदाचारमें मेरीनिष्ठा बढ़ाई तथा मिथ्या-भाषणको छुड़ाकर वाक्संयमकी शिक्षा दी। उन्होंने भगवन्नामसंकीर्तनमें हमारी रुचि पैदा की। प्रारम्भमें हम लोग उनकी आज्ञासे कीर्तन तो करते किन्तु मनमें एक कौतुक-सा ही जान पड़ता था। सोचते—भला, इस प्रकार चिल्लानेसे क्या होगा? बाबाने हमें समझाया कि भगवन्नाममें बड़ी अद्‌भुत शक्ति है। कलियुगमें नामका ही सबसे अधिक महत्त्व है और सब साधन तो कष्टसाध्य हैं। उनमें लोगोंकी रुचि होना कठिन है। उनके इस उपदेशका ही यह परिणाम हुआ कि सैकड़ों व्यक्ति भगवन्नामकीर्तन करने लगे और पीछे बाबाके तत्त्वावधानसे अनेकों अखण्ड संकीर्तन हुए।

मुझे तो बाबाका दर्शन क्या मिला मानों मेरी कई पीढ़ियोंका पुण्य मूर्त्तिमान् होकर उदित हो गया। आप विशेषतः सत्य, अहिंसा और मन, वचन एवं कर्मसे किसी भी प्राणीको न सतानेका उपदेश देते थे हमारे तो वे गुरु माता-पिता और संरक्षक सभी कुछ थे। वे जिसप्रकार उस समय हमपर कृपा करते थे उसी प्रकार अब भी हमें स्मरण कर लेते हैं। उनके लीला संवरणके पाँच वर्ष पश्चात् सं० २०११ वि० में मेरी लड़कीको एकदिन स्वप्नमें उनके दर्शन हुए। तब वे बोले, 'तेरे बापके पास अब पैसा नहीं रहा और मेरे यहाँ भंडारा नहीं रहा। इसीलिये अब वह मेरे उत्सवोंमें नहीं आता।' यह उनकी महती कृपा ही है जो वे हम-जैसे तुच्छ व्यक्तियोंको अपने उत्सवोंके समय याद कर लेते हैं; नहीं तो उन पूर्णकामको हमारी क्या आवश्यकता है?

पं० श्रीनिवासजी शर्मा, बी.ए, जिरौली, अलीगढ़

मेरे पूज्य पिताजी (पं० रामप्रसादजी) और चाचाजी (श्रीशिवदयालजी) दोनों ही प्रायः श्रीमहाराजजीके पास जाया करते थे। परन्तु मेरी उनमें विशेष श्रद्धा नहीं थी। अतः मैं सोचा करता था कि ये क्यों महीनों बाबाके पास पड़े रहते हैं। पीछे कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं कि मेरा भी उनके प्रति आकर्षण हो गया और मैं भी समय-समयपर उनके दर्शनार्थ जाने लगा।

(१)

एक वार आषाढ़ मासमें श्रीमहाराजजी जिरौली पधारे। साथमें चालीस-पचास भक्त भी थे। एक दिन उनकी भिक्षा हमारे घरपर हुई। वह भिक्षाका उत्सव विवाहादिके उत्सवोंसे किसी प्रकार कम नहीं था। श्रीमहाराजजीके स्वागतार्थ बाजे भी वज रहे थे। सभीके हृदयोंमें बड़ा उत्साह था। प्रातःकाल ही आप हमारे घर आ गये थे। हम सबने मिलकर आपका पूजन किया। हमारे साथ हमारी एक बहिन भी थी। उसका नाम था विट्टो। उसे देखकर आप बोले, 'शिवदयाल क्या इस कन्याका विवाह अभी नहीं किया ?' चाचाजीने कहा, 'भगवन्! इस वर्षमें हो जायगा।' आप बोले, 'नहीं अभी दो वर्ष मत करना।' इसके पश्चात् दो वर्ष के भीतर ही वह स्वर्गवासिनी हो गयी।' इससे मुझे श्रीमहाराजजीकी महत्ताका कुछ परिचय हुआ।

(२)

इसके कुछ दिनों पश्चात् मैं वृन्दावन गया। वहाँ मैंने देखा कि बड़े-बड़े धनाढय पूंजीपति आपके पास आते हैं और उनसे आप बहुत देरतक बातचीत भी करते रहते हैं। यह देखकर मेरे

मनमें ऐसा भाव आया कि महाराजजी धनियोंसे अधिक प्रेम करते हैं, गरीबोंसे नहीं। मैं उन दिनों समाजवादी सिद्धान्तको मानता था। इसके एक वर्ष पश्चात् मेरे चाचाजी बीमार पड़े। उनकी बीमारीका समाचार सुनानेके लिये हमारे गाँवके ब्रह्मचारी बिहारीलाल वृन्दावन गये। उन्हें देखते ही महाराजजी बोले, 'अरे बिहारी! क्या तू शिवदयालकी बीमारीका समाचार लाया है? भैया! अब उसका शरीर नहीं रहेगा।' यह कहते हुए आपके नेत्रोंमें अश्रुबिन्दु छलछला आये। फिर शान्त होने-पर कहने लगे, 'शिवदयाल भक्त था......।' ऐसा कहते हुए आप गुफामें चले गये। इससे मेरा भ्रम निवृत्त हो गया। मैंने समझ लिया कि आप गरीब-अमीर सभीसे प्रेम करते हैं।

(३)

सन् १९५४ में मैंने इण्टरकी परीक्षा दी थी। प्रश्नपत्र सायंकालमें तीन बजेसे आरम्भ होते थे। एक दिन मैं रात्रिमें बहुत देरतक पढ़ता रहा। फिर दिनमें भी निरन्तर अध्ययनमें ही व्यस्त रहा। मध्याह्नमें डेढ़ बजेके लगभग विश्रामके लिये लेट गया। उस समय मुझे नींद आ गयी। उधर तीन बजेसे प्रश्नपत्र आरम्भ होनेवाला था। जब तीन बजनेमें केवल दस मिनट रहे स्वप्नमें श्रीमहाराजजीने दर्शन दिये और बोले, 'अरे! उठ, परीक्षाका समय हो गया।' मैं चौंककर उठा। घड़ीमें देखा तो दो बजकर पचास मिनट हो चुके थे। मैं तुरंत कालेज गया और परीक्षा आरम्भ होनेसे केवल दो मिनट पहले पहुँचा। मैंने परीक्षा दी और उनकी कृपासे पास हो गया।

इस प्रकार आज भी वे हमारा वैसा ही ध्यान रखते हैं जैसा अपनी लौकिक लीलाके समय रखते थे।

———

श्रीजगदीशप्रसाद शर्मा, जिरौली (अलीगढ़)

(१)

पूज्य बाबा जब-जब मेरे गाँवमें पधारते थे मुझे उनके दर्शनोंका अवसर प्राप्त होता था। इससे धीरे-धीरे उनमें मेरी श्रद्धा हो गयी। मैं उन्हें गुरुभावसे देखने लगा। मेरी इच्छा थी कि मेरा यज्ञोपवीत बाबाके द्वारा ही हो और वे ही मुझे मन्त्र प्रदान करें। एक दिन इसी निमित्तसे मैंने उनके पास वृन्दावन जानेकी पूरी तैयारी कर ली, परन्तु दादीने मुझे रोक लिया; कहने लगी कि मेरे भतीजे दीपचन्दका जनेऊ एक संन्यासीके हाथसे ही हुआ था, परन्तु पीछे वह मर गया, इसलिये तुम मत जाओ। मुझे रुकना पड़ा। परन्तु मेरी यह हार्दिक लालसा दिनों दिन बढ़ती ही रही। तथापि मेरा यह मनोरथ पूर्ण न हो सका। बाबाने अपनी लौकिक लीला संवरण कर ली।

(२)

मैं अलीगढ़ कनवरीगंजमें किरायेके मकानमें रहकर पढ़ रहा था। साथ ही एक प्रेसमें नौकरी भी करनी पड़ती थी। सं० २००९ कार्तिक कृष्णा गुरुवारका दिन था। उस दिन मुझे प्रेसमें अधिक काम करना पड़ा और अधिकारियोंकी फटकार भी सुननीपड़ी। घर लौटनेपर मैं चिन्तित हो उठा और मनहीमन कहने लगा, हे भगवान् ! मुझे कबतक ये दिन देखने पड़ेंगे। इतना कष्ट सहनेपर भी दरिद्रताके चंगुलमें पड़ा हुआ हूँ। यदि पढ़ता हूँ तो नौकरी निभनी कठिन है और नौकरी छोड़ता हूँ

तो भोजनके लाले हैं। संत महात्मा कहते हैं कि आपत्तिके समय गुरु, गुरुमन्त्र अथवा भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये। परन्तु मेरे न तो गुरु हैं न कोई गुरुमन्त्र है। किससे पूछूँ?' इस प्रकार चिन्ता करता मैं सो गया।

प्रातः काल चार बजेका समय होगा। मैंने स्वप्नमें देखा कि मैं रविवारकी छुट्टीमें गाँव आया हूँ। वहाँसे अलीगढ़ लौट रहा हूँ। रास्तेमें साइकिलपर एक मित्र मिला। उसके साथ कुछ दूर जानेपर सड़कपर एक थैला पड़ा दिखायी दिया। यह किस यात्रीका है—ऐसा कहकर मैंने उसे उठा लिया। मित्रने कहा, 'रख लो, जिसका होगा वह पूछेगा तो उसे दे देंगे।' परन्तु रास्तेमें कोई मिला ही नहीं। अलीगढ़ जाकर उसे खोला तो उसमें पचहत्तर रुपयेकी चीजें निकलीं। फिर अपनेको कमरेमें लैम्प जलाकर पढ़ते देखा। पढ़ते-पढ़ते थक जानेपर मैं पूज्य बाबाके उस चित्रकी ओर देखने लगा जो उस कमरेमें लगा हुआ था और उनसे प्रार्थना करने लगा, 'महाराजजी! आपने न तो मुझे गुरुमन्त्र ही दिया और न अन्त समय कुछ कहा ही। अब मैं क्या करूँ?' सहसा महाराजजीकी उस छविने प्रसन्न मुद्रा धारण की और बोल उठीं—'शम्भो बोल'—इस मन्त्रका जप करो।' भगवान् शिवमें मेरीश्रद्धा भी थी। बस, मेरी नींद खुल गयी। इस प्रकार ठीक गुरुवारके दिन गुरुदेवने कृपा करके मुझे गुरुमन्त्र प्रदान किया। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अगले शनिवारको मैं गाँव आया और सोमवारको अलीगढ़ लौटते समय रास्तेमें ठीक वही दृश्य सामने आया जो मैंने स्वप्नमें देखा था। वही मित्र साइकिलपर जाता हुआ मिला और स्वप्नमें जिस स्थानपर थैला मिला था वहीं थैला और उसमें पचहत्तर रुपयेकी चीजें मिलीं। इस प्रकार बाबाने मेरी दीनता देखकर मुझपर दया की और रुपयोंके साथ गुरुमन्त्र भी दिया।

(३)

मार्च सन् १९५३ ई० की बात है। हाईस्कूल की परीक्षा होने से दो दिन पूर्व मेरी बाईं डाढ़में दर्द होने लगा। मित्रोंने डाढ़ उखड़वानेकी सलाह दी। परन्तु डाक्टरने कहा, 'इससे आँखको क्षति पहुँचनेकी आशंका है।' इसलिये दन्तशूलकी निवृत्तिके लिये मैं आठ आना रोजकी दवा खाने लगा। शनिवारको दवा समाप्त हो गयी। रविवारको डाक्टरकी दूकान बंद थी और सोमवारको मुझे अँग्रेजीका प्रश्न पत्र करना था। इसी विषयमें मैं दो सालसे फेल हो रहा था और इस वर्ष भी असफल होनेकी ही आशंका थी। दिनके तीन बजे डाढ़में दर्द होने लगा और बुखार चढ़ आया। रातके आठ बजे तक यही दशा रही। तब मैं बाबाके उसी चित्रपट के आगे प्रार्थना करने लगा और अन्यान्य देवी-देवताओंकी भी शरण ली। कुछ देरमें मुझे झपकी आ गयी। उसी समय बाबाने मुझे दर्शन दिया। वे अभयमुद्रा धारण किये हुये थे। बोले, 'बेटा - तू पास है।' फिर मैं जग गया मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई तथा मेरे बुखार और दर्द भी धीरे-धीरे जाते रहे। दूसरे दिन मैंने परीक्षा दी और गाँवमें कई लोगोंसे कह भी दिया कि महाराजजीने मुझे पास होनेका आशीर्वाद दे दिया है। मैं अवश्य पास हो जाऊँगा। जब परीक्षा-फल प्रकट हुआ तो मैं द्वितीय श्रेणीमें (Second division) पास था।

(४)

यह अभी सन् १९५५ के फाल्गुन मासकी बात है। माताजीकी मृत्युके पश्चात् मेरा लालन-पालन मेरे पूज्य पितामह श्रीहोतीलालजी शर्माने किया था। अतः बचपनसे ही उनपर मेरा बहुत स्नेह था। मैं कौड़ियागंज विद्यालयमें अध्यापक था। एक दिन मुझे सहसा बाबाकी बीमारीका समाचार मिला। मैं

तुरन्त गाँव चला आया और उनकी हालत खराब देखी। अपने नित्य नियमके अनुसार सायंकालमें मैं शिवमन्दिर गया और भगवान्‌से प्रार्थना की कि बाबाकी मृत्यु न हो। उस दिन फाल्गुन शु० २ गुरुवार था। रात्रिको मैंने स्वप्न देखा कि मैं शिवमन्दिर में भगवान्‌की आराधना कर रहा हूँ। मेरी दृष्टि वहाँ लगे हुए पूज्य महाराजजीके चित्रपटकी ओर गयी और मैं विह्वल हो उठा। इतने हीमें एक चौकीपर विराजमान बाबाके दर्शन हुए। उन्होंने पास बुलाकर मुझे बताशेका प्रसाद दिया। फिर बोले, 'बेटा ! यह शरीर अस्थिर है। देख, जब मेरा ही शरीर इस संसारमें नहीं रहा तो तेरे बाबाका ही शरीर कैसे बना रहेगा। आज रातको साढ़े आठसे लेकर दस बजेतक इनकी मृत्यु हो जायगी।" यह सुनकर मैं फूट-फूटकर रोने लगा। फिर उन्होंने कहा, 'अच्छा, वे कभी-न-कभी मरेंगे तो जरूर ही। तू उन्हें मुझे दे दे। जा, गुरुकी आज्ञा है, अधिक बातें नहीं करते।' इसके पश्चात्‌ मेरी आँखें खुल गयीं। मैं चकित रह गया।

प्रातः काल मैंने बाबाकी हालत अच्छी देखी। माँगनेपर मैंने उन्हें दूधमें मीड़कर रोटी दी। सब लोग कहने लगे कि अब इनका शरीर बच जायगा। मैं दवा लेनेके लिये अलीगढ़ जा रहा था। उस समय प्रतापसिंहजीको मैंने रात्रिका स्वप्न सुनाया। परन्तु उन्हें विश्वास न हुआ और हम दोनोंमें इसी बातको लेकर बाजी लग गयी। रातको नौ बजे जब हम घर लौटे तो बाबाका शरीर छूट गया। श्रीमहाराजजीकी स्वप्नमें कही वाणी सत्य हुई।

इन सब घटनाओंसे यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि श्रीमहाराजजीकी कृपादृष्टि हम गरीबोंपर पूर्ववत् ही है। वे हमें भूले नहीं हैं। केवल आँखोंसे उनका दर्शन ही नहीं होता, उनका वरद हस्त तो अब भी हमारे ऊपर है ही।

पं० श्रीराजेन्द्रमोहनजी कटारा, हाथरस

प्रथम दर्शन

जिरौली जिला अलीगढ़के रहनेवाले पं० श्रीशिवदयाल शर्मा पूज्य बाबाके एक कर्मठ भक्त थे। वे मेरे जन्मस्थान जिला आगराके अन्तर्वर्ती ग्राम बमरौली कटारामें धर्मप्रचारके लिये आया करते थे। एक बार उन्होंने मेरे पिता पं० प्यारेलालजीसे कहा, 'आपको संतोंसे मिलनेका चाव है, इसलिये मैं आपको उड़ीसा प्रान्तके एक परम वीतराग प्रेममूर्त्ति महात्माके दर्शन कराऊँगा।' मैंने भी ये शब्द सुने और मेरे पूर्व संस्कारोंने जोर मारा। मनमें निश्चय किया कि ऐसे महापुरुषके दर्शन करके जीवनका लाभ अवश्य लेना है। किन्तु कोई भी कार्य समयसे पूर्व नहीं होता। अतएव भावना तो रही, परन्तु सुयोग न जुट सका। यद्यपि रामघाट, जहाँ श्रीबाबाका प्रायः स्थायी निवास था, आगरासे अधिक दूर नहीं है, फिर भी ऐसा साधन न बन सका कि शीघ्र ही दर्शन हो जाते।

किन्तु 'प्रभुः सर्वसमर्थो हि' भगवान्‌के लिये कौन काम सहज नहीं है ? अतः उक्त पण्डितजीके घरसे किसीके विवाहका निमन्त्रणपत्र आया और यही मेरे लिये पूज्य बाबाके दर्शनोंका कारण बन गया। हम कई लोग जिरौलीसे रामघाटको चले। उनमें मैं ही सबसे अल्पवयस्क था। घोर शीतकाल था। मुझे भली भाँति स्मरण है कि प्रबल पवनके साथ वर्षा भी हो रही थी। हम सब डिबाई स्टेशनसे चार कोसकी पैदल यात्रा करके

बाबाके स्थानपर पहुँचे। वहाँ सघन वनके बीचमें एक छोटी-सी कुटिया थी, जिसमें एक द्वारके अतिरिक्त वायुप्रवेशका सम्भवतः कोई साधन नहीं था। उसके भीतर एक काष्ठशय्या थी जिसपर रात्रिमें बाबा शयन और समाधिसाधन करते थे। उसके अतिरिक्त उसमें कठिनतासे पाँच-छः व्यक्तियोंके सिकुड़कर बैठनेयोग्य ही स्थान था।

मेरी आखोंमें वह दृश्य आज भी नवीन-सा है, जब कि सायंकाल कुटीके वरांडेमें केवल बैठने भरकी एक काष्ठपीठिका-पर हमें निश्चल भावसे विराजमान एक संतशिरोमणिके दर्शन हुए। उनकी मुद्रा अत्यन्त शान्त थी, नेत्र अर्धोन्मीलित थे और शरीर प्रायः वस्त्रहीन था। शीतकालीन वर्षाके कारण अत्यन्त शीतल वायुके प्रबल झकोरे हम सभीको, बहुत कुछ पहने-ओढ़े होनेपर भी, कम्पित कर रहे थे। किन्तु साधु-बाबा अविचल भावसे ध्यानस्थ हुए मस्त बैठे थे। सहसा मेरे मनमें भगवान्‌का यह गीतोक्त वचन गूंजने लगा—'शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः' इस श्लोकमें बतलायी हुई स्थिति वस्तुतः यही है।

हमें अधिक देरतक प्रतीक्षा न करनी पड़ी कि बाबाके अर्धोन्मीलित नेत्र आकाशकी ओर उठ गये और शनैः शनैः अस्पष्ट शब्दोंके साथ नीचे झुकते हुए हम दर्शनार्थियोंपर बरस पड़े। सायंकालके धुंधले प्रकाशमें उन नेत्रोंने बताया कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और तपस्याका क्या चमत्कार होता है। उन नेत्रोंके सहज प्रकाशने जादूका काम किया और सभी दर्शकोंके सिर आपके श्रीचरणोंपर झुक गये। मन्द मुसकानयुक्त मधुर शब्दोंमें कुछ कह गये वे, परन्तु मैं न समझ सका। उक्त पण्डितजीने सबके सम्बन्धमें कुछ न कुछ बताया। अन्तमें मेरा भी संक्षिप्त परिचय दिया। इसप्रकार रात्रिके प्रायः ९ बज गये। पूज्य बाबा सहसा उठकर कुटियामें चले गये और पीछे हम भी उनके पास भीतर ही जा बैठे।

रामघाटमें

मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उस सत्त्वगुणी कुटियाकी सज्जापर ध्यान गया। अधिक-से-अधिक तीन फुट चौड़ी और ६ फुट लम्बी एक चौकीपर केवल साधारणसी चौपर्ती भगवा चादर बिछी थी तथा सिरहानेके स्थानपर तह की हुई कौपीन और कटिवस्त्र थे। इनके अतिरिक्त एक चादर और थी जिसे बाबा स्वयं ऊपर नहीं ओढ़ते थे. कोई दूसरा भले ही ऊपर डाल दे। वह भी प्रायः इधर-उधर अस्त-व्यस्त होकर पड़ जाती देखी गयी। वहाँ बैठकर मुझे तो ऐसा लगा मानो मेरे भीतरसे कोई कह रहा है कि यही वह स्थान है जहाँसे तेरा जन्म-मरणका परम्परागत व्यवसाय छूट सकता है।

कोनेमें सबसे पीछे दीवारसे सटा बैठा था मैं और किसीकी घड़ी बताने लगी कि रातके दस बजे हैं। अब महाराजजीको आराम करने दो। आप सब जाओ, सवेरे फिर दर्शन करना। ये शब्द थे एक नवीन सज्जनके जिन्होंने बाहरसे आकर वचनों द्वारा हम सब पर आक्रमण किया। प्रत्युत्तरमें सभीने उन्हें 'बाबूजी ! जय रामजीकी' कहकर अभिवादन किया। इन्हीं सज्जनका पं० शिवदयालजीने पहले 'बाबू रामसहाय' कहकर हमें परिचय दिया था। ये रामघाटमें पोस्टमास्टर और श्रीमहाराजजीके परम अन्तरंग भक्त थे।

बाबूजीके वचन मेरे लिये प्रधानतया बाणका काम कर रहे थे, क्योंकि उस मण्डलीमें नवीन व्यक्ति मैं ही था। सोचने लगा, 'शीतकालकी,इस काली-काली अँधेरी रात्रिमें इस निर्जन स्थानपर हमें अब कहाँ जाना होगा ? कहाँ हमारे ठहरनेकी व्यवस्था होगी ? हे दैव ! यह कैसा हृदयहीन बाबूजी है ! क्या साधुओंके सात्त्विक और निवृत्तिमय स्थानोंपर भी इन बाबू लोगोंका आधिपत्य रहता है ?' इसी प्रकारकी न जाने कितनी उथल-पुथल मच गयी मेरे मनमें। इसी समय बाबाने मेरी ओर कुछ संकेत किया, जिसे मैं

अपनी उधेड़-बुनमें नहीं समझ सका। तब मेरे पथ-प्रदर्शक पण्डितजी ने कहा, 'आगे बढ़कर सुनो, बाबा कुछ कह रहे हैं।' मैं आगे बढ़ गया और निःसंकोच भावसे मैंने उनके चरण पकड़ लिये। अब मैं यह समझ चुका था कि ये ही वे महापुरुष हैं जिनके दर्शनोंके लिये इतना उद्योग किया गया था। उस दिव्य विभूतिके स्पर्शने मुझे सदाके लिये बाँध लिया और मीराके शब्दोंमें मेरी गति यह हो गयी— गिरधर तेरे हाथ बिकानी।'

'भजन करता है बेटा ! मुसकान भरे मुखसे कहा श्रीबाबाने।

'कुछ नहीं, बाबा !' डरते-डरते मैं कह बैठा।

'अच्छा तो' महामन्त्रका जप किया करो और रामायणका नित्य-प्रति पाठ' सुमधुर बाणीमें उन्होंने कहा।

इतने ही में हमारे साथियोंमेंमे न जाने किसने कहा, 'अँग्रेजीवाले लोग हैं, ये क्या भजन करेंगे बाबा !'

'सभी एकसे नहीं होते, यह संस्कारी बालक है।' मानो श्रीबाबाजीने मेरे अन्तस्तलमें झाँककर देखा और निश्चयात्मक रूपसे कह दिया। साथ ही मेरे सिरपर अपना वरद हस्त भी फिरा दिया।

तभी पुनः बाबूजीका वचनाक्रमण हो गया—'चलो, भाई ! आराम करने दो।' बस, दो मिनट में ही हम कुटियासे बाहर हो गये। थोड़ी दूर रामघाट नगरीमें किसी धर्मशालामें जाकर हमने डेरा लगाया। सभी सो गये किन्तु जाग रहा था अकेला मैं, क्योंकि आज वह सुख मिला था जो मानव-जीवनमें परम आवश्यक है। मैं रह-रहकर सोचता था कि क्या किसी मनुष्यमें इतनी दया और प्रेम भी हो सकते हैं। क्या वास्तवमें चार्वाकके 'यावज्जीवेत सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' इस वाक्यसे

अथवा आधुनिक जगत्‌के 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' इस सिद्धान्तसे विरक्त एवं तपोमय जीवन कहीं अधिक श्रेयस्कर है, जैसा कि मैं अभी अपनी आँखोंसे देख रहा था।

इस प्रकार वहाँ कई दिनोंतक ठहरनेका अवसर मिला और मैं वहाँकी प्रत्येक गति-विधिका अवलोकन करता रहा। कितना स्पृहारहित और अपरिग्रही जीवन देखा श्रीबाबाका। वहाँ किसी भी वस्तुका संग्रह दिखायी ही नहीं देता था।

प्राणियोंपर दया

एकबार किसी पुस्तकमें पढ़ा था कि 'दया बिन सन्त कसाई।' सम्भवत: यह वचन गुरु नानकका है। अपने इस छोटेसे जीवनमें सचमुच सन्तरूपमें ऐसे कई महानुभाव देखे हैं जिनमें दया नामको भी नहीं है और यदि है भी तो केवल दिखावामात्र। किन्तु श्रीबाबाजीकी दयालुताको देखकर तो आंखें खुल गयीं। रामघाटकी गौएँ उनके हाथसे प्रसाद लेनेके लिये दौड़ी आतीं और बन्दर भी इधर-उधरसे आकर घेरते तथा वे मुसकाते हुए सभीको प्रसाद देकर सन्तुष्ट करते। किसीको भी भूखा देखना या सुनना उन्हें असह्य था। वचनोंद्वारा भी किसीका मन न दुख जाय—यह तो उनका मानो स्वभाव ही था। इसका तो कईबार अनुभव हुआ।

टिकट

हाँ तो, इस बारकी यात्राका समय समाप्त हुआ और सभीके मुँहसे 'टिकट' की चर्चा चलने लगी। क्या यहाँ कोई Railway Booking office (टिकटघर) है ?' मैं सोचने लगा। उधर देखा कि श्रीबाबाजी लोगोंको विदाईमें लौंग और इलायचियोंका प्रसाद दे रहे हैं। हमारे पथप्रदर्शक पण्डितजीने मुझसे कहा, 'जाओ न, टिकट ले लो।'

पैसोंपर हाथ डालते हुए मैंने कुछ झिझकते हुए कहा, किधर टिकट मिलता है महाराज !'

'अरे ! यह लौंग-इलायची ही यहाँका टिकट है इसे सुरक्षा का परमिट समझो' पण्डितजी बोले ।

मैंने भी श्रद्धासे आगे हाथ बढ़ाया और उन्होंने दयाभरी दृष्टिसे देखते हुए टिकट दे दिया और कहा, 'भजन करना, तेरे घर आयेंगे ।'

यह सुनकर कि महापुरुष आयेंगे मुझे अकथनीय उल्लास हुआ और न जाने कितनी अभिलाषाएँ लिये हम वहाँसे चल दिये ।

वचनोंकी सत्यता

भूल-सा ही गया था सांसारिक प्रपञ्चोंमें पड़कर और शिथिलता आ चुकी थी साधनके उत्साहमें । उन्हीं दिनों श्रीबाबाजी सहता पधारे थे । मुझे पता लगा कि आगरा जिलाके सेवकोंकी प्रार्थनासे आप यत्र-तत्र पधार रहे हैं । बस, उमंगें उठने लगीं मनमें और कानोंमें गूँजने लगे रामघाटमें टिकट लेनेके समय सुने हुए वे मधुर शब्द कि तेरे घर आयेंगे ।' अतः पिताजी और अन्य कुछ सज्जनोंको साथ ले पुनर्दर्शनकी आशा लिये यात्रा कर दी । पहुँचते ही सभामें बुला लिया और कहा, 'एक पद सुना ।'

नहीं समझ सका कि मैं कुछ गा भी लेता हूँ यह पता उन्हें कैसे लग गया । मैं तो मन-रागी हूँ, सभा-रागी तो हूँ नहीं । सभामें गानेका तो यह पहला ही अवसर था । झिझकते-झिझकते गा तो गया, परन्तु मनमें यही विचार रहा कि मनुष्यके भीतरकी बात जान लेनेकी शक्ति है इनमें । उसी सायंकालमें भक्तजन नियमानुसार सामूहिक संकीर्तन करनेवाले थे । आपने मुझे अलग बुलाकर धीरे से कह दिया, 'कीर्तनमें सम्मिलित होना, परसों आयेंगे तेरे घर, तू कल चला जाना, यहाँ किसीको छोड़ जाना ।'

दूसरे दिन टिकट लेकर आज्ञानुसार हम सभी चल पड़े। केवल अपने चचेरे भाई भगवानकुमारको उन्हें मार्ग दिखाने और सुविधापूर्वक लानेके लिये छोड़ दिया।

परन्तु जो संसार को मार्ग दिखावे उसे भला, कौन राह दिखा सकता है। अतएव उसी रात को सबेरे तीन बजे सबको योग-निद्रामें सुलाकर उस बालकको ही साथ ले आप हमारे गाँवकी ओर चल दिये। बच्चे ने कहा, 'महाराज ! सड़क-सड़क चलनेसे तो गाँव यहाँसे आठ कोस है। 'आप बोले, 'पगडंडीके रास्ते चलेंगे। बस, ऐसा कहकर सीधे पड़ गये खेतों और खड्डोंको पार करते मानो कई बारका देखा हुआ रास्ता हो और सूर्यकी किरणें निकलते-निकलते मेरे बागमें बमरौली कटारा पहुँच गये।

हम लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब श्रीबाबाको सबेरे बागकी एक रौसपर टहलते देखा। साथ आनेवाला बालक तो अभी दो कोस पीछे था। यह आपकी सर्वज्ञता नहीं तो क्या थी ?

कहना न होगा कि तीन दिनों तक बाग भक्तिका केन्द्र बन गया। पारस्परिक शत्रुता लोगोंके मनसे रामराज्यकी तरह निकल गयी। तीसरी रात आनेपर मुझे लगा कि आज शेष रात्रिमें प्रस्थान कर जाँयगे अतः फूँसकी कुटीके चारों ओर पहरा लगा दिया। परन्तु महापुरुष कब किसीके बन्धनमें बँध सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णको गोकुल जाना था तो कंसके पहरे-दार योगनिद्राके वशीभूत होकर सो गये। वही बात यहां हुई। मुझे ठीक स्मरण है कि मैं स्वयं और मेरे तीन अन्य साथी प्रातः ३ से ५ बजे तक पहरे पर थे। परन्तु हम सभीको ऐसी निद्रा आयी कि जब चारों ओर श्रीबाबाजीके चले जानेका कोलाहल मच रहा था तब आँखें खुलीं। परन्तु अब होता ही क्या ? बस, हाथ मलकर रह गये।

वृन्दाबनस्थ आश्रमका उद्घाटनोत्सव

उन दिनों मैं फरुखाबादमें था। पत्र मिला कि वृन्दावनके नवनिर्मित आश्रमकी प्रतिष्ठाका उत्सव हो रहा है। वसन्त-पञ्चमीका अवसर था, होली भी समीप ही थी। और बाबाजीकी कुटीका उत्सव। अतः चाव चौगुना हो गया। गृहिणीसे कहा, 'रातों रात तैयारी करो, वृन्दावन चलना है।,

"बिना छुट्टी कैसे चलोगे ?" देवीजी बोलीं।

'चिन्ता न करो, जो बुलाते हैं वे स्वयं प्रबन्ध करेंगे।, मैंने विश्वासपूर्वक कहा।

'अरे ! नौकरी है, कोई खेल तो नहीं" वह कहने लगीं।

"जो होगा सो देखा जायगा" इतना कहकर मैंने तार दे दिया और हैड आफिस से उसी सायंकाल छुट्टी स्वीकृत होकर आ गयी। बस, रातको ही प्रस्थान कर दिया और सबेरा होते-होते लीलाबिहारीकी लीलाभूमि में जा पहुँचे। वहाँ क्या देखा यह तो पाठक अन्य लेखोंमें भी पढ़ लेंगे, परन्तु अपना अनुभव तो यह है कि श्रीरामायणजीके वे शब्द,स्पष्ट देखनेमें आ रहे थे—
'अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुशल जेहि बूझा नाहीं॥'

सहस्रों नर नारियोंमेंसे कोई एक भी ऐसा नहीं था जिससे बाबाजीने कुशल न पूछी हो। ऐसा उत्सव 'न भूतो न भविष्यति।' सर्वत्र श्रीभारद्वाजजीके आश्रम-जैसी सिद्धियाँ कार्य सम्पन्न कर रही थीं। यहाँ भी अन्तिम दिन मध्याह्नके सम्मेलनमें स्वयं बुलाकर कीर्तन करनेका आदेश दिया जो मेरे-जैसे संकोची व्यक्तिके लिये अनोखी बात थी। यही मेरे कथा-प्रवचनकार्यके लिये श्रीबाबाजीका गुप्त वरदान था।

अनूठी रामलीला

अभी कुछ दिन पूर्व हैजेके प्रकोपसे त्राण पाया था कि स्वप्न

हुआ, श्रीबाबाजी वृन्दावनमें बुला रहे हैं। सभी कार्योंमें उदासीनता हो गयी; मन किसी ओर भी नहीं लगता था। निश्चय कर लिया कि अब तो श्रीमहाराजजीके समीप ही चलना है। अतः श्रीवृन्दाबनको प्रस्थान कर दिया। भ्रमितको निर्भ्रम करना और पथभ्रष्टको पथप्रदर्शित करना ही तो महापुरुषोंका काम है।

मेरे वृन्दावन पहुँचते ही भक्तपरिकरमें तरह-तरहकी धारणाएँ बनने लगीं। कुछ ऐसे भी भक्त थे जो मेरे ऊपर श्रीबाबाका बढ़ता हुआ प्रेम सहन नहीं कर सकते थे। यह शिकायत एक दिन मैंने उनके समक्ष रखी। कैसा भावपूर्ण उत्तर था उनका—'तू किसीकी क्यों सुनता है? यहाँ तो तेरा सम्बन्ध मुझसे है।' ये शब्द क्या थे, मानो मेरे हृदयकी ज्वालाको शान्त करनेके लिये अमृतकी वर्षा ही थे।

महीनों व्यतीत हुए सान्निध्य-सुखका आनन्द लेते। तभी कुछ भक्तोंके विशेष आग्रह और परम भागवत श्रीहरिबाबाजीकी अभिरुचिके अनुसार आपने श्री रामलीलाके अभिनयका संकल्प किया और उस कार्यके सञ्चालन का भार अपने आशीर्वाद-सहित डाला मुझपर। यद्यपि सहयोगियोंने अनेकों विघ्न उपस्थित किये, तथापि डेढ़ मासपर्यन्त जो श्रीरामचरित्र अभिनय हुआ वह वास्तवमें आपके संकल्पका सजीव रूप था। मैंने आजतक भी जहाँ-तहाँ जनकपुर-जैसे स्थानोंके महात्माओंको भी, जो उन दिनों दर्शन कर गये थे, कहते सुना है कि लीला तो बस श्रीउड़ियाबाबाजीके यहाँ हो चुकी।

उन्हीं दिनों मेरी धर्मपत्नी को भी कई मास मातृमण्डलमें रखकर आपने अपने सदुपदेशोंसे वह बना दिया जो एक सद्-गृहस्थ की गृहदेवी होनी चाहिये। न जाने कौन-सा मूक मन्त्र पढ़ाया कि उनके जीवन की साध्य एकमात्र भगवत्प्राप्ति ही बन

गयी। फिर यह कहकर विदा किया कि अब घर जाओ, नौकरी न करना। तेरे जीवनमें कोई बहुत बड़ा काम होगा जिससे धर्म और देशकी पर्याप्त सेवा होगी।

असीम सहिष्णुता

एकबार जब मैं आगरेमें कुछ कारोबार कर रहा था दोपहर के २ बजेके लगभग किसीने कहा कि श्रीउड़िया बाबाजी आये हैं और मैंने उन्हें बेलनगंजमें जाते हुए देखा है। ज्येष्ठका महीना था और आगरेकी गर्मी। बाबा आये हैं—इस बात पर सहसा विश्वास तो नहीं हुआ, पर जैसे ही कुछ आगे बढ़ा एक और परिचित व्यक्तिसे भेंट हुई, जो स्वयं श्रीमहाराजजीके दर्शनोंके लिये उतावले थे। उनसे भी यही पता लगा कि वे अवश्य बेलनगंजमें ही हैं। मैं साइकिलपर दौड़ गया आगे देखता हूँ कि एक सेठकी कोठीसे भीड़के साथ आप निकल रहे हैं। भीड़ यद्यपि बहुत अधिक नहीं थी तथापि कुछ ऐसे लोग अवश्य थे जिन्होंने मुझे श्रीमहाराजजीके चरणोंतक नहीं पहुँचने दिया। हताश होकर 'मन ही मन प्रणाम गुरु कीन्हा' करके सन्तोष कर लिया और पीछे-पीछे चलने लगा। थोड़ी ही दूरपर जीवनीमंडी के चौराहे तक एक-एक करके सभी लोग खिसक गये।

अब आप प्रायः अकेले ही थे। सड़ककी पटरीपर रेत अंगारेके समान जल रही थी। उसीपर नंगे पैरों आपने जोन्स मिलके आगे यमुनातटवर्ती एक शिवमन्दिरमें जानेके लिये गति बढ़ा दी। सड़क और बगलकी रेतसे आग उठ रही थी ऊपरसे सूर्यनारायण अग्निवर्षा-सी कर रहे थे और तेज लू शरीरको झुलसाये डालती थी। उस समय मैंने खुली आँखों देखा कि वह मस्त महापुरुष श्रीरामजीकी भाँति 'सहजहिं चले सकल जगस्वामी' इस चौपाईको सार्थक कर रहे थे। यह देखकर मनमें आया कि

कुछ सहायता करूँ और इसी विचारसे साइकिलसे दौड़कर आगे पहुँचा। देखते ही सहज भावसे हँस पड़े आप और बोले, 'अरे ! तू कहाँसे आ गया ?'

'कुछ न पूछें आप साइकिल पर बैठें बड़ा कष्ट हो रहा है आपको, पैर जल रहे होंगे।' मैंने संकोचसे प्रार्थना की। उस समय वास्तवमें मेरा तो रबरका जूता नीचेसे पैर जलाये देता था, कान बँधे होनेपर भी गरम लू के थपेड़े तेल निकाले देते थे और शरीर मानो झुलसा जाता था। किन्तु चादरा लपेटकर बगलमें लगाये हुए नग्न शरीर जहाँके तहाँ बालू रेत पर खड़े हुए आप निश्चल भावसे बोले, 'बेटा ! सवारीपर बैठनेका नियम नहीं है।'

मैं अज्ञानी जीव क्या समझता महापुरुषोंकी शक्तिको। अतः अपने बालचापल्यसे कह उठा, महाराजजी ! आपत्तिकाले मर्यादा……।' बस, बात पूरी कह भी न पाया था कि बीच ही में आप हँसते हुए बोले, 'बेटा ! यह व्यवस्था तो गृहस्थोंके लिये ही है।'

तात्पर्य यह कि बहुत आग्रह एवं अनुनय-विनय करने पर भी आप साइकिलपर बैठनेके लिये सहमत न हुए। बस, मत्त गजराजकी भाँति तपती हुई बालू पर निर्भीकतासे चलने लगे। मैं भी साथ-साथ मन मारकर चलने लगा तो आपने ठहरकर कहा, 'तू साइकिलपर चढ़कर आगे चल, मैं उक्त मन्दिर पर आ रहा हूँ।' प्रेम भरे इन शब्दोंने मेरे ऊपर मानो घड़ों पानी डाल दिया हो। प्रेम सजीवकी भाँति छलक रहा था उन शब्दोंमें और उसने मुझे हठात् साइकिलपर चढ़ा दिया। आप उसी मन्द गतिसे चलते रहे मानो आज सूर्यनारायणको अपनी सहिष्णुताकी परीक्षा दे रहे थे। हुआ भी यही कि सूर्यनारायणने मुँह की खाई और आप दो-ढाई मीलकी यात्रा करके शिव मन्दिर पहुँचे।

मन्दिरमें उठने-बैठनेका कोई साधन था ही नहीं, साथ ही वहाँ कोई व्यक्ति भी नहीं था, जिससे कुछ बिछानेका सुभीता बनाया जा सके। अपने राम तो पूरे बाबू ठहरे। पैंटबाजोंके पास एक रूमालके अतिरिक्त और होता ही क्या है ? अतः संकोच था कि श्रीबाबाको कहाँ बैठाया जाय। तबतक आप आकर मन्दिरके बरांडेमें बैठ गये।

"आप यहाँ शहरसे इतनी दूर क्यों आ गये ?" झिझकके साथ मैंने पूछा।

"मैं जब भी आता हूँ यहीं रहता हूँ" सहज मुस्कानके साथ आपने कहा।

""तो अब क्या प्रबन्ध होना चाहिये ?" मैंने प्रार्थना की।

"बैठ जा, विश्राम कर, सब कुछ आप ही हो जायगा" आपने उत्तर दिया।

कितना आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय था इन शब्दोंमें। मैं सोचने लगा यहाँ जनशून्य स्थानपर अपने आप क्या होगा ? यह कैसी अनोखी बात है ? ऐसा विचारकर मैं चलनेको उद्यत हुआ कि प्रेमियोंको संदेशा दूँ, परन्तु आपने रोक लिया। थोड़ी ही देरमें देखा कि समीपस्थ जोन्स मिल-कॉलोनीके कुछ व्यक्ति शरबत-बरफ आदि लिये आ रहे हैं। अवाक् रह गया मैं यह चमत्कार देखकर। रातको मैंने प्रार्थना की, 'भगवन् ! कल प्रसाद मेरी झोंपड़ीपर ही करें।' सुनकर एक मिनट मौनके पश्चात् आपने कहा, 'थोड़ी खिचड़ी बना लेना, मैं स्वयं ही आ जाऊँगा, बुलानेके लिये भी मत आना।'

क्या रहस्य है इस बात में' मैं सोचने लगा। तभी आप उठकर चल पड़े और अलग बुलाकर कहा, 'आदमी बहुत हैं, प्रबन्ध बहुत करना पड़ेगा। किससे ना की जायगी और किसे साथ लेना होगा ? फिर तुझे तो कल जाना भी है न ?'

वास्तवमें मुझे बीकानेर जाना था और उसी दिन—ऐसा पहलेसे निश्चित था। परन्तु यह पता कैसे लगा बाबाको ? मेरे लिये तो यह बड़े चमत्कारकी बात थी। परन्तु इससे भी बड़ी बात तो रातको देखनेमें आयी। सहतावाले प्रेमी रातको ३-४ सेर पूरियाँ लेकर आये और खानेवाले तबतक हो चुके थे पचास-साठ। सभीको संकोच होने लगा कि कैसे बात बनेगी ? रातके साढ़े दस बज चुके थे। बाजार सब बन्द हो गये, अब कहाँ क्या मिलेगा। श्रीबाबाने एकबार कपड़ा उठाकर पूरियोंको देखा और बाँटना आरम्भ कर दिया—एक-एकको आठ-आठके हिसाबसे। मैं यह देख रहा था कि अब बात कैसे बनेगी ? परन्तु उस महापुरुषकी सिद्धिका अनुमान मिला तब जब पूरियाँ सभी-को मिलीं और कुछ बच भी रहीं। तभी किसीके मुँहसे निकला कि इस समय यदि दूध होता तो मौज बन जाती। श्रीबाबाजीने कहा, 'संसारमें कोई बात असम्भव नहीं।' सभीने देखा कि उस घोर अँधेरी रातमें दो व्यक्ति प्रायः बीस सेर दूध लेकर पहुँचे। सम्भवतः सत्यसंकल्पवान् महापुरुषोंके लिये ही श्रीगोस्वामीजीने यह चौपाई कही है—

जो इच्छा करि हौ मन माहीं। प्रभु प्रताप दुर्लभ कछु नाहीं॥

सफल वरदान

वाणी फलवती होती है, पर सर्वसाधारणकी नहीं। संयमी महापुरुषोंका ही ऐसा प्रभाव होता है, जिनका प्रत्येक इन्द्रियपर नियन्त्रण और आधिपत्य होता है। यह चमत्कार एक दिन मेरे देखनेमें आया। पूज्य श्रीमहाराजजी वृन्दावन आश्रमकी अपनी कुटियामें विराजमान थे। ज्वरका आक्रमण था और शरीरसे आगकी लपटें सी निकल रही थीं। परन्तु फिर भी आप प्रसन्न वदन और निश्चल भावसे बैठे थे। न जाने कैसे आज आपको भक्तोंने अकेला रहने दिया था: नहीं तो सदैव भीड़ साथ ही लगी

रहती थी। क्षणभरको विश्रामतक नहीं लेने देते थे लोग। आपको कुछ विश्राम मिले—इसका ध्यान तो दो-चार भक्तोंको ही था। परन्तु उन बेचारोंकी चलती कब थी? श्रीबाबाजीका तो लक्ष्य ही जनसेवाके रूपमें जनार्दनकी सेवा थी। विश्रामके लिये प्रार्थना करनेपर कई बार आपको यह कहते सुना कि भैया! संसार दुःखोंकी भट्ठीमें जल रहा है, हनुमानजीको भला कब चैन मिला? देखो, रामायणमें उन्होंने कहा है न—

"राम काज कीन्हे बिना मोहि कहाँ विश्राम।"

हाँ! तो, उस समय ज्वराक्रान्त होते हुए भी किसी प्रकार आप ध्यानावस्थित बैठे हुए थे। मैं भी धीरेसे कुटियाके किवाड़ खोलकर चौकीके पास जा बैठा। उसी समय न जाने कहाँसे बाजकी भाँति एक महिला, जिसकी आयु प्रायः पैंतालीस वर्ष होगी, अकस्मात् आ टूटी और श्रीबाबाजीका ध्यान भंग करती कुछ कहने लगी, जिसे किसी भावावेशके कारण मैं समझ नहीं सका। परन्तु अपने भोले बाबाके मुखसे इतना अवश्य सुना, 'चिन्ता न कर बेटा, तेरी इच्छा पूरी होगी।' इसका क्या तात्पर्य था सो तो वे जानें या वह देवी; मेरे लिये तो वह देवी भी अपरिचित ही थी।

वास्तवमें यह उसी प्रकारका मूक वरदान था जैसा कि जनकपुरमें श्रीविश्वामित्रजीने पुष्पवाटिकासे लौटनेपर श्रीराम-चन्द्रजीसे कहा था—'सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे' और उन्हें उसके फलस्वरूप जगदम्बा श्रीजानकीजी प्राप्त हुई थीं। पाठक सोचेंगे कि उस महिलाको क्या मिला। यह बात मुझे भी तब मालूम हुई जब श्रीमहाराजजीके ब्रह्मलीन होनेपर एक दिन अली-गढ़ स्टेशनपर सहसा वह देवी मिली और उसने मुझे पहचानते हुए आँसू भरी आँखोंसे देखते हुए कहा—'बिरमचारीजी! बाबाके

वरदानतें गोदमें डेढ़ बरस को छोरा ऐ। मैंने बड़े ऐलाज करवाये पर काऊ तें कछु नाइँ भयौ। वा दिन तुमऊँ बैठे हते जब बाबा-ने असीस दीनी हती। विनईके पत्तापतें मेरी सूनी गोद भरी ऐ। परि हूँ तो ऐसी अभागिनी ऊँ कि फेरि पल्टिके दस्सन ऊँ नाइँ करि सकी।" और इतना कहते-कहते वह चीख मारकर रो पड़ी।

उस भोली भाली ग्रामीण महिलाके उपर्युक्त विशुद्ध और निष्कपट शब्दोंने मुझे गहरे विचारोंमें डाल दिया कि सचमुच ही लोग उन महापुरुषके पास भोजन भण्डारोंमें ही अपना समय व्यतीत करते रहे; उनसे जितना लाभ उठाना चाहिये था वह तो किसी एक आधने ही उठा पाया होगा। उठाने भी तो कैसे। जब भगवान् श्रीकृष्णको भी उनके अवतारकालमें किन्हीं-किन्हींने ही समझ पाया था तो इन्हें समझ लेना भी मायाग्रस्त जीवोंके लिये कोई खेल तो नहीं था।

जी चाहता है कि उनकी सारी घटनाएँ और जीवन-लीलाएँ जहाँतक मेरे निजी अनुभवमें आयी हैं लिखूँ; पर समया-भावसे बहुत संक्षेपमें ही लिख सका हूँ। अपने सम्बन्धमें तो मैं निःसन्देह कह सकता हूँ कि पूज्य बाबाका वरदान ही मेरे-जैसे क्षुद्र प्राणीको उल्लास, उत्साह और कार्यक्षेत्रमें साहसके शिखर-पर पहुँचा रहा है। मैं तो सर्वदा उनकी अहैतुकी कृपाका आभारी रहूँगा। अब उनकी कुछ विशेषताओंका उल्लेख करके मैं इस लेखको समाप्त करूँगा।

सत्संग

जहाँतक त्याग और वैराग्यका सम्बन्ध है उसके साथ सत्संग भी एक आवश्यक अंग समझा जाता है। यद्यपि इनका परस्पर अन्योन्य सम्बन्ध है, तथापि अधिकांश विरक्तोंके यहाँ सत्संगकी बहुत कमी देखी जाती है। परन्तु श्रीमहाराजजीके साथ सत्संग

प्रायः दैनिक चर्याका अनिवार्य अंग था। श्रीवृन्दावन में तो यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध थी कि यदि किसीको सत्संगकी आवश्यकता है तो उसका पूरा लाभ श्रीउड़िया बाबाजीके आश्रमपर ही मिल सकता है। वहाँ सबेरे ३॥ बजेसे लेकर रातको ११ बजेतक अनवरत सत्संगका क्रम चलता ही रहता था। निराकारवादियों-को यदि ब्रह्मविचारका पूरा-पूरा अवसर प्राप्त था तो साकारो-पासकोंको भी कथा, कीर्तनके साथ-साथ रासरसिकेश्वर श्रीश्यामसुन्दरकी हृदय-हारिणी अनुपम लीलाएँ, भक्तजनोंके मधुमय चरित्रोंके अभिनय और प्रेमी भक्तोंद्वारा उपदेशप्रद प्रहसन भी देखनेको मिलते थे। ऐसा तो आज भी प्रसिद्ध है कि रासलीलाकी मर्यादाका जैसा निर्वाह श्रीउड़िया बाबाजीके आश्रमपर होता है वैसा अन्यत्र नहीं देखा जाता।

पूज्य बाबा इन सभी कार्यक्रमोंमें स्वयं उपस्थित रहते थे। उनके अन्तरंग भक्त भी आजतक यह भेद नहीं जान सके कि बाबा शैव थे, शाक्त थें, रामोपासक थे अथवा वेदान्ती। संकीर्तन होता तो प्रेमसमाधिकी मुद्रामें खड़े रहते. रासमण्डपमें विराजते तो उसका पूरा-पूरा रसास्वादन करते दिखायी देते; कथा-वार्ता चलती तो उसके प्रधान श्रोताके रूपमें भी आप ही दिखायी देते तथा भक्तजन प्रहसनादिका अनुकरण करते तो सर्वसाधारणकी तरह हँसते, प्रसन्न होते और मनोविनोदका भाव दर्शाते। जब कभी ब्रह्मचर्चा चलती तो आपके मनोभावोंसे पता चलता कि आप मानो मूर्तिमती ब्रह्मनिष्ठा ही हैं। प्रसंगवश आपके श्रीमुखसे कई बार सुना कि संसार क्षणभरमें नष्ट हो जाय तो हमें क्या और यदि यह सृष्टि सौ गुनी बढ़ जाय तो इससे हमारा क्या वास्ता ?

इन भावों और विचारोंसे आपके अन्तरतमका कुछ

आभास प्राप्त होता है। कितना अच्छा क्रम था वह। साकारोपासकोंको आप निर्गुण ब्रह्मकी चर्चासे सदैव दूर रखते थे। उनकी साकारनिष्ठाको पुष्ट करनेके लिये कह देते थे कि निराकार -उपासना तो भूसी कूटने के सामान है, उसमें मिलता ही क्या है ? उधर निराकारवादियोंका सत्संग चलता तो उस निष्ठाकी ही उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते। इस प्रकार दोनों मार्गोंके पथिकोंको अपनी-अपनी निष्ठामें सुदृढ़ रहनेका ही उपदेश आप देते थे। अन्य महापुरुषोंकी भाँति अपने विचारोंको दूसरोंपर लादना मानो आपने सीखा ही नहीं था। आप सर्वसाधारणके सामने योगवासिष्ठ आदि वेदान्त ग्रन्थोंका प्रवचन करना उचित नहीं समझते थे। आपके यहाँ सर्वदा गीता रामायण, भागवत एवं भक्तमाल आदि सार्वदैशिक ग्रन्थोंकी ही कथाएँ हुआ करती थीं। उस समय कितना भला प्रतीत होता था जब आप किसी भी कथावाचककी कथा सुनते-सुनते प्रसन्न होते थे। तब तो श्रीरामचरितमानस की यह चौपाई सामने उतर आती थी—

'सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं।'

मर्य्यादा-पालन

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब किसी मनुष्यका सम्मान बढ़ता है और वह समाजमें आदर पाने लगता है तो वह अमर्य्यादित-सा हो जाता है। परन्तु आप तो सम्मानकी सर्वोच्च सीढ़ीपर चढ़कर भी लोक तथा शास्त्रमर्य्यादा का पूर्णतया पालन करते रहे। वर्णाश्रम व्यवस्थाकी शास्त्रीय मर्य्यादाका आप सर्वदा ध्यान रखते थे। श्रीरामचरितमानसकी 'पूजिय विप्र शील-गुण हीना' इस चौपाईको भी मानो आपने कभी नहीं भुलाया। समाजकी नवीन प्रणाली प्रचलित करने वाले प्रचारक, उपदेशक, कथावाचक और नेताओंसे आप प्रायः कभी सहमत नहीं हुए। आपका यह भी निश्चित सिद्धान्त था कि जिसने स्वयं अपनेको

कर्त्तव्य एवं धर्मकी कसौटीपर नहीं कसा उसे उपदेश देनेका अधिकार नहीं है। धनोपाजन करनेवाले नववयस्क उपदेशक और उपदेशिकाओंके प्रवचनोंपर आपकी अभिरुचि नहीं थी। मुझ अपना निजो अनुभव है कि मैं स्वयं जब ऐसे ही गुटमें मिल जानेसे बहुत दिनोंतक नवीन प्रवाहमें पड़कर नेतागीरी का दम भरने लगा था तब कासगंजके उत्सबमें, जो आपके ही तत्त्वावधानमें हो रहा था, उपदेशककी हैसियतसे उपस्थित होनेपर आपने प्रेमपूर्णशब्दोंमें सभी भक्तपरिकर के सामने कहा था, 'अब यह भी सिद्ध हो गया है।' वास्तवमें ये शब्द मेरे सुधारके लिये साङ्केतिक सूत्र ही थे। लोगोंपर इनका क्या प्रभाव पड़ा—यह तो मैं नहीं कह सकता परन्तु मुझपर तो न जाने कितने घड़े जल पड़ गया। मेरी सारी अहंभावना कलईकी भाँति उतर गयी। आज भी वे शब्द मेरे कानोंमें ज्योंके त्यों गूँज रहे हैं। उन शब्दोंने मेरा कितना उपकार किया है—यह तो मैं ही जानता हूँ। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' का इससे सुन्दर और क्या प्रमाण हो सकता है।

ब्राह्मणको ब्राह्मणोचित धर्मसे च्युत होते देखकर आपको उतना ही क्षोभ होता था जैसे अन्य किसी वर्णके व्यक्तिको कर्त्तव्यच्युत हुआ देखकर। आपका कहना था कि ब्राह्मण यदि अपने सत्य रूपमें ब्राह्मण हो जाय तो अन्य सभी वर्ण स्वतः संभल सकते हैं जिसका मस्तिक ही बिगड़ जाय उस शरीरका क्या ठिकाना ? जब समाज का सिर ब्राह्मण ही काम-क्रोधादिके बन्धनमें बंध गया तो समाज किस प्रकार सुस्थिर रह सकेगा।

लोकमर्यादामें आपके विचारसे ब्रह्मचर्यका सर्वप्रथम स्थान था। आपका सिद्धान्त था ब्रह्मचर्य ही जीवन है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करके आपने दिखा दिया कि इसमें कितनी शक्ति है। निर्वाण होनेके पश्चात् भी ब्रह्मचर्यका तेज आपके मुखपर

से फूटकर दर्शकोंको आश्चर्यचकित कर रहा था। जीवनकालमें आपके नेत्रोंमें वह अद्भुत आकर्षण और मादकता थी जो देखते ही बनती थी। अशास्त्रीय या वेदविरुद्ध आचरण आप एक क्षण-के लिये भी सहन करनेको तैयार नहीं थे।

आपको हर किसीका संन्यास ले लेना भी रुचिकर नहीं था। एक बार फर्रुखाबादमें श्रीगंगाजीके पावन तटपर किसी सुधार-वादी महाशयने आपसे प्रश्न किया 'क्या वर्तमान युगमें साधुओं की संख्यामें वृद्धि कराना उचित है ?' इसी प्रकारके उन्होंने कई प्रगतिशील प्रश्न एकके पश्चात् एक उपस्थित कर दिये। जब उनके प्रश्न समाप्त हो गये तब आप मन्द-स्मितपूर्वक बोले, 'भैया ! अब कुछ और तो पूछना नहीं है ? सुनो, मैं अपना मत तो क्या कहूँ, परन्तु समय बताता है कि आज साधुओंके लिये युग नहीं रहा, इसीलिये मैं किसीको भी साधु होनेके लिये नहीं कहता।' वास्तवमें बात भी ऐसी थी। अपने जीवनमें आपने किसी को भी संन्यास दीक्षा नहीं दी।

स्वदेशप्रेम

सामान्यतया साधु समाज स्वदेशके स्वातन्त्र्य संग्राममें यद्यपि तटस्थ ही रहा है तथा स्वदेशप्रेमकी भी उसमें कमी ही है, तथापि पूज्य श्रीबाबाका तो हृदय ही नहीं, रोम-रोम स्वदेश-प्रेम से ओत-प्रोत था। वे संसारत्यागी संन्यासी थे, अतः अपने आश्रमधर्मका निर्वाह करते हुए यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे उन्होंने राजनीतिक गति-विधियोंमें विशेषभाग नहीं लिया तथापि अनेकों कार्यकर्ताओंको अपने देशकी दासताके बन्धनोंको तोड़ने-वाले कार्योंमें उनसे कितना सहयोग और कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई थी—यह कहना कठिन है।

देशमें हाथ-कते और हाथ-बुने खादीका प्रचार तो बहुत

पीछे आरम्भ हुआ था, तथापि यह बात तो सभीपर प्रकट है कि आप तो पहलेसे ही विशुद्ध खादीका ही प्रयोग करते थे और अपने संसर्गमें आनेवाले लोगोंको भी इसके लिये प्रेरित करते थे। जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ तब तक आपका यह नियम प्रायः अक्षुण्ण ही रहा। स्वयं मुझे भी जब मैं पहली बार आपके दर्शनोंके लिये गया था, आपने बलपूर्वक खादीका प्रयोग करनेके लिये वचनबद्ध कर लिया था।

स्वतन्त्रता-आन्दोलनका दूसरा कार्य था मादकद्रव्यनिषेध। यह कार्य भी आपने आन्दोलनके आरम्भसे पूर्व ही आरम्भ कर दिया था। चर्स. अफीम, शराब-जैसी चीजोंकी तो बात ही क्या आप तो तम्बाकूके सेवनका भी प्रबल निषेध करते थे। इस प्रकारके दुर्व्यसनमें ग्रस्त कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार आपके स्थानपर नहीं ठहर सकता था। यही नहीं, जो व्यक्ति किसी भी रूपमें तम्बाकूका सेवन करता था वह आपके शरीर को स्पर्श भी नहीं कर सकता था।

मुझे यह कहते हुए गर्व होता है कि स्वतन्त्रता-आन्दोलनके युगमें मैंने जब-जब भी आपसे उस विषयमें कोई चर्चा चलाई तब-तब यही देखा कि आपके हृदयसे स्वराष्ट्र-प्रेम छलका पड़ता है। कारागार-सेवन ही तो राष्ट्रीय आन्दोलनका अंग नहीं था, इसके साथ और भी ऐसी बहुत-सी बातें थीं. जिनसे स्वराज्य प्राप्त हो सका। आप अपने प्रेमियोंसे स्वराज्यके लिये प्रातः-सायं भगवान्से प्रार्थना करनेका आग्रह करते थे और मैंने कई बार देखा कि आप स्वयं ब्रह्मचिन्तनकी भाँति दीन हीन एवं दासताके बन्धनोंमें बँधे हुए देशको स्वराज्य मिलनेका भी चिन्तन करते रहते थे। राष्ट्रनिर्माता नेताओंके प्रति भी आपके हृदयमें अत्यन्त आदर और प्रेम देखा गया था। पूँजीवादको आप देशके लिये घातक मानते थे। जब-जब इस प्रकारकी चर्चा चलती तब-तब आप भारतमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का साम्यवाद देखनेकी

इच्छा प्रकट किया करते थे। श्रीरामचरितमानसके उद्धरण देते हुए आप कहा करते थे—"कितना सुन्दर था भगवान् रामका साम्यवाद जहाँ 'वैर न कर काहू सन कोई' अथवा 'सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।" अतः स्वराज्य-संग्राममें आपने मन, वाणी और कर्मसे कितना सहयोग दिया—यह कोई कहनेकी बात नहीं है।

निस्पृहता और अपरिग्रह

स्पृहा तथा परिग्रह मनुष्यके स्वभावमें होती ही हैं। परन्तु मुक्ति और विरक्तिके मार्गमें तो ये अत्यन्त निषिद्ध मानी गयी हैं। तथापि मानवमें स्वभावसुलभ होनेके कारण विरक्त जीवन स्वीकार कर लेने पर भी अनेकों महानुभावोंमें ये न्यूनाधिक रूपमें पायी ही जाती हैं। बड़े-बड़े विरक्तोंको आश्रमकी एक-एक ईंट और स्थानकी प्रत्येक वस्तुसे प्राणोंके समान मोह होता देखा गया है। परन्तु आपके हृदयमें आश्रम या आश्रमकी किसी वस्तुके लिये कभी कोई स्थान नहीं हुआ। इस सम्बन्धमें यों तो आपके जीवन की अनेकों घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं, तथापि यहाँ केवल दो प्रसङ्गोंका उल्लेख किया जाता है, जो स्वयं मेरे सामनेकी घटनाएँ हैं।

वर्षाकाल आनेवाला था ग्रीष्म आगे आनेवाले समयको चार्ज सँभलवा रहा था आश्रमपर केवल चार-पाँच व्यक्ति ही रह गये थे। खेती-बारी, रोग-बीमारी आदि कारणोंने सभी लोगोंको अपने-अपने घर जानेके लिये विवश कर दिया था। भाग्यवश कई मासके पश्चात् एक दिनका समय निकालकर मैं भी वहाँ जा पहुँचा। मैंने देखा, एक वृद्धा, जिसे मैं नहीं जानता, श्रीबाबाजी के समक्ष अश्रुपात करती निवेदन कर रही है—'आप आज्ञा दें तो मैं रास और कीर्तनके स्थानपर छप्पर हटवाकर विशाल मण्डप बनवा दूँ।' इसपर बाबा केवल इतना कहकर मौन हो

गये कि मैं अपने मुँहसे क्यों कहूँ, मुझे क्या आवश्यकता है ? तब वृद्धाने कहा, "मैं बीस हजारके नोट साथ लायी हूँ, ये आपके अर्पण हैं, आप इन्हें स्वीकार कर लें।" तब आपकी निःस्पृहता और निष्किञ्चनताका निखार इन शब्दोंमें प्रकट हुआ— 'हम साधु हैं, हमें तो दो माधूकरीमात्र चाहिये। इन कागजके टुकड़ोंको उन्हें दो जिनके दुधमुँहे नन्हे-नन्हे बच्चे दवा-दारू के लिये तड़प रहे हैं।" इतना कहते कहते स्वाभाविक ही नेत्र बंद कर समाधिस्थ हो गये और तबतक नेत्र नहीं खोले जबतक वह वृद्धा नोटोंकी थैली उठाकर आश्रमसे चली न गयी। दूसरी घटना तो स्वयं मेरेसे ही सम्बन्ध रखती है। एक बार मैं एक दानी सज्जनको साथ लेकर उसका धन किसी पुण्य कार्यमें लगवा देनेके लिये पूज्य श्रीबाबाजीकी सेवामें गया था। आप उस समय वृन्दावन-आश्रमकी कुटियाके नीचेवाली गुफामें विराजमान थे। मैंने बड़े संकोचसे वह बड़ी धनराशि, जिससे सौ व्यक्तियोंका बड़े आनन्दसे एक वर्षतक निर्वाह हो सकता था, स्वीकार करनेके लिये अत्यन्त आग्रह किया। परन्तु आपने तो उस धनसे हाथ तक नहीं लगाया। तब विवश होकर मैंने एक युक्ति प्रस्तुत की कि आप आश्रममें एक बड़ा पुस्तकालय खुलवा दें, जो संसारका सबसे बड़ा पुस्तकालय हो और उसमें यह धन तथा अपने अन्यान्य धनी भक्तोंद्वारा और धन लगवा दें। वह सदाके लिये आपकी पुण्य स्मृतिके रूपमें रहेगा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब वह धन और यह प्रस्ताव दोनों ही को अस्वीकार करते हुए आपने कहा "बेटा ! साधुओंको स्मृति नहीं चाहिये। भला, जो जीवित ही शिव और शव हो गया उसकी स्मृति क्या बनेगी ?"

ऐसी-ऐसी अनेकों घटनाएँ आपकी स्मृतिरूपसे आपके भक्तोंके हृदयोंमें रखी होंगी, जिन्हें संस्मरणोंके रूपमें श्रद्धाञ्जलिकी

भाँति भेंट करके वे पुण्यके भागी बनेंगे। मैं तो संक्षेपमें इतना ही कह सकता हूँ कि आपमें धर्म, नीति व्यवहारकौशल आदि सभी गुण विद्यमान थे। आपको अपने-अपने दृष्टिकोणसे सभीने देखा और समझा, परन्तु भाग्यवान् तो वे ही कुछ व्यक्ति हैं जिन्होंने आपसे जीवनका वास्तविक लाभ उठाया और यह—

'जिन्ह खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि।'

आप सदैव यह कहते सुने जाते थे कि लोग वास्तवमें जीवनका उद्देश्य क्या है—यह न समझकर खाने, पहनने, लड़ाई, झगड़े और राग-द्वेषादिमें ही इस अमूल्य मानवजीवनको नष्ट कर रहे हैं। हुआ भी ऐसा ही। आपके जीवनकालमें बहुत कम व्यक्तियोंनेआपको समझा और जिन्होंने समझा वे ही कुछ पा सके।

अन्तमें मैं चिरऋणीकी भाँति भावमयी श्रद्धाञ्जलिके साथ इस संक्षिप्त लेखको समाप्त करता हूँ।

पं० श्रीअमृतरामजी शास्त्री, वेदतीर्थ

नरौरा (बुलन्दशहर)

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।
यत्साक्षात्करणान्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ॥

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीसे मेरा सम्बन्ध, मैंने जबसे होश सँभाला तभीसे रहा । मेरे पूज्य पिता पं० श्रीशालग्रामजी उनके अनन्य भक्त और सेवक थे । वे कहा करते थे कि मैं श्रीमहाराज-जीकी आज्ञासे ही अपनी जन्मभूमि छोड़कर गंगातटपर नरौरामें आया था और उन्होंने मेरे द्वारा अग्न्याधान कराया था । उसके एक वर्ष पश्चात् तेरा जन्म हुआ ।

इस प्रकार जीवनके आरम्भसे ही श्रीचरणोंकी मुझपर अटूट अनुकम्पा थी । अपने अबोध वालककी भाँति वे मुझपर वात्सल्य की वर्षा करते थे । उनके स्नेह-सलिलसे सराबोर होकर मैं सर्वदा निश्चिन्त और निर्भय रहता था । जीवनमें अनेकों बार उन्होने मेरा पथप्रदर्शन किया और आपत्तियोंसे रक्षा की । इस लेखके क्षुद्र कलेवरमें उन सभी घटनाओंका उल्लेख करना तो सम्भव नहीं है, उनमें से कुछ प्रसंग प्रस्तुत करता हूँ—

(१)

एक बार मैं अपनी पूर्व पत्नी और बच्चोंको साथ लेकर श्रीचरणोंके दर्शनार्थ कर्णवास को चला । राजघाटके समीप पहुँ-चते-पहुँचते सूर्यास्त हो गया । मैं श्रीमहाराजजीके ही अद्भुत चरित्रोंकी चर्चा करते हुए बेसुध-सा हो रहा था । इतनेहीमें हमारी बैलगाड़ीका एक पहिया चड़चड़ाहट करता टूट गया । मैंने भूमि-

पर वस्त्र बिछापर बच्चोंको बिठा दिया और यह प्रतीक्षा करने लगा कि कोई परिचित व्यक्ति मिले तो उसके द्वारा कर्णवासमें अपने सम्बन्धी श्रीभगवानवल्लभजीके पास सूचना भेजकर एक पहिया मँगा लूँ। रात्रिकी दस बजेकी गाड़ीसे उतरकर कुछ लोग कर्णवास जाते हुए मिले भी। उनसे अपनी बात कही तो वे 'अच्छी बात' कहकर सहानुभूति दिखाते चले गये। परन्तु रात्रिके बारह बजेतक हमें कोई सहायता नहीं मिली। बीहड़ जंगलका स्थान था, चोर-डाकुओंकी भी आशंका थी। परन्तु हो क्या सकता था। हम प्रभुका कीर्तन और श्रीमहाराजजीका चिन्तन करते हुए किसी आकस्मिक सहायताकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

इतने हीमें स्टेशनपर एक बजेका घंटा बजा। मैंने देखा सामनेसे एक आदमी हाथमें लाठी लिये आ रहा है। उसे देखकर मेरा शरीर भयसे सुन्न हो गया। तथापि जैसे-तैसे साहस बटोरकर मैं बैठा रहा। उसने पास आकर पूछा, "तुम लोग कौन हो?" मैं बोला, "मेरा नाम अमृतराम है। नरौरावाले पं० शालग्रामजी अग्निहोत्री मेरे पिताजी हैं। हम श्रीउड़िया-बाबाजीके दर्शनार्थ कर्णवास जा रहे थे, सो गाड़ीका पहिया टूट गया। अब जैसे भी हैं तुम्हारे सामने हैं। अब, आप अपना परिचय दीजिये।" वह बोला, "मैं बिलौना का रहनेवाला धीरजराम हूँ। आज रात अँधेरी होनेके कारण कोई मेरी भैंस खोलकर ले गया है। उसे ढूँढ़ते-ढूढ़ते मैं यहाँ आ गया। मैं भगवानवल्लभके विवाहमें तुम्हारे यहाँ गया था। आप लोग डरें नहीं। पास ही बदरपुर गाँव है। वहाँ चलें, मैं दूसरी बैलगाड़ी दिला दूँगा।" मैंने पत्नीसे कहा, "शान्ति! तुम यहीं बैठो। मैं बदरपुरसे दूसरी बैलगाड़ी ले आऊँ।" किन्तु उस अँधेरी रात्रि-में जंगलमें अकेले रहनेका उसका साहस न हुआ। तब मैंने धीरजरामसे कहा, "भाई! आपने इतनी कृपा की है तो आप

ही किरायेपर एक गाड़ी ले आवें। ये लोग यहाँ अकेले रहनेमें भय मानते हैं।"

धीरजराम 'अच्छी बात है' ऐसा कहकर चले गये और थोड़ी ही देरमें एक बैलगाड़ी ले आये। उसकी झनझनाहट की आवाज सुनकर ही शान्ति प्रेमविह्वल हो गयी और बोली, "आज तो बाबाने हमारी अच्छी रक्षा की। यदि इस समय धीरजरामकी जगह कोई डाकू ही आ जाता तो क्या बीतती ?" बस, गाड़ी आनेपर हमने उसमें अपना सामान रखा और धीरजरामको भी साथ लेकर कर्णवास चले आये। वे भी पूज्य बाबाके एक अनन्य सेवक ही थे। वहाँ बच्चोंको भगवानवल्लभजीके घरपर उतारकर जब गाड़ीवान्को किराया देने लगे तो वह हाथ जोड़कर बोला, "आपने रास्तेमें हमें श्रीमहाराजजीकी अनेकों लीलाएँ सुनायीं इससे अधिक और क्या किराया हो सकता है ?' मैंने बहुत आग्रह किया, परन्तु वह तो बाबाका बड़ा प्रेमी भक्त था। उसने लेना स्वीकार न किया। अन्तमें उसे सस्नेह विदाकर मैं धीरजरामके सहित कुटियापर पहुँचा।

इन दिनों ग्रीष्मकाल था। श्रीमहाराजजी कुटियाकी छतपर विश्राम करते थे। इस समय रात्रिके तीन बजे थे। तथापि जीनेके किवाड़ खुले हुए थे। हम धीरेसे ऊपर चढ़कर चुपचाप बैठ गये। आप समाधिस्थ विराजमान थे। उसी स्थितिमें आँखें बन्द किये ही बोले, 'अमृत ! तू आ गया ? शान्ति आ गयी ?' मैंने 'हाँ, श्रीमहाराजजी' कहकर प्रणाम किया। प्रभुने मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए कहा, 'बेटा ! तेरी गाड़ीका पहिया टूट गया था, सो मैंने धीरजरामको भेजा था, वह मिला होगा ?' मैंने कहा, 'हाँ प्रभो ! धीरजरामजी मेरे साथ ही आये हैं, ये बैठे हुए हैं।" आप हँसकर बोले, 'मैंने उस दिन पञ्चदशीमेंसे सुनाया था कि एक किसानका अपनी भैंसमें अनुराग था उसीसे

उसका मोक्ष हो गया। वह बात तुझे याद है न ?' मैं बोला, 'सरकार ! ये भी भैंसको खोजते हुए ही हमारे पास जा पहुँचे थे।' आपने कहा, 'बेटा ! तभी तो मैं कहता हूँ कि जैसे वह भैंस-भैंस रटकर अपनेको भैंसही समझने लगा था उसी प्रकार निरन्तर ब्रह्मचिन्तनसे जीव ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।' इसी प्रकार कुछ देर बातें होती रहीं। फिर मेरे मुँहसे अकस्मात् निकला, 'महाराजजी ! इनका अपनी भैंसमें अनुराग है तभी तो ये अँधेरी रातमें उसे ढूँढ़ रहे थे। अब इनकी भैंस मिल जानी चाहिये।' आप बोले, 'धीरजराम ! जा, बेटा ! तेरी भैंस घरपर ही आ जायगी।' इसके पश्चात् धीरजराम अपने घर चले गये।

दूसरे दिन मैं बिलौना गया और धीरजरामसे पूछा कि तुम्हारी भैंस मिली या नहीं ? वे बोले, जिसका ऐसा बढ़िया ग्वालिया है कि रातमें चरानेको ले जाय उसकी भैंस कहाँ जा सकती है ?' मैंने कहा, 'भैया ! मैं तुम्हारी बात समझा नहीं, तुम्हारा क्या आशय है ?' धीरजराम बोले, 'यार ! तुमने अब भी बाबाको नहीं पहचाना। ये ही तो जन्म-जन्मान्तरके ग्वालिया हैं। पहले गायें चराते थे, अब अभ्यासवश भैंस खोलकर ले गये। मुझे घर आते ही भैंस खड़ी मिली है। यदि चोर ले जाता तो घरपर कैसे बाँध जाता।'

वहाँसे मैं कर्णवास लौट आया और स्नानादिसे निवृत्त हो पत्नीके सहित प्रभुका पूजन किया। तभी प्रभुने हम दोनोंको दीक्षित किया। आपने उपदेश दिया,'बेटा ! द्वैतहीमें अद्वैतदर्शनका अभ्यास करो।' हम प्रभुका चरणामृत पान करके पवित्र हो गये हम निश्चिन्त हैं, उन्हींके हाथमें हमारी डोरी है, अब हमें भवाटवीका भय नहीं है।

(२)

कर्णवासमें श्रीलम्बेनारायण स्वामीका भण्डारा था। मैं अन्य विद्यार्थियोंके साथ पक्के घाटपर ठहरा हुआ था। प्रातःकाल चार बजेका समय था। मैंने समझा श्रीमहाराजजीके सत्संगमें पहुँचनेके लिये मुझे विलम्ब हो गया है। अतः मैं काठकी सीढ़ी द्वारा जल्दी-जल्दी छतसे उतर रहा था। अकस्मात् मेरा पैर डग गया और मैं अचेत होकर भूमिपर गिरा। मुझे केवल इतना अनुसन्धान रहा कि गिरते समय मेरे मुखसे बाबा !' यह शब्द निकला था।

घण्टों पश्चात् मुझे चेत हुआ। परन्तु चोट कहीं नहीं आयी थी। तिमंजिलेसे पक्की भूमिपर गिरा फिर भी चोट नहीं आयी। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी कहते थे, 'बाबाकी कृपासे ही यह बालक जीवित बचा है। हमने सुना था, गिरते समय इसके मुँहसे 'बाबा' शब्द निकला था।' श्रीमहाराजजी बोले, 'बेटा ! आधेय आधार [1] पर गिरेगा तो चोटका क्या काम ?' ब्रह्मचारी ऋषिने कहा, 'बाबा ! पृथ्वी ही तो आधेय आधार है और जो ऊपरसे गिरेगा वह भूमिपर ही गिरेगा। उस आधेय आधारके सिवा और कहाँ गिर सकता है ?' बाबाने हँसकर कहा, 'यदि पृथ्वीपर गिरता तो चोट न आती ? यह तो आधेय आधारपर गिरा था।' प्रभुके ये गूढ़ वचन सुनकर सब भक्त आनन्दमग्न हो गये।

---

१. वह आधार जिसने वास्तवमें सबको धारण किया हुआ है। सम्पूर्ण जगत्का ऐसा आधेय आधार परब्रह्म ही है। श्रीमहाराजजी ब्रह्मस्वरूप ही हैं। अतः उनकी गोद भी हमारा आधेय आधार ही था। उस समय उन्होंने अपनी गोदमें धारण करके मेरी प्राणरक्षा की थी। अतः वही मेरी आधेय आधार था।

(३)

ब्रह्मलीन दण्डिस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजीका भण्डारा था। पूज्य श्रीमहाराजजी नरवर पधारे थे। मैं वहाँ पढ़ता था। एक दिन कुछ साथियोंके सहित मैं श्रीचरणोंके दर्शनार्थ गया। आप बोले, बेटा ! अपने सहपाठियोंसे केवल पढ़नेमें ही स्पर्धा करनी चाहिये और किसी बातमें नहीं।' मैंने साधारण-सी बात समझ कर कहा, 'अच्छा, बाबा !' और अपने साथियोंके सहित गङ्गास्नानको चला गया। हम सब गङ्गाजीमें नहाने और तैरने लगे। एक फल बहता जा रहा था। उसे पकड़नेके लिये आपसमें होड़ लग गयी। परन्तु वह किसी के हाथ न आया। सब साथी बाँधकी टक्करतक जाकर लौट आये, परन्तु मैं स्पर्धा-वश बढ़ता ही चला गया। कुछ दूर जानेपर फल पकड़ लिया। बेलका फल था अब पीछे मुड़कर देखा तो मालूम हुआ मैं दूर निकल गया। प्रवाह बहुत तीव्र था। साथी शोर मचा रहे थे कि अमृतराम बह गया। मेरी उस समय जैसी स्थिति थी उसे तो वे ही समझ सकते हैं जिनपर कभी ऐसी बीती है। जब तैरते-तैरते थक गया तब मुझे बाबाकी याद आयी। मन ही मन प्रार्थना करने लगा, 'प्रभो ! अब तो रक्षा करो, फिर कभी ऐसी स्पर्धा नहीं करूँगा।' तुरन्त प्रेरणा हुई कि गंगाजीकी थाह तो लो। देखा तो वहाँ जल कण्ठतक ही था। बस मुझे विश्राम मिल गया और फिर श्रीमहाराजजीकी कृपासे मैं पुनः किनारे पर लौट आया।

इस प्रकार उस समय उन्हींकी कृपासे मेरे प्राण बचे।

(४)

श्रीचरण कर्णवासमें ही विराजमान थे। मैं भी सपरिवार वहाँ पहुँच गया। पत्नीका पुंसवन संस्कार करना था। कर्म-काण्डमें विहित न्यग्रोधादि औषधियोंको पीसकर रखा। उसी

समय पुंसवनके सम्भारमें रखे जलको एक बालकने गिरा दिया। यह हमारे यहाँ अपशकुन माना जाता है। मैंने पत्नीसे कहा, 'वसन्त ! अब क्या हो।' वह धैर्यपूर्वक बोली, 'आप बाबाके पास जायँ और उनसे इस विषयमें परामर्श करें।' मैं सब कर्मकाण्ड अधूरा ही छोड़कर प्रभुके पास पहुँचा। वहाँ संकीर्तन हो रहा था। जब समाप्त हुआ और सब लोग चले गये तो निवेदन करना ही चाहता था कि आप बोले, 'अमृत ! वह टोकरी तो ला।' मैं ले आया। उसमें फल थे। सरकारने उसमेंसे एक सेव निकालकर मुझे दिया। मैं समझ गया कि प्रभुने विना पूछे ही उत्तर दे दिया। उसे प्रसन्नतापूर्वक लेकर चलने लगा तो बोले, 'बेटा ! सेबका छिलका बीज आदि सभी खिला देना।' मैं 'जो आज्ञा' कहकर चल दिया और पत्नीको समूचा सेव खिला दिया। उससे पूर्व मेरे तीन बच्चे परलोकवासी हो चुके थे। किन्तु इस बार गुरुदेवके कृपाप्रसादसे जो बालक हुआ वह अभी तक सकुशल है।

(५)

प्रभु वृन्दावनमें विराजमान थे वहाँ आपके तत्त्वावधानमें एक सहस्रचण्डी यज्ञ होनेवाला था। यजमान स्वयं अपने साथ आचार्य ले आये थे। मैं उस समय नरौरा भागीरथी आश्रममें था। रात्रिके समय स्वप्नमें सरकारने दर्शन देकर आज्ञा दी कि बेटा ! मैं तुझसे यज्ञ कराऊँगा और तू यहाँ सो रहा है। मैं प्रातःकाल उठते ही वृन्दावनके लिये चल दिया। जब श्रीचरणोंमें पहुँचा तो आप बोले 'बेटा ! यज्ञका आचार्य तो यद्यपि यजमान अपने साथ ले आया है, तथापि मैं तुझसे ही यज्ञ कराऊँगा।' बस, आपके आदेशसे मेरे आचार्यत्वमें ही वह यज्ञ निष्पन्न हुआ। इस तुच्छ दास पर ऐसी थी उनकी अहैतुकी कृपा।

(६)

भदान जिला मैनपुरीके रहनेवाले मेरे एक सम्बन्धी हैं। उनके लड़के रामसेवकको प्रतावेश होता था। उसके पितामह ही प्रेतयोनिको प्राप्त होकर उसे दबाये रहते थे। अनेकों उपचार करनेपर भी उसे प्रेतबाधासे मुक्ति नहीं मिली। एक दिन स्वप्न में श्रीमहाराजजीने मुझे आदेश दिया कि तुम इसे श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाओ। प्रयागमें ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजीकी कुटीपर इस यज्ञका आयोजन किया गया। उसमें प्रेतकी स्थितिके लिये जो यज्ञान्त घट रखा गया था उसे त्रिवेणीमें विसर्जित करनेके लिये जब हम ले जा रहे थे तो वह फूट गया और प्रेत पुनः उस बालकमें ही आविष्ट हो गया। चारों ओरसे कुतूहलवश नौकाएँ इकट्ठी हो गयीं। लोग हमारी नावपर टूटे पड़ते थे। बड़ी कठिनतासे हम लौटकर झूसी पहुँचे। रातको श्रीमहाराजजीने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया और बोले 'बेटा ! इस बालकको मैंने अपनी शरणमें ले लिया है। अब इसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।' इस बच्चेको दस वर्षसे प्रेतने दबा रखा था। इसकी पागलोंकी-सी दशा थी। किन्तु तबसे यह सर्वथा स्वस्थ है।

ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीने अपनी 'भागवती कथा' में इस प्रेतोद्धारके प्रसंगका वर्णन किया है।

(७)

सं० २००५ की चैत्र कृ० १४ को प्रभु स्वरूपस्थ हुए। उनका निर्वाणोत्सव करके मैं लौटा। इन दिनों मैं खुरजामें रहने लगा था। वहाँ एक रात हमारे यहाँ चोरी हो गयी। परन्तु अभी हमें इसका पता नहीं था कि प्रातःकाल चार बजेके लगभग मुझसे वसन्तकुमारीने कहा, 'सुनो, आज बाबाने हमारी बड़ी रक्षा की है। मैंने स्वप्नमें देखा है कि तीन आदमी हाथमें तलवार लिये घरमें घुस आये हैं। वे आपको मारना चाहते हैं। इसी

समय बाबा अपने सिंहासनसे उठकर महाकालीके रूपमें प्रकट हो गये और मुझसे बोले, 'बेटा ! तू डरे मत। इसकी रक्षाका भार तो मेरे ऊपर है।' बस, देखते ही देखते उन्होंने तीनोंके गले काट डाले और उन्हें अपनी मुण्डमालामें पिरो लिया।' मैंने कहा, 'वसन्त ! इसमें आश्चर्य क्या है, उनकी सर्वदा ही हमपर बड़ी कृपा है।'

फिर देखा तो मालूम हुआ हमारी अनेकों चीजें चली गयीं हैं बसन्तके आभूषण, मेरी डाकखानेकी पास बुक तथा कुछ नकद रुपया भी चोरी गया है। पीछे पता लगा कि वे लोग आये तो मारनेके ही संकल्पसे थे, परन्तु पर्याप्त धन मिल जानेके कारण उसे ही लेकर चले गये। मैंने बसन्तकुमारीसे कहा, 'बाबा तो सभीके हैं। उन्होंने हमारी प्राणरक्षा की और चोरोंको धन देकर प्रसन्न कर दिया।'

(८)

एक बार खुरजामें ही मैंने स्वप्नावस्थामें अपने प्रभुजीको शेषशायी विष्णु भगवान्के रूपमें देखा। श्रीलक्ष्मीजी तथा अनेकों सुरसुन्दरियाँ उनकी सेवामें संलग्न थीं। कोई पादसंवाहन करती थीं तो कोई चमर-व्यजन आदि डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। एक देवांगना मणिमय पात्रमें उनके लिये खीर लायी। आप बोले, 'बेटा ! अमृत भूखा है, यह उसीको दे दे।' सखीने वह पात्र मेरे हाथमें दे दिया। मैं बोला, 'प्रभो ! मुझे भूख तो अवश्य है, परन्तु मैं यह खीर ग्रहण तभी करूँगा जब आप इसमेंसे भोग लगा लेंगे।' आप बोले, 'ले आ।' मैंने आपको भोग लगाया और ध्यानसे देखा तो मालूम हुआ कि वह खीर मोतियोंकी है। मैंने कहा, 'भगवन ! दूधमें मोती कैसे गल गये ?' आपने कहा, 'यहाँ मोती ही गलते हैं।'

भोग लगनेके पश्चात् जब मैं प्रसाद पाने लगा तो खाते-

खाते ही मेरा स्वप्न टूट गया। जागनेपर मैं सोचने लगा कि प्रभुके यहाँ मोती गलते हैं—इसका क्या अभिप्राय है। पाँच सात दिन तक मनन करनेपर भी मुझे इस वाक्यका रहस्य समझमें न आया। एक दिन उन्हींसे इसका मर्म समझानेकी प्रार्थना करते हुए सो गया। तब स्वप्नमें बताया, 'अमृत ! मोती चिदाभास हैं और दूध परब्रह्म है। परब्रह्ममें चिदाभासका गलना स्वाभाविक ही है।"

(६)

स्वप्नमें ही एक बार मैंने देखा कि मैं एक अश्वत्थ (पीपल) वृक्षको डंडासे प्रहार कर रहा हूँ और क्रोधपूर्वक कह रहा हूँ कि तुमने तो कहा है 'अश्वत्थश्चास्मि वृक्षाणाम्' फिर प्रकट क्यों नहीं होते ? इतने हीमें उसके पत्रोंसे एक नील तेज प्रकट हुआ। उसमें षोडशवर्षीय किशोर रूपमें आप दिखायी दिये। किन्तु थे शङ्कर रूपमें। मुझे उसी समय ऐसा भान हुआ कि आपका तो निर्वाण हो चुका है। इस समय स्वप्नावस्थामें ही ये दर्शन हो रहे हैं। तब आप बोले, 'क्या चाहता है ?'

मैं—भगवन् ! आपके बिना हम लोग बहुत दुःखी हो रहे हैं।

महाराजजी—(मुस्कराकर) तुझमें तो मुझे दुःखका लेश भी दिखायी नहीं देता।

मैं प्रभो ! दृष्ट दुःख निवृत्त नहीं होता।

महाराजजी—सहन करनेकी आदत डाल। सब ठीक हो जायगा।

उपसंहार

इस प्रकार संक्षेपमें कुछ घटनाओंका उल्लेख करके श्रीचरणोंमें यह तुच्छ श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ। मैं तो प्रभुजीके निर्वाणके पश्चात् वृन्दावन आश्रममें आया ही नहीं

था—आनेका साहस ही नहीं होता था। एक दिन उन्हींकी अदृष्ट प्रेरणाने मुझे यहाँ आनेके लिये विवश कर दिया। यहाँ श्रद्धेय स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीने मुझे संस्मरण लिखनेकी बात सुझाई। बस, जैसी प्रभुकी प्रेरणा हुई टूटे-फूटे शब्दोंमें गूँथकर यह क्षुद्र पुष्पाञ्जलि प्रस्तुत की है। प्रभु इसे स्वीकार करें और अपनी अविचल भक्ति एवं शाश्वती स्मृति प्रदान कर इस विनीत दासको अपना कृपाभाजन बनाये रहें।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन मे देव प्रीयतां परमेश्वरः॥
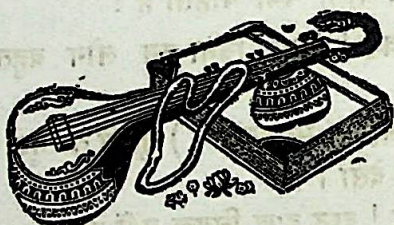
श्रीसिंहपालसिंहजी, गाँगनी (एटा)

प्रथम दर्शन

स्वामी मौजानन्दजी एक सिद्ध पुरुष थे। वे श्रीमहाराज-जीको ज्ञानका सूर्य कहा करते थे। वे मेरे तथा भाईसाहब दृग-पालसिंहजीके यहाँ प्रायः आया करते थे। हम लोग उनमें बहुत आदर बुद्धि रखते थे। उनका शरीर पूरा हो गया था, अतः हम लोग उनका भण्डारा करनेके लिये सोमना गये हुए थे। वहाँका कार्य समाप्त करके कर्णवास पहुँचे। उस समय सेठ गणेशी-लालजीका यज्ञ हो रहा था। वहाँ मालूम हुआ कि स्वामी मौजानन्दजीके शरीर छूटनेकी बात श्रीमहाराजजीने पहले ही कह दी थी। वहीं मैंने सबसे पहले श्रीमहाराजजीका दर्शन किया।

जलेसरमें

उसके कुछ वर्षोंबाद आप जलेसर पधारे। हमलोग संतोंमें श्रद्धा-भक्ति तो रखते ही थे। मैं और भाई साहब दोनों ही आपके दर्शन करने गये। अवसर पाकर भाई साहबने प्रार्थना की कि महाराजजी ! हसनगढ़ पधारिये। भाई साहब अब हसनगढ़ ही में रहा करते थे। उनकी बात सुनकर बाबा बोले, 'नहीं, एक सौ एक बार कहेगा तब चलेंगे।" भाई साहब उसी समय खड़े हो गये और हाथ जोड़कर लगातार अखण्डरूपसे 'महा-राजजी ! हसनगढ़ पधारिये' इस वाक्यको रटने लगे। तब महाराजजी बोले, 'अच्छा, बैठ जा, चलेंगे।' उसके पश्चात् हम दोनों अपने गाँवको लौट आये। यद्यपि उस समयतक श्रीमहा-राजजीकी ओर मेरा विशेष आकर्षण नहीं था, तथापि उनकी

कृपादृष्टि मेरे ऊपर उसी समयसे थी–ऐसा मैं अनुभव करता हूँ।

हसनगढ़में

तीन-चार दिन बाद किसी कार्यवश मैं भाई साहबके पास हसनगढ़ गया। वहाँ देखा कि बड़ी सजावट और चहल-पहल हो रही है। पूछनेपर मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी आ रहे हैं। मैं वहाँ सेवा और स्वागत करनेवालोंका प्रधान बना दिया गया। समीप आनेपर हम लोगोंने एक-दो फर्लांग आगे जाकर श्रीमहाराजजीको प्रणाम किया, मालाएँ पहनायीं और बाजे-गाजेके साथ उन्हें घरपर लाये। जब आप आसनपर विराज गये तो पूजन-आरती हुई तथा प्रसाद वितरण किया गया।

एक दिन भाई साहबने मेरे विषयमें कहा, 'महाराजजी ! यह वेदान्ती है, हम लोगोंको बात नहीं करने देता है।' महाराज जी बोले, 'अच्छा, कल सारा समय सिंहपालका है। मैं पाँच मिनटमें इसका सब वेदान्त निकाल दूँगा।' उस समयतक मेरा निश्चय था कि मैं प्रयत्न करके किसीको गुरु नहीं बनाऊँगा। जहाँ स्वाभाविक गुरुभाव होगा उन्हींको गुरु मानूँगा।

दूसरे दिन जब सत्संग प्रारम्भ हुआ तो बाबा मुझसे बोले, 'अच्छा बता, तू कौन है ?' मैंने अपने पुस्तकीय ज्ञानके आधार पर दो-चार बातें कहीं—'मैं शरीर नहीं हूँ, मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ, मैं मन-बुद्धि नहीं हूँ' इत्यादि। मेरी बातें सुनकर बाबाने कहा, 'पुस्तकीय ज्ञानको ताकपर रख दे। अनुभवकी बात बता।' मुझ अनुभव तो कुछ था नहीं। बहुतेरा जोर मारा, परन्तु अन्तमें बात करना बंद हो गया। मैं झुक गया। हम दोनों भाईयोंने पं० शिवदयालुजी द्वारा महाराजजीसे प्रार्थना की कि हमें मन्त्र देनेकी कृपा करें। इसपर आपने कहा, 'नहीं, अभी नहीं। इन्हें रामघाट लाओ।'

रामघाटमें

चार महीने बाद सन् १९३३ में रामघाटमें गुरुपूर्णिमा हुई। हम दोनों वहाँ पहुँचे। बड़ी भीड़ थी। पूजनका बड़ा भारी समारोह था। तीन-चार बजे तक लगातार पूजनके कारण अवकाश नहीं मिला। हम सोचने लगे कि यहाँ हमारी कौन सुनेगा ? अकस्मात् महाराजजी सबके बीचमें चौकीपरसे उठ खड़े हुए और हम दोनोंको साथ ले एकान्तमें जा विराजे। हमारी पूर्व प्रार्थनाके अनुसार आपने हमें जपके लिये मन्त्र और इष्टदेवका ध्यान बताया। यही श्रीमहाराजजीके प्रति गुरुभावसे हमारी शरणागति हुई।

गाँगनीमें

मेरी और गाँवके सभी लोगोंकी इच्छा थी कि बाबाको गाँव में बुलाया जाय। कई वार घरपर पधारनेके लिये प्रार्थना की गयी। अन्तमें आपने स्वीकृति दे दी। मैं तीन-चार महीने साथ ही रहा। रास्तेमें भी सत्संग होता चलता था। एक दिन आप मुझसे बोले, 'भैया ! भक्तिमार्गमें हार तो है ही नहीं, जीत ही जीत है। सुख-दुःख तो सभीको आते रहते हैं। परन्तु यदि भगवच्चिन्तन हो रहा है तो अन्तमें कल्याण ही है।'

घरपर छोटे भाई बोधपालसिंहने महाराजजीके स्वागत-की सब तैयारी कर ली थी। ध्वजा-पताकाओंसे सजावट की गयी थी। घर-घर तैयारियाँ हो रही थीं। समीप पहुँचनेपर बाजे-गाजेके साथ पाँवड़े बिछाते हुए घरपर ले गये। पूजन–आरतीके पश्चात् प्रसाद वितरण हुआ और कविताएँ पढ़ी गयीं। जबतक आप गाँगनीमें विराजे कथा, कीर्त्तन और सत्संगका अपूर्व समारोह रहा। प्रतिदिन आस-पासके गाँवोंसे दस-दस हजार नर-नारी दर्शनोंके लिये एकत्रित हो जाते थे। उनकी व्यवस्थाके

लिये दूर-दूरसे पुलिसमैन बिना बुलाये स्वयं ही आ जाते थे। अवागढ़से नाजिम आदि राजकर्मचारी भी आते थे। हिन्दू, मुसलमान, जैन आदि सभी धर्मोंके लोग आते और श्रीमहाराजजीसे प्रश्नोत्तर करते थे। महाराजजी प्रेमसे सभीको यथोचित उत्तर देकर सन्तुष्ट करते थे। इसी प्रकार कुल पाँच बार आप गाँगनीमें पधारे।

उनकी विशेषताएँ

पूज्य श्रीमहाराजजीकी दृष्टि बहुत पैनी थी। उन्हें किसी भी प्रश्नका उत्तर सोचना नहीं पड़ता था। मैं बीसों वर्षतक उनके निकटसम्पर्कमें रहा हूँ; परन्तु मैंने उन्हें क्रोध आते कभी नहीं देखा। उनमें अद्भुत क्षमाशीलता थी। यही नहीं उनका संकल्प भी कभी व्यर्थ नहीं होता था। एक दिन मैं स्नान कर रहा था। अकस्मात् मेरे मनमें महाराजजीकी याद आयी और उनके पास चलनेकी इच्छा होने लगी। धीरे-धीरे वह इच्छा इतनी बढ़ी कि उनके पास जाये बिना मुझे चैन ही नहीं था। जैसे-तैसे वह दिन बिताया और दूसरे दिन प्रातःकाल ही मोहनपुरकी ओर चल दिया। वहाँ सायंकालमें पहुँचकर दर्शन किया। देखते ही वे कहने लगे, 'अरे सिंहपाल! मैंने कल ही तुम्हें याद किया था।' सारांश यह कि मैं उनकी संकल्पशक्ति से आकर्षित होकर ही वहाँ पहुँचा था। वे जब किसीको अपने पास आनेके लिये आकर्षित करते थे तो उसे आये बिना चैन नहीं पड़ता था। परन्तु इस रहस्यको शायद ही कोई समझ पाता था।

बाबाका वृक्ष

ग्वालियरकी यात्रासे लौटकर श्रीमहाराजजी गाँगनी पधारे थे। एक दिन प्रातःकाल जब वे शौचसे निवृत होकर आये तो मैं और लम्बेनारायन जिस स्थानपर उनके हाथ धुला रहे थे वहाँ

खिरनीके पेड़ोंकी एक पंक्ति थी और एक पुराना वृक्ष उनसे अलग खड़ा था। उसपर फल कभी नहीं आते थे। हाथ धोते समय श्रीमहाराजजीकी दृष्टि उस वृक्षपर गयी। आप इधर-उधर देखकर बोले, 'सिंहपाल। यह वृक्ष महात्मा है, इसे बेचना मत।' मैंने कहा, 'महाराजजी। इसपर फल तो कभी आता नहीं है, बेचेंगे कैसे ?' आप बोले, 'नहीं, यह महात्मा है। इसे कभी मत बेचना।' मैंने 'अच्छा महाराज।' कहकर स्वीकार कर लिया। उसके दो-तीन महीने वाद ही उस वृक्षपर फल आ गये। तब हमने यह महाराजजीका वृक्ष है' ऐसा मानकर उसके फल लुटा दिये।

अवागढ़नरेशके यहाँ

महाराजजी जब पहली बार गाँगनी आये थे तभी अवागढ़के राजा साहबने जिलेदारको उन्हें लानेके लिये भेजा था। परन्तु उस समय आपने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया। दूसरी बार जब आप गढ़िया पधारे तो राजा साहबने ठाकुर भगवान् सिंहको उन्हें आग्रहपूर्वक अवागढ़ लानेके लिये नियुक्त किया। उन्होंने मुझे भी अपने साथ लिया। तब प्रार्थना करते-करते गाँगनीमें आपने अवागढ़ जानेकी स्वीकृति दे दी। प्रायः पचास भक्तोंके साथ आप चिड़रई होते हुए अवागढ़की ओर चले। समीप पहुँचनेपर राजासाहब अपने दरबारियोंके सहित बैंडबाजा लेकर अगवानीके लिये आये। राजा साहब की कोठीसे कुछ दूर सत्संगके लिये स्थान बनाया गया था। वहीं राजपरिवारके सहित राजासाहबने महाराजजीको मालाएँ पहनायीं। उस समय वहाँ प्रायः एक हजार आदमियोंकी भीड़ थी। उन सभीको राजासाहबकी ओरसे चार-चार लड्डू प्रसादमें दिये गये। उसके पश्चात् उन्होंने अपने बगीचेवाली निजी कोठीमें श्रीमहाराजजीको विश्राम कराया।

राजा साहबने दस-बीस दिन पहलेसे ही कुछ प्रश्न छपवाकर जहाँ-तहाँ अपने इष्ट मित्रोंको भेज दिये थे। उनके अनेकों मित्र इस अवसरपर एकत्रित हुए थे। उनमें प्रधान थे खिमसेपुरके रावसाहब। प्रातः सायं तो हरिनाम-संकीर्तन होता था। दिनके नौ बजेसे राजा साहबकी ओरसे प्रश्न किये जाते थे, जिन्हें वे प्रायः दूसरे लोगोंसे ही पुछवाते थे। इस प्रश्नोत्तरमें हिन्दू, मुसलमान और अछूत आदि सभी वर्गोंके लोग सम्मिलित होते थे। मुझे वे सब प्रश्न तो अब स्मरण नहीं हैं, परन्तु कुछ अवश्य याद हैं। जैसे—(१) मनुष्योंके ऊपर युगका क्या प्रभाव पड़ता है? (२) जीवको ईश्वरका अंश कहा गया है, फिर जीव और ईश्वरमें भेद क्या है? इत्यादि। इसी प्रकार मध्याह्नोत्तर और रात्रिमें भी सत्संग होता था। तीनों समय राजा साहब स्वयं उपस्थित रहकर सत्संगमें सम्मिलित होते थे रात्रिको बारह बजेतक प्रश्नोत्तर होते रहते थे। एक दिन महाराजजीको भगवान् श्रीकृष्णका नाटक भी दिखलाया गया।

राजा साहबकी एक सुव्यवस्थित गौशाला थी। उसमें अच्छी-अच्छी नस्लके गाय, बैल और बछड़े थे। उनके अलग-अलग नाम थे, जो एक रजिस्टरमें लिखे हुए थे। एक दिन राजा साहबने श्रीमहाराजजीको ले जाकर वह गौशाला दिखलायी। महाराजजी जबतक अबागढ़में रहे राजा साहबने उनकी सेवा, सत्कारका बड़ा सुन्दर प्रबन्ध रखा। पच्चीस नौकर काम करनेके लिये जहाँ-तहाँ नियुक्त थे। वे ही सबको स्नान कराते और भोजनादिकी व्यवस्था करते थे। राजा साहब स्वयं सबकी देख-भाल रखते थे। इस प्रकार प्रायः दस दिन ठहरकर श्रीमहाराजजीने प्रस्थान किया। उस समय राजा साहब अपनी मित्र-मण्डली सहित दो-ढाई मीलतक उन्हें पहुँचानेके लिये गये।

————

श्रीचन्द्रपालसिंहजी बैरिस्टर, ग्वालियर

आपने मुझे पूज्यपाद श्री १००८ श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके विषयमें अपने निजके कुछ अनुभव प्रकट करनेका जो सौभाग्य प्रदान किया है उसके लिये अनेक धन्यवाद। उन महान् आत्माके लिये जो कुछ भी लिखा जाय थोड़ा ही रहेगा। मैं तो केवल एक-दो घटनाओंका ही उल्लेख करना उचित समझता हूँ। यथार्थ बात यह है कि श्रीस्वामीजीके उज्ज्वल गुणोंका वर्णन करनेकी क्षमता ही मुझमें नहीं है। मैं ठहरा इस संसारका एक ज्ञानहीन तुच्छ प्राणी मैं उन महापुरुषकी महिमाको कैसे समझ सकता हूँ?

मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शनोंकी अभिलाषा तथा प्रेरणा श्रीमान् चाचाजी श्रीसिंहपालसिंहजीके द्वारा प्राप्त हुई। मैं बलवन्त राजपूत कालेज, आगरामें नवीं कक्षामें पढ़ता था। उन दिनों श्रीमहाराजजी हमारे गाँव गाँगनीमें पधारे। अँग्रेजी और विज्ञानका विद्यार्थी होनेके कारण स्वभावसे ही मैं विश्लेषणप्रिय था; किसीपर एकाएकी विश्वास कर लेना सर्वथा मेरी प्रकृतिके विरुद्ध था। परन्तु श्रीमहाराजजीकी भव्य मूर्तिमें न जाने कैसा विलक्षण आकर्षण था कि मुझसे केवल उनकी चरणरज लेनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं बना। उस दिनके पश्चात् वह विलक्षण आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

श्रीमहाराजजीका मुझे व्यक्तिगत उपदेश यही था कि सदाचारी बनो तथा मांस, मदिरा और तम्बाकूका कभी सेवन मत करना। मुझे खेद है, श्रीस्वामीजीके आकस्मिक लीलासंवरणकी ठेसने मुझे छिन्न-भिन्न कर दिया है और मैं उनके आदेशोंको प्रायः भूल-सा गया हूँ। उन्हींके उपदेशानुसार मैं अब भी भगवान् श्री-

रामकी उपासना करता हूँ और प्रभु सर्वदा संकटकालमें मेरी रक्षा करते हैं। मुझे गौरव है कि मैं कमसे कम वचनद्वारा मिथ्या भाषण नहीं करता हूँ।

जून, सन् १९४४ ई० में श्रीमहाराजजी पुनः मेरे गाँवमें पधारे थे। उस समय मैं बी० एस-सी की परीक्षामें अनुतीर्ण हो गया था। इससे बहुत ही चिन्तित और दुःखी था। स्वामीजी महाराजने मेरे दुःखका कारण पूछा तो मेरेसे तो कोई उत्तर देते नहीं बना, किसी अन्य सज्जनने बता दिया। इसपर वे बोले, 'तू चिन्तित क्यों होता है ? तू फेल भी पास है।' मैं उस समय तो इन शब्दोंका कोई अर्थ नहीं समझ सका; परन्तु जब मैं आगरा गया और जुलाई मासके विश्वविद्यालयकी एक और सूची प्रकाशित हुई तो यह देखकर मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा कि उसमें आगरे से केवल मैं ही उत्तीर्ण हूँ।

उसी अवसरपर श्रीमहाराजजीका मेरेलिये एक यह आशीर्वाद और भी हुआ कि तू अपने पिता से भी कहीं अधिक नाम करेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उस वर्ष आगरा विश्वविद्यालयके खेल-कूदमें मैं सर्वोपरि रहा, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वर्णपदक तथा कई रजतपदक भी मिले और समाचारपत्रोंमें मेरी प्रशसा मेरे चित्रके सहित प्रकाशित की गयी। इस प्रकार खेल-कूदके क्षेत्रमें तो सचमुच ही मैंने अपने पिताजीकी अपेक्षा अधिक नाम प्राप्त किया। पीछे उपाधियाँ (डिग्रियाँ) भी मुझे उनसे अधिक ही मिलीं। यहाँतक कि मैं इंगलैंड भी गया और अभी बैरिस्टरी पासकरके लौटा हूँ। यहसब श्रेय मुझे केवल बाबाके शुभाशीर्वाद से ही प्राप्त हुआ है—ऐसी मेरी धारणा है।

---

१. इनके पिता श्रीमहेन्द्रपालसिंह रिटायर्ड डिप्टी कलक्टर हैं। वर्तमान महारानी ग्वालियर इन्हींकी पुत्री हैं।

श्री विश्वम्भरप्रसादजी, अतरौली

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके विषयमें भक्तगण अनेकों चमत्कार-पूर्ण घटनाएँ सुनाया करते हैं। मुझे उनका चमत्कार देखनेकी इच्छा कभी नहीं हुई। मेरे लिये तो उनकी अद्भुत ब्रह्मनिष्ठा ही सबसे बड़ा चमत्कार थी। तथापि इच्छा न होनेपर भी कुछ ऐसे प्रसङ्ग सामने आ ही गये, जिन्हें चमत्कारपूर्ण कहा जा सकता है। उनमेंसे इस समय जो मुझे स्मरण हैं नीचे लिखता हूँ–

(१)

एकवार श्रीमहाराजजी गड़ियावली पधारे थे। उनके दर्शनार्थ मैं, विश्वम्भरप्रसाद पटवारी और पं० रूपकिशोरजीके पुत्र विश्वनाथ वहाँ गये। उन दिनों पं० विश्वनाथकी पत्नीका देहान्त हो चुका था। रात्रिमें जब महाराजजीके पास हम तीन ही व्यक्ति रह गये तो वे विश्वनाथसे बोले, 'देख, अब विवाह मत करना। मैं तुझे बताये देता हूँ। यदि तूने विवाह किया तो तुझे स्त्री बनना पड़ेगा। यह बात अपने पितासे मत कहना। नहीं तो वे मुझे घेरेंगे और फिर मुझे तुझसे कहना पड़ेगा। देख, अब तेरे जीवन के केवल तीन साल शेष हैं। तेरे सम्बन्ध बहुत आयेंगे और एक वर्षतक तुझे विवाह करनेकी इच्छा भी बहुत होगी। परन्तु तुम विवाह करना मत।'

महाराजजीकी ये सभी बातें सत्य हुईं। एक वर्ष तक विश्वनाथने मुझे बतलाया कि विवाह के लिये मेरी बहुत इच्छा होती है। परन्तु फिर वे कहने लगे कि अब इच्छा नहीं होती। और तीन साल बीतने पर श्रीमहाराजजीके कथनानुसार उनका देहान्त हो गया।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी हरिद्वार पधारे थे। मैं उस समय ऋषिकेशमें था। जब मुझे समाचार मिला तो मैं ढूँढ़ता हुआ उनके पास पहुँचा। रातको सात-आठ बजे महाराजजी अलीगढ़-के रहने वाले एक इन्जीनियर साहबके यहाँ नहरके किनारे पधारे। वहाँ हरिनामसंकीर्तन हुआ। फिर आपने मास्टर मुंशीलालसे कहा, तुम इसी समय अनूपशहर चले जाओ। प्यारे-लालसे कहना कि अपना सब सामान बाँट दे और सुन्दर काण्ड-का पाठ करा देना। फिर यहाँ लौट आना।' मुंशीलालजी ने कहा, 'महाराजजी ! आज एकादशी हो गयी। यदि आज्ञा हो तो पूर्णिमाका स्नान करके चला जाऊँ।' महाराजजी बोले, 'अरे ! पूर्णिमातक तो तू यहाँ लौट आवेगा।'

ठीक ऐसा ही हुआ। मुंशीलालजी अनूपशहर गये। उन्होंने प्यारेलालजीको श्रीमहाराजजीका आदेश सुनाया। उन्होंने वैसा ही किया। फिर सुन्दरकाण्डका पाठ कराया गया और उसके समाप्त होते ही उनका शरीर शान्त हो गया। उसके पश्चात् मास्टर मुंशीलालने पूर्णिमाके प्रातःकाल हरिद्वार पहुँच कर यह सब समाचार सुनाया।

(३)

रामघाट की बात है। श्रीमहाराजजीके यहाँ एक बृहत् भण्डारा था। पाठशालाओंके सभी विद्यार्थी निमन्त्रित थे। पशु, पक्षी सबके लिये छुट्टी थी। भूखा कोई न जाने पावे। परन्तु वर्षा होने लगी। पं० रमेशचन्द्रजी महाराजजीसे कहने लगे, यह वर्षा तो तीन दिन तक नहीं खुलेगी। आप सबको कहीं बैठाकर भोजन करानेका प्रबन्ध कीजिये। एक बज चुका है।' उनकी बात सुनकर श्रीमहाराजजी सरल भावसे कहने लगे, 'अरे भैया ! तीन दिनतक वर्षा नहीं खुलेगी तो कैसे होगी ? यहाँ इतनी जगह

कहाँ है ?' फिर बोले, 'अच्छा, लाओ झाड़ ।' उधर वर्षा बड़े जोरसे हो रही थी । हम लोग सोचने लगे—'ऐसी तेज वर्षामें झाड़से क्या होगा ।' परन्तु आज्ञा थी । पाँच-सात व्यक्ति झाड़ू लेकर दौड़े । वस, झाड़ लगानेके पश्चात् एक दम बादल फट गया और धूप निकल आयी । जब चार घंटेमें सब लोग खा-पीकर निश्चिन्त हो गये तो फिर मूसलाधार वर्षा होने लगी ।

(४)

कर्णवासमें श्रीलम्बेनारायण स्वामीका भण्डारा हो रहा था । बड़े-बड़े महात्मा आये हुए थे । नरवर पाठशालाके सभी अध्यापक और विद्यार्थी उपस्थित थे । पण्डितस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी भी पधारे थे । महाराजजी श्रीहरिबाबाजीके साथ मिल कर जो हरिनामसंकीर्तनका प्रचार करते थे इससे पण्डितस्वामीका विरोध था । रात्रिके समय बहुत बड़ी सभा लगी हुई थी । उस समय पण्डित स्वामीजीने सबके सामने महाराजजीके लिये अनेकों न कहने योग्य बातें कहीं । परन्तु महाराजजीके चित्तपर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ । हम लोगोंको क्षुब्ध देखकर आपने अपनी कुटियामें बुला लिया और पूछा, 'तुम सबने मुझे क्या समझ रखा है ।' सब चुप रहे । तब आप बोले, 'बेटा ! इस देहकी तो हम भी निन्दा करते हैं और आत्मा उनकी मेरी एक है । यदि वे आत्माकी निन्दा करते हैं तब तो उनकी अपनी ही निन्दा हुई । इससे तुम लोगोंको क्षुब्ध नहीं होना चाहिये ।' इत्यादि ।

इस समय जो घटनाएँ ध्यानमें आयीं लिख दी हैं । मेरी दृष्टिमें तो उनकी विलक्षण मस्ती, सबको समान भावसे प्यार करना, पूजा और निन्दामें समान रहना—ये गुण किन्हीं भी चमत्कारोंसे सहस्र गुना श्रेष्ठ हैं मैं स्वयं श्रीमहाराजजीकी ओर आकर्षित नहीं हुआ प्रत्युत उन्होंने ही मुझे खीच लिया था ।

—:०:—

श्रीमनमोहनजी, मेरठ

(१)

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक ।
तिनके पद वन्दन किये, नासहिं विघन अनेक ॥
राम अनन्त अनन्त गुनानी । जन्म कर्म अगणित नामानी ॥

श्रीमहाराजजीके विषयमें कुछ भी कहा नहीं जा सकता। तथापि जिस प्रकार भक्तजन अनेक प्रकारसे अपने प्रभुके चरित्रों का वर्णन करते हैं और उससे उन्हें स्वयं ही प्रसन्नता प्राप्त होती है उसी प्रकार मैं भी उनके कुछ गुणगणकी अपने टूटे-फूटे शब्दोंमें चर्चा करके उनके श्री चरणोमें अपनी श्रद्धाके फूल समर्पित करता हूँ।

मैंने सबसे पहले एक पण्डितजीके द्वारा श्रीमहाराजजीका परिचय सुना था। उसके पश्चात् एक ब्रह्मचारीजीने मुझे आपका एक चित्र दिया। उसे देखकर मुझे आपके दर्शनोंकी तीव्र अभिलाषा जाग्रत् हुई। सौभाग्य से जब मुझे आपका दर्शन हुआ तो उसी समय मुझे रोमाञ्च हो आया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो साक्षात् भगवान् ही मिल गये। वे दूसरेके मनकी बात जान लेते हैं इस सिद्धिका तो उनमें उसी समय अनुभव हुआ। श्रीमहाराजजी दूसरोंके मनकी बात जानकर तुरन्त उनका समाधान कर देते थे। वे भक्तोंकी हरेक बातोंका अर्थात् दैनिक खर्च, विवाह, स्वास्थ्य, जीविका तथा भक्ति ज्ञान एवं

वैराग्यादिका ध्यान रखते थे। उनकी दृष्टिमें अद्‌भुत आकर्षण था। उन्होंने जिसे चाहा वही उनका हो गया। उनकी वाणीमें ओज था। उन्होंने जिससे जो कहा वही होगया। उनके संकल्पमें सामर्थ्य थी; जैसा चाहा उसी समय वैसा हो गया। उनके सामने मनुष्य अपने कृत्योंको छिपा नहीं सकता था।

श्रीमहाराजजी भक्तोंके मनमें शंकाको बढ़ने नहीं देते थे। जहाँ किसीके मनमें शंका उठी कि उसके बिना पूछे ही तुरन्त समाधान कर देते थे। एक बार मेरे मनमें संसारकी उत्पत्तिके विषय में जिज्ञासा हुई। अभी मैंने प्रश्न किया भी नहीं था कि आप बोले, 'संसार है ही कहाँ ?' बस, मेरा समाधान हो गया। महाराजजी कहते थे कि कञ्चन और कामिनीसे छूटना कठिन है, क्योंकि स्त्री और उदरपूर्त्तिकी समस्या प्रत्येक जन्ममें साथ रहती है और जिससे अधिक साथ रहता है उससे स्वाभाविक ही मोह बढ़ जाता है। यह मोह निरन्तर भजन और ध्यानसे ही छूट सकता है। 'अधिक से अधिक भजन करो' बस यही उनका उपदेश था। वे अभ्यास और वैराग्यपर ही अधिक जोर देते थे। उनके सम्बन्धसे मेरे मनमें सद्विचारोंका उदय हुआ, भजनकी प्रेरणा हुई और संसारके मिथ्यात्वका भान हुआ।

(२)

श्रीमहाराजजीने बतलाया था कि एक बार एक जज साहब मेरे पास आये। उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। उन्होंने पूछा कि मैंने ऐसा कौन पाप किया था जिससे यह रोग हुआ ? मैंने धीरे से उनके कानमें उनका अपराध बता दिया। वे पैरोंपर गिर पड़े और बोले 'महाराजजी ! इस बातको तो मेरी स्त्री भी नहीं जानती।"

(३)

श्रीमहाराजजी कहते थे कि सिद्धि तो चलती-फिरती छाँह

है। उनकी यह बात उनके विषयमें तो पूर्णतया यथार्थ थी। मुझे एक पण्डितजीने बताया कि वे विद्यार्थी अवस्थामें एक दिन लछमनझूलाके रास्तेमें एक पेड़के नीचे बैठे पाठ याद कर रहे थे। गर्मीकी ऋतु थी। वे भूखसे व्याकुल थे। अकस्मात् उस चिल-चिलाती धूपमें उन्हें श्रीमहाराजजी नंगे पाँव आते दिखायी दिये। पण्डितजीने उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया। महाराजजीने पूछा, 'विद्यार्थी हो ? भूखे हो क्या ?' पण्डितजीने कहा, 'हाँ !' श्रीमहाराजजी 'अच्छा' कहकर चले गये। थोड़ी ही देर में उनके पीछे एक सेठजी आये। उन्होंने बड़े-बड़े चार लड्डू पण्डितजीको दिये, जिनमें से वे दो भी उस समय नहीं खा सके।

(४)

एक बार मेरी माताजी मेरे बड़े भाई ब्रजमोहनजीके साथ महाराजजीका दर्शन करने गयीं। वे बोलीं, 'मैं इसी झंझटमें पड़ी रहूँगी या इससे मुक्त करोगे ?' उनका अभिप्राय यह था कि इसे ब्रजमोहनका विवाह हो जाय तो अच्छा हो। श्रीमहाराजजीने कहा, अभी दो साल इसका विवाह मत करना।' परन्तु होनहार-वश लड़की-लड़केवालोंके विशेष आग्रहसे विवाह हो गया। उसके एक साल बाद ही भाई साहबकी मृत्यु हो गयी। इससे विश्वास होता है कि उन्हें भविष्यका ज्ञान भी हो जाता था।

श्रीखुशालचन्दजी तुली (पंजाबी बाबू),

शाहदरा-दिल्ली

शाहदरेके कुछ भक्तोंसे श्रीमहाराजजीके गुणोंकी चर्चा सुन कर मुझे उनके दर्शनोंको उत्सुकता हुई। उसके कुछ काल पश्चात् हाथरसमें मुझे उनके पुनीत दर्शन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। उसी समय श्रद्धासे मेरा हृदय उनकी ओर आकर्षित हो गया और मैंने उनके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया। उस समय श्रीमहाराजजीने मुझे पहला उपदेश यह दिया कि प्रभुके नामका इतना स्मरण करो कि स्वयं प्रभु बंद करनेको कहें तो भी तुम उसे छोड़ न सको। मैं दो-तीन दिन उनके पास ठहरा और फिर टिकट लेकर शाहदरे चला आया।

शाहदरा आनेपर उसी रात मुझे पुनः हाथरस जानेकी प्रेरणा हुई। अतः मैं दूसरी बार वहाँ गया। इस बार उनकी सन्निधिमें मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। आपने मुझे रागद्वेष छोड़कर निरन्तर साधननिष्ठ रहनेका उपदेश किया। मैंने जब कोई परमार्थसम्बन्धी प्रश्न किया तो बोले, 'जो सच्चा शिष्य होता है वह मुझसे कुछ नहीं पूछता। गुरु तो आत्मा हैं, शरीर नहीं। वे शिष्यको वाणीद्वारा बोलकर उपदेश नहीं करते। वे तो उसके हृदयमें प्रवेश करके मूक भाषामें उपदेश कर देते हैं। यदि तुम्हारी किसीके प्रति सच्ची श्रद्धा है तो कभी-कभी उसके

दर्शन कर आया करो, उनसे वाणीद्वारा कुछ भी पूछो मत। कुछ काल पश्चात् तुम्हारा स्वयं ही समाधान हो जायगा।'

श्रीमहाराजजीको मैं गुरुरूपसे वरण कर चुका था और उन्हें सर्वज्ञ समझता था। आगे चलकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे न कहनेपर भी उन्हें मेरी प्रत्येक बातका पता रहता है। मुझे उनमें अनेक प्रकारकी सिद्धियोंका भी अनुभव हुआ। मैं जब कभी दर्शन करने जाता तो मुझे यह नहीं बतलाना पड़ता था कि कितने दिनकी छुट्टी लेकर आया हूँ। मेरे अवकाशके अनुसार वे स्वयं ही ठीक समयपर विदाईका टिकट दे दिया करते थे। एक बार आप कर्णवासमें विराजमान थे। हम दो आदमियोंको आपने जाने के लिये जब टिकट दिया तो इतना समय नहीं रहा था कि हम पैदल राजघाट स्टेशनपर पहुँचकर गाड़ी पकड़ सकें। परन्तु हमें विश्वास था कि आपने टिकट दिया है तो गाड़ी अवश्य मिलेगी। ऐसा ही हुआ भी उस दिन गाड़ी लेट थी। हमारे पहुँच जानेपर वह स्टेशनपर आयी।

अब भी मुझे तो उन्हींका सहारा है और वे पूर्ववत् अब भी कृपा करते रहते हैं।

श्रीगुरुदयालजी वैश्य, फरीदाबाद

पूज्य श्रीमहाराजजीके गुणानुवाद यह तुच्छ संसारी जीव क्या लिख सकता है ? वे तो साक्षात् प्रभके स्वरूप ही थे। उनके गुणोंको स्मरण करते समय तो मनमें यही भाव आता है कि 'होहिं कोटि शत शारद शेषा। गनि न सकहिं प्रभु गुनगन लेखा। तथापि अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये, जिस प्रकार श्री-महाराजजीने मुझपर अहैतुकी कृपा की, सो लिखता हूँ।

(१)

श्रीमहाराजजी करुणाके समुद्र हैं। उन्है जो करुणासे पुका-रता है उसके लिये तो वे आज भी दूर नहीं हैं। पुरानी बात है, मैं शाहदरामें नौकरी करता था। उस समय श्रीमहाराजजी रामघाटमें थे। गुरुपूर्णिमाके चार दिन पूर्व मेरा बड़ा लड़का बीमार पड़ गया। धीरे-धीरे उसकी बीमारी इतनी बढ़ी कि आषाढ़ शु० १३ को उसे घोर सन्निपात हो गया। उसकी नाड़ी भी अत्यन्त मन्द पड़ गयी। वैद्योंने जवाब दे दिया। उस समयमेरे हृदयमें ऐसी प्रेरणा हुई कि यदि मैं गुरुपूर्णिमापर रामघाट नहीं पहुँचता हूँ तो लड़का बच नहीं सकता। अतः मैं घरवालोंको रोते हुए और लड़के को इसी स्थितिमें छोड़कर श्रीमहाराजजी-के दर्शनार्थं रामघाटको चल दिया। राजघाट स्टेशनपर उतरते ही वर्षा आरम्भ हो गयी और मैं नौ मील वर्षामें ही चलकर रामघाट पहुँचा।

रात्रिके दस बज रहे थे। घोर वर्षाके कारण मार्ग भी दीख

नहीं रहा था। मैं श्रीसरकारकी कुटीके समीप पहुँचा ही था कि आप खजानची साहबसे कह रहे थे, 'गुरुदयाल अभी नहीं आया। क्या कारण है ? उसके यहाँ या तो कोई मर गया है या बीमार है। नहीं तो वह कदापि नहीं रुक सकता था।' उसी समय मैंने पहुँचकर श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। तुरन्त आज्ञा हुई, 'जा कीर्तनमें।' मैं कीर्तनमें जाकर बैठ गया। दो घंटे तक तो मुझे पता ही नहीं रहा कि मैं कहाँ हूँ। लड़केकी बिलकुल याद नहीं आयी। अगले दिन पं० किशोरी लाल जी ने लड़केकी बीमारी-का जिक्र किया तो आप प्रसन्नचित्तसे बोले, 'क्या चिन्ता करता है ?' इस वाक्यको सुनकर मैं निश्चिन्त हो गया। दो दिन और ठहरकर जब मैं शाहदरा लौटा तो क्या देखता हूँ कि लड़का बाजारमें तेलकी पकौड़ियाँ खा रहा है। यह सब श्रीसरकारकी ही कृपा थी।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी दिल्ली पधारे थे। प्रायः एक महीना वहाँ निवास करके एक दिन रात्रिमें उठकर चले गये। मैं बहुत व्याकुल हुआ। उन दिनों मैं खूपुरामें रहता था। एक दिन मेरे एकप्रेमी आये और बोले, 'मेरे स्थान (छायसा) में काशीनिवासी पं० देवकीनन्दनजी ठहरे हुए हैं। उन्होंने कहा है कि एक कुटी और बनवाओ। हमारे यहाँ एक सिद्ध महात्मा आनेवाले हैं। कल तुम भी वहाँ आ जाना।' दूसरे दिन प्रातः काल ही मैं वहाँ पहुँचा। जंगलमें एकान्त स्थान था। यमुनाजीके किनारे दो कुटियाएँ बनी हुई थीं। कुछ देर बाद देखता हूँ कि दण्डिस्वामी सिद्धेश्वराश्रमजीके साथ श्रीसरकार चले आ रहे हैं। मेरा सब खेद दूर हो गया।

पण्डित देवकीनन्दनजी स्वयंपाकी थे। वे श्रीमहाराजजीको भी अपने हाथसे प्रसाद बनाकर भिक्षा कराते थे। उन्होंने

वहीं आपको श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाया। वे नित्यप्रति प्रातः काल तीन बजे उठ जाते और चार बजेतक स्नानकर फिर सात बजेतक अपना नित्यकृत्य करते। उसके पश्चात् आठ बजे कथा प्रारम्भ करते और मध्याह्नोत्तर दो बजेतक पूरे छः घंटे तक एक स्वरसे कथा सुनाते रहते। उसके पश्चात् प्रसाद सिद्ध करके श्रीमहाराजजीको भिक्षा करानेके अनन्तर स्वयं भोजन करते। इस चर्यासे श्रीमहाराजजीने वहाँ आठ दिन निवास किया। तब तक मैं भी वहाँ रहकर उनके दर्शन और कथाश्रवणसे अपनेको कृतार्थ करता रहा।

(३)

श्रीमहाराजजीने जिस दिन लीलासंवरण किया था उसके दूसरे दिन मुझे समाचार मिला। दुःखसे मेरे प्राण व्याकुल हो उठे और जीवन भाररूप प्रतीत होने लगा। प्रातःकाल चार बजेके लगभग, मुझे नींद तो नहीं कुछ तन्द्रा-सी थी देखता हूँ कि एक बड़ा सुन्दर पर्वत है। उसके ऊपर एक सुन्दर चट्टानपर श्रीसरकार विराजे हुए हैं। पास ही एक सुन्दर गौ बँधी हुई है। आस-पास झरनोंका कल-कल निनाद सुनायी पड़ रहा है। सरकार प्रसन्नवदनसे कह रहे हैं– "बेटा! क्यों घबड़ाता है? मैं कहीं दूर नहीं हूँ।"

उनका यह आश्वासन तो अवश्य मिला। परन्तु यह अभागा उनके निकटतक पहुँच नहीं सका। उस दिनसे मुझे ऐसा अनुभव होता है कि सरकार सर्वत्र हैं; हमारे दोषोंके कारण ही नेत्रोंसे ओझल हो रहे हैं। हृदयकी सच्ची पुकार हो तो वे दूर नहीं, सर्वदा समीप ही हैं।

—:*:—

पं० श्रीरविदत्तजी शास्त्री वैद्य, जलेसर

मेरे एक सम्बन्धी पं० रामनारायणजी उपाध्याय पूज्यपाद श्रीउड़िया बाबाजीकी सिद्धि और चमत्कार आदिकी बहुत चर्चा किया करते थे। उनकी बातें सुनकर ही मेरे हृदयमें श्रीमहाराज जीके दर्शनोंकी लालसा हुई। जब मैं पहली बार श्रीचरणोंमें पहुँचा मेरा हृदय धड़क रहा था। तथापि उसे कुछ समाहित करके मैंने प्रश्न किया—'महाराजजी ! गीतामें भगवान् अर्जुन-से कहते हैं—'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।' इस प्रकार जब सर्वान्तर्यामी भगवान् ही समस्त प्राणियोंको परवशकी तरह प्रेरित करते हैं तब यदि उनसे प्रेरित हुआ कोई प्राणी पापाचरण करता है तो इसमें उसका क्या अपराध है। फिर वह क्यों उस पापकर्मका फल भोगे ?'

श्रीमहाराजजीने इसका जो उत्तर दिया उसने मुझे निरुत्तर कर दिया। इस प्रथम मिलनमें मुझे यह अनुभव हुआ कि ये महात्मा किसी सम्प्रदाय या वादविशेषके पक्षपाती नहीं हैं। इनके विचार बड़े उदार हैं और ये गरीबोंको विशेष वात्सल्य भावसे देखते हैं।

इसके पश्चात् एक बार आप स्वामी लंबे नारायणजीकी जन्मभूमि चैरई (एटा) में पधारे थे। उस समय श्रीसिंहपाल-सिंहजीकी प्रेरणासे मैंने आपके सामने अपनी परिस्थिति रखते हुए यह प्रार्थना की थी—'महाराजजी ! विद्यार्थी अवस्थासे ही

मेरा मन चञ्चल और जीवन आर्थिक संकटमे पूर्ण रहा है। आर्थिक संकटकी निवृत्तिके लिये मुझे एक पण्डितजीने गायत्री जप और रुद्राष्टाध्यायीका पाठ करनेके लिये कहा था। इसके पश्चात् एक महानुभावने गायत्रीजपके साथ विष्णुसहस्रनामके पाठकी महिमा बतायी। अतः रुद्री छूटकर विष्णुसहस्रनामका पाठ होने लगा। मेरे शरीरमें बाल्यावस्थासे ही रक्तविकार था। अतः वृन्दावनके एक शाकद्वीपीय पण्डितने आदित्यहृदय-स्तोत्र और सूर्योपनिषद्का पाठ एवं रविवारका व्रत करनेका अनुरोध किया। वह भी करता रहा। इसके पश्चात् किन्हीं महानुभावके कहनेसे इन सबको छोड़कर वाल्मीकीय रामायणान्तर्गत आदित्यहृदयस्तोत्र, श्रीसूक्त, लक्ष्मीसूक्त और कवच-कीलकादिके सहित दुर्गासप्तशतीका पाठ आरम्भ किया। यही क्रम इस समय चल रहा है। स्नान करते हुए पुरुष-सूक्तका पाठ भी करता हूँ। परन्तु यह सब करते हुए भी चित्त शान्त नहीं है। क्या करना चाहिये ?'

मेरी यह सब कथा सुनकर आपने एक ही आदेश दिया—'सद्गुरुकी शरणमें जाओ, बार-बार साधन बदलते रहनेसे कोई लाभ नहीं होगा।'

"सद्गुरु कैसे प्राप्त हों ?" मैंने पुनः निवेदन किया।

"प्रयत्न करनेपर मिल जायँगे" यह सीधा सा उत्तर दे दिया।

'मैं तो आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे सच्चा मार्ग बताइये। मैं धन नहीं चाहता (यह मैंने कपटपूर्ण वैराग्य प्रदर्शित किया था।) मैं तो चित्तशान्तिका मार्ग जानना चाहता हूँ।" यह मैंने निवेदन किया।

तब आप बोले—'भाई ! लोकमें सुख तो दो ही प्रकारके व्यक्तियोंको मिलता है— या तो जो अत्यन्त मूढ़ हैं और या जो

बुद्धिसे अतीत आत्मतत्त्वको प्राप्त कर चुके हैं—

'यश्च मूढ़तमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।
द्वाविमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥'

पण्डितोंको ज्ञान हो ही नहीं सकता। इनका किसीमें श्रद्धा-विश्वास होता ही नहीं। तुम छः मासतक सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये नित्यप्रति दस माला गायत्रीजप करो। इससे तुम्हें सद्गुरुकी प्राप्ति हो जायगी। वे तुम्हें स्वप्नमें भी उपदेश कर सकते हैं।"

मैं इस आज्ञाको शिरोधार्य करके कमरेसे बाहर निकल आया। मेरे पीछे श्रीसिंहपालजी भी बाहर आ गये और बोले, 'आपने विशेष हठ क्यों नहीं किया ?"

मैं बोला 'आज्ञा गुरुणामविचारणीया।' जो आज्ञा हो गयी उसका पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है।

सिंहजी मुस्कराकर रह गये। सायंकालमें उन्होंने फिर बल-पूर्वक मुझे श्रीमहाराजजीके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। मेरे हृदयकी धड़कन बढ़ रही थी और मुँहसे शब्द नहीं निकल रहे थे। सिंहजीने मेरे अस्फुट वाक्योंको पूरा किया ही था कि बड़े क्रोधका अभिनय करते हुए बोले, 'हमने जो आज्ञा दे दी वह दे दी।' मैं तो भयसे काँपता हुआ खिसक आया। सिंहजीपर कितनी फटकारें पड़ीं मुझे मालूम नहीं।

किन्तु मुझे सिंहजीकी प्रकृतिपर आश्चर्य हो रहा था। वे इतनी फटकारें सुनकर भी रात्रिमें मुझे तीसरी बार लेकर पहुँच गये। इस बार मेरा शरीर भी भयसे काँप रहा था। मैं सोचता था कि श्रीमहाराजजीका मेरे विषयमें न जाने कैसा विचार बन जायगा। मैं उनकी प्रथम आज्ञाका ही उल्लङ्घन कर रहा हूँ। इसमे तो वे मुझे बड़ा उद्दण्ड समझेंगे। किन्तु आश्चर्य ! महदाश्चर्य !! इस बार क्रोधका स्थान वात्सल्यने ले लिया। मुझे

'बेटा !' सम्बोधन करते हुए प्रेमसे, बोले 'तुम किसको इष्ट मानते हो ? इष्ट एक ही होना चाहिये ।' मैंने धीरेसे 'राधाकृष्ण' कह दिया । बस, आपने मुझे मन्त्र और पाठ बतला दिया । मैं सोने का आदेश पाकर अपने आसनपर चला आया और पृथ्वीपर लेटकर निद्रादेवीका आवाहन करने लगा । किन्तु वह आ ही नहीं रही थी । मुझे साधनपथ पानेका तो हर्ष था, परन्तु साथ ही हृदयके कोनेमें एक वासना करवट बदल रही थी—'बाबाको लोग त्रिकालज्ञ कहते हैं; पर मुझे तो इष्ट पूछकर मार्ग बतलाया । अब मुझे बिना पूछे ही दुर्गाका प्रयोग बता दें तो मैं कुछ समझूँ ' मेरे दोनों पैरोंमें श्वेत चिह्न बढ़ रहे थे । इस रोगकी निवृत्तिपूर्वक कुछ विशेष धनप्राप्तिका प्रयोग बतला देते तो अच्छा होता—ऐसी मेरी आन्तरिक इच्छा थी । यही चिन्तन करते हुए मैं सो गया ।

प्रातः शौचक्रियासे निवृत्त होनेपर पता लगाया तो मालूम हुआ कि महाराजजी स्नान कर रहे हैं । मैंने जाकर दूरसे ही प्रणाम किया । मेरी प्रसन्नताका पारावार नहीं था कि मेरे बिना पूछे ही आपने दुर्गाका प्रयोग बता दिया । विशेष विधि यह बतायी कि जब एक बार आरम्भ करो तो लगातार सत्ताईस दिनतक नित्य पूरा पाठ करो । इस प्रकार चार बारमें एक सौ आठ पाठ हो जायँगे । मैं पहले अपनी निष्कामता व्यक्त कर चुका था । इसलिये अब सकाम भाव प्रकट करनेमें संकोच होता था । परन्तु करुणा-वरुणालय श्रीमहाराजजी ने मेरा आन्तरिक भाव देखकर मुझे सकाम उपासना ही बता दी और यह भी समझा दिया कि परिस्थिति विशेषमें सकाम उपासना या कर्म करना भी बुरा नहीं है । यह घटना श्रीब्रह्मानन्द आश्रम अकराबादकी है ।

इससे आगे तो मेरा जीवन ही बदल गया । प्रेममें नेम

नहीं—इसका रहस्य उनकी कृपासे समझमें आ गया । मैं जब श्रीवृन्दावन जाता तो कुछ शंकाएँ एकत्रित करके ले जाता था। परन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य होता कि ज्यों ही मैं बाबाके चरणोंमें प्रणाम करके बैठता स्वयं ही ऐसा प्रसंग छिड़ जाता कि बिना पूछे ही मेरी सब शंकाओंका समाधान हो जाता। इस सम्पूर्ण सौभाग्यका श्रेय स्वामी श्रीलम्बेनारायणजी और विशेषतः श्रीसिंहपालसिंहजीको है। आज भी मेरे हृदयको कुछ शंकाएँ उद्वेलित कर रही हैं। किन्तु उनका अपने आप निवारण करनेवाले बाबा कहाँ हैं ?
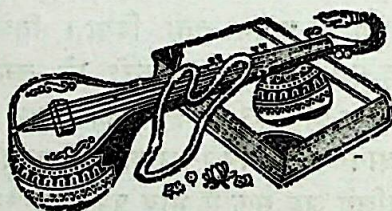
श्रीरामस्वरूप शर्मा 'लट्ठबाज' चिडरई (एटा)

मेरी तथा राजपुरनिवासी कुँवर प्रवलप्रतापसिंहजीकी बहुत दिनोंसे मित्रता है। हम दोनों हो राज्य अवागढ़में एका-उन्टैण्टके पदपर नियुक्त थे तथा दोनों एक ही पथके पथिक हैं। एक दिन कुँवर साहबने मुझसे कहा, 'लो भैया! आज श्रीमहा-राजजी एटासे उठ रहे हैं और अवागढ़ होते हुए गाँगनी पधा-रेंगे।' बस, इतना सुनना था कि चित्त दर्शनोंके लिये छटपटाने लगा, क्यों कि कानोंने श्रीमहाराजजीकी ख्याति पहले ही सुन रखी थी।

दफ्तरका समय समाप्त होनेपर हम दोनों मित्र छिद्दूसिंहकी धर्मशालापर जो अवागढ़के समीप ही है, श्रीमहाराजजीके चरणों में अपना हृदय समर्पित करनेके लिये पहुँचे। वहाँ देखा कि छिद्दूसिंहके विशेष आग्रहसे आप कुछ दुग्धपान करनेके लिये अपने मुखारबिन्दकी ओर कटोरा ले जा रहे हैं, मैंने साष्टांग प्रणाम करनेके पश्चात् अपने हृदयेशको पुष्पमाला अर्पित की। इधर आपने उस दुग्धपानको जहाँका तहाँ रोककर उसीमेंसे हम दोनोंको थोड़ा-थोड़ा दुग्धप्रसाद दिया। प्रसाद पाकर सायंकालीन वेलामें भक्तगणके सहित आप अवागढ़की ओर चल पड़े। रात्रिको चन्नीवाली बगियामें सबने विश्राम किया। प्रायः १० बजे प्राइ-वेट सैक्रेटरी ठाकुर भगवानसिंहके सहित अवागढ़नरेश राजा सूर्यपालसिंहजी दर्शनोंके लिये पधारे। उन्होंने दण्डवत् प्रणामके पश्चात् किलेमें पधारनेके लिये बहुत आग्रह किया। तब आपने गाँगनीसे गढ़िया लौटते समय दर्शन देनेका वचन दिया।

प्रभात होते ही भगवान् अपने भक्तोंके सहित गाँगनीकी ओर चल दिये। कुछ दूर चलनेपर मेरे रामजीने प्रार्थनाकी कि मार्गमें श्रीचरणोंकी पवित्र रजके द्वारा दासकी अपावन कुटियाको

पवित्र करनेकी कृपा करें। धन्य है ! जिस प्रकार गजकी टेर सुनकर भगवान् वैकुण्ठनाथ वैकुण्ठसे पैदल ही चल दिये थे उसी प्रकार मुझ जैसे नराधमकी प्रार्थना स्वीकार कर आप चिडरई-जैसे अपावन गाँवकी ओर चल दिये। आपके पहुँचते ही वह अपावन कुटी आपकी पावन चरणरज पाकर पवित्र और सर्व-शोभासम्पन्न हो गयी। इस दासने सपरिवार प्रेमपूर्वक श्रीमहा-राजजीका पूजन किया। फिर जलपानके पश्चात् अपने भक्त-मण्डल सहित भगवान् गाँगनी की ओर पधारे।

गाँगनी में कुछ दिन ठहरकर आप गढ़िया गये। वहाँ श्रीमद्भागवतका सप्ताह हुआ। इस समय अवागढ़-नरेशने अपने एक दान विभागके सुपरवाइजरको आपकी सेवामें नियुक्त कर दिया था उसका काम था आपको गढ़ियासे अवागढ़ लाना। आपने भीमसेनी एकादशीको अवागढ़के लिये प्रस्थान किया। मार्गमें मैंने अपनी कुटिया पवित्र करनेकी प्रार्थना की। दयालु प्रभुने अनुमति दे दी और मेरी तुच्छ अभ्यर्थना स्वीकार कर अवागढ़को पधारे। इस समय एक विचित्र घटना हुई। मैं इन दिनोंमें कार्यालयसे अवकाश लिये बिना ही श्रीमहाराजजीकी सेवामें रहा था। किन्तु जब दूसरे दिन वहाँ पहुँचा तो रजिस्टर-में मैंने अपने हस्ताक्षर देखे। वे हस्ताक्षर किस प्रकार हुए इस-का भेद मैं अभीतक नहीं समझ सका हूँ। मैं तो इसे श्रीभगवान् की ही लीला समझता हूँ। उसी दिनसे भगवान्‌के प्रति मेरे हृदयमें श्रद्धा-विश्वासका अंकुर प्रकट हुआ, जो सदाके लिये स्थिर हो गया। मैं तो तबसे धन्य हो गया। यह पञ्चतत्त्व-निर्मित तुच्छ शरीर कितना भाग्यशाली है।

अवागढ़ पहुँचनेपर राजा साहबने श्रीमहाराजका स्वागत जैसी भव्यता, शिष्टता और धूमधामसे किया वह सर्वथा अवर्ण-नीय है। उस समय मानो स्वर्गके देवोचित पथपर श्रद्धा एवं

नम्रताके पुष्पोंके ढेर लगे हुए थे। वहाँ ऐश्वर्य और वैराग्यका बड़ा अद्भुत मिलन था। भक्तगण मोदकोंका प्रेमपूर्ण प्रसाद पाकर मानो स्वयं भी मोदक ही वन गये थे। मोदकप्रिय श्रीगणपति सब प्रकारसे विघ्नोंको विघटित करते हुए मानो सभी कृत्योंको मंगलमय कर रहे थे। मध्याह्नोत्तर कालमें तरह-तरहकी वाद्य-ध्वनियोंके साथ भगवन्नामकीर्तन एवं नृत्य-गायन आदिका कार्य-क्रम रहता था तथा रात्रिमें बारह बजेतक श्रीकृष्णलीलाओंका दिग्दर्शन एवं कथा-प्रवचन आदि होते थे। वे दिन बड़े ही आनन्दसे व्यतीत हुए। मैं तो मानो सभी सांसारिक चिन्ताओंसे छुटकारा पा गया था और उस सत्सङ्गके आनन्दमें मस्त हो अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता था।

इस प्रकार श्रीमहाराजजीके सत्सङ्गमें कुछ दिन बड़े आनन्द से व्यतीत हुए। एक दिन अचानक आपने सबको निराशाके सागरमें निमज्जित कर पौंडरीको प्रस्थान कर दिया 'बहता पानी रमता जोगी, इनको कौन सके बिरमाय' इस उक्तिके अनुसार यह स्वाभाविक ही था। श्रीमहाराजजीने हमारे हृदयक्षेत्रमें अंकुरित आनन्दको अपने सत्संग सलिलसे सींच कर इस योग्य बना दिया था कि हम अपनेमें ही आनन्दकी खोजका प्रयास कर सकें। अव यह भी तो सम्भव नहीं था कि वे सर्वदा हमारे पास ही बने रहते, क्यों कि उन्हें तो अभी न जाने कितने लोगोंके हृदयोंमें आनन्दांकुरका प्रादुर्भाव करना था। अतः सायंकालीन बेलामें, जब पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर और पशु अपने गोष्ठोंकी ओर लौट रहे थे आपने प्रस्थान किया। इस समय आपके साथ चलने-वाले भक्तगण प्रसन्न मुद्रामें और ग्रामवासी विषण्णवदन दिखायी दे रहे थे। 'एक मण्डल चल रहा था और एक जड़की भाँति स्तब्ध हुआ निहार रहा था। कुछ दिन पौंडरी और हसनगढ़में ठहरकर आप गाँगनीमें कुँवर सिंहपालजीको कृतार्थ करनेके लिये पधारे।

गाँगनी पधारनेका समाचार पाकर दास श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ। इन दिनों मैंने ऐसा नियम बना लिया था कि सायंकालमें अवागढ़से चिडरई होता हुआ गाँगनी पहुँचता और रात्रिमें श्रीचरणोंकी सन्निधिमें रहकर सवेरे छः कोस चलकर चिडरई होता हुआ अवागढ़ जाता। वहाँ १० बजे से ४ बजेतक दफ्तरमें काम करता। जब आपने गाँगनीसे प्रस्थान करनेका निश्चय किया तो रात्रिमें ८-९ बजेके लगभग मैंने मार्गमें अपनी कुटियापर पधारनेके लिये प्रार्थना की। आप बोले, 'भैया ! मैं अब राजाके यहाँ तो जाऊँगा नहीं और यदि तेरे घर जाऊँगा तो वह बुरा मानेगा। इससे वह मेरा तो कुछ बिगाड़ नहीं सकता, परन्तु तुझे बरखास्त कर देगा। इसलिये इस समय मैं तेरे यहाँ नहीं जाऊँगा।' किन्तु मेरे रामजीसे रुका नहीं गया। अश्रुपात होने लगा। चरणसेवा तो कर ही रहा था। हृदयके वेग को रोकनेका वहुत प्रयत्न किया, किन्तु सव निष्फल हुआ। जिस प्रकार एक अवोध वालकको कोई ठेस पहुंचनेपर अपने पिताकी गोदमें सिर रखकर बिलखने लगता है उसी प्रकार मैं खूब जोरसे रो उठा और मेरे मुँहसे निकला कि जबतक श्रीमहाराज चिडरई नहीं पधारेंगे मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। यह बात सुनकर श्रीमहाराजजीने कुँवर सिंहपालसिंहजीकी ओर ताका। उन्होंने मेरे ही पक्ष का समर्थन किया। बस, फिर क्या था, आज्ञा मिल गयी।

रात्रि अधिक वीत चुकी थी। अतः सभीने निद्रादेवीकी गोदमें शरण ली। मेरे रामजीने प्रातःकाल ४ वजे ही उठकर श्रीगुरुदेवके चरणस्पर्श कर चिडरईकी राह पकड़ी। वहाँ पहुँचकर जैसा भी हो सका प्रवन्ध किया। श्रीमहाराजजीने अपने भक्तोंसहित पधारकर मेरी कुटियाको स्वर्गधाम बना दिया। जिस समय श्रीगीताजी, रामायणजी और श्रीभगवन्नामका कीर्तन हुआ उस समय इस शरीरकी जो दशा थी वह लेखनीकी शक्तिसे परे है।

इस बार यह विचित्र घटना हुई कि मेरे रामजी के यहाँ तो केवल २५-३० व्यक्तियोंके भोजनकी व्यवस्था थी, परन्तु न जाने कितने लोगोंने प्रसाद पाया। परन्तु इसपर भी इतना प्रसाद बचा कि आपके चिडरईसे पधारनेके पश्चात् कई दिनोंतक घरके लोग पाते रहे। श्रीमहाराजजीने घरके प्रत्येक कोठेमें घुस-घुसकर देखा और पूछा कि इसमें क्या है? मैं मुक्तकण्ठसे कह सकता हूँ कि उस दिनसे आजतक मेरे रामजी को किसी प्रकारका कष्ट नहीं है। रात्रिभर जो आनन्द रहा उमे यह शरीर रहते हुए मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। दूसरे दिन मेरी पूजा ग्रहणकर आपने हसनगढ़को प्रस्थान किया। चलते समय बोले, 'अब गुरुपूर्णिमापर मत आना, तेरा खर्चा बहुत पड़ गया है।" परन्तु मुझसे रुका नहीं गया। कर्णवास में दर्शन करने पहुँच ही गया। आपके कथानानुसार राजा साहबने मुझे बरखास्त कर ही दिया। जब कर्णवासमें पहुँचा तो बोले, 'लट्ठबाज'[1] आ गया। मैंने पहले ही कहा था राजा तुझे बरखास्त कर देगा। देख, वही हुआ, तूने माना नहीं। खैर, कोई चिन्ता मत कर।"

गुरुपूर्णिमाके दूसरे ही दिन मुझे टिकट मिल गया और साधारण प्रसाद देनेके पश्चात् दूसरी बार प्रसाद देते हुए आपने कहा, 'ले, यह बरखास्तगीका प्रसाद है।' जब मैं आज्ञा लेकर चलने लगा तो आप प्रायः सौ पगतक मुझे अनेक प्रकारसे सान्त्वना और उपदेश देते हुए मेरे साथ चले। ऐसी थी आपकी करुणा। आज इस असार संसारमें कोई अपना दिखायी नहीं देता, जिसे अपना दुःख सुनाऊँ और किसी उलझी हुई गुत्थीको सुलझवाऊँ। बस उन्हींसे प्रार्थना है, वे ही सुनेंगे। इस अवस्था में नहीं सुनेंगे तो दूसरीमें सुनेंगे, परन्तु सुनेंगे अवश्य।

---

१. यह उपाधि आपने मुझे गाँगनीमें दी थी।

श्रीभगवतीप्रसादजी धोंचक, अलीगढ़

मेरे ऊपर जितनी कृपा श्रीमहाराजजी की थी उसका मैं किसी प्रकार वदला नहीं दे सका। मैं जब भी श्रीमहाराजजी की सेवा में पहुँचता तभी उनकी कृपा का मेह मेरे ऊपर वरसता था। मैं तो उनकी कुछ भी सेवा नहीं कर पाता था। उनके विषय में आपको बहुत-सा मसाला छापने के लिये मिलेगा। पर मेरे विचारसे जिस प्रकार उन्होंने मेरे जीवन की गति बदल दी वह बड़ी असाधारण बात थी।

उन दिनों मेरे पिता जी हाथरस में पोस्ट मास्टर थे। एक दिन सवेरे ही बा० चुन्नीलाल जी वकील मेरे पास आये और वोले, "अपने पिताजीमे मिलने चल रहे हो।" मैंने स्वीकृति दे दी। तब हम दोनों हाथरस आये। हाथरस शहर को जाने के रास्तेपर पहुँच कर वकील साहबने मोटर रुकवाई और मुझसे कहा कि मैं श्रीउड़ियाबाबाजी से मिलने जा रहा हूँ तुम अपने पिता जी से मिल लो। शाम को वापिस चलेंगे।

मैं उस समय देश-विदेश की यात्रा कर रहा था सत्संगादि में मेरी जरा भी रुचि नहीं थी। विदेशों में घूम आने के कारण मेरी वेष-भूषा भी विदेशी-सी हो गई थी। पर वाह रे आकर्षण! मेरे मुँह से तुरन्त निकला, "मैं भी आपके साथ बावा के दर्शन करने चलूँगा।" स्थान जहाँ बाबा ठहरे हुए थे

को संध्यावन्दन अवश्य करना चाहिये। तुम संध्यावन्दन नहीं करते, अब अवश्य किया करो।" मेरे 'हाँ' कर लेने पर आपने कहा, 'रामायण और गीता का पाठ भी नित्य करना।" बस, बात समाप्त हुई। फिर मैं तो उनके पैर दबाता रहा और वे थोड़ी देर के लिये लेट गये। तब से मेरा जीवन बदल गया। अब भी बाबा की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

इस घटना को मैं किसी के सामने कहता नहीं था। पर आज आपकी आज्ञा हुई तो लिख दिया। महाराजजी कोई असाधारण सिद्ध पुरुष थे। उनकी विद्वत्ता का बड़ों-बड़ों ने लोहा माना।

श्रीविजयपालसिंहजी, मथुरा

पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके दर्शनोंसे पूर्व मुझे उनका चिन्तन अन्य भक्तजनोंके द्वारा उनकी महिमा सुनकर हुआ करता था। उनकी सेवामें उपस्थित होनेके लिये मुझे प्रधानतया राजपुर-निवासी श्रीप्रवलप्रतापसिंहजीने उत्साहित किया तथा उनसे मिलनेके पहले भी इन्हींके सत्सङ्गद्वारा श्रीमहाराजजीके प्रति मेरेमें श्रद्धाके भाव अंकुरित हुए। इनके सिवा कुँवर सिंहपाल-सिंहजीने भी, जो श्रीमहाराज के प्रमुख कृपापात्रोंमें हैं, मुझे श्रीचरणों तक पहुँचनेमें बहुत सहायता की। मैं जिस देश, जिस काल और जिन परिस्थितियोंमें श्रीमहाराजजीकी सेवामें पहुँचा था वह मेरे दस सालके त्यागपूर्ण एवं कठिन जोवनकी एक घड़ी थी। अतः प्रथम मिलनमें ही किसी विशेषताका अनुभव हुआ हो —ऐसा तो मुझे स्मरण नहीं है, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि जैसे-तैसे मैं उनके अधिक समीप होता गया वैसे-वैसे उत्तरोत्तर मुझे अधिक आत्मीयताका अनुभव हुआ। महाराजजीकी सिद्धि-योंके विषयमें मैंने अन्य प्रेमियोंसे तो अवश्य सुना है परन्तु उनके दर्शन करते हुए मेरा तो यह विचार लुप्त ही रहा है, मैं तो एक द्रष्टाकी तरह केवल उनके दर्शनोंसे ही सन्तुष्ट रहा हूँ। सत्संग-का अवसर तो खूब ही मिला और तबसे मेरी ऐसी धारणा बन गयी है कि लौकिक व्यवहारमें रहनेसे शरीर और मस्तिष्कमें जो शिथिलता आ जाती है वह एक आध घण्टा सत्सङ्ग होनेसे निवृत्त हो जाती है, और आश्रममें (श्रीकृष्णाश्रममें) तो यदि

सालमें एक दिन के लिये भी हो आवें तो साल भरकी थकान दूर हो जाती है। यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है।

मुझे जबसे याद है मेरा सहज अनुराग श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें रहा है। श्रीमहाराजजीने भी शरणागत होनेपर मुझे श्रीरामचरितमानसका पाठ करनेका ही आदेश दिया था। श्रीमहाराजजीके उपदेशोंसे मुझमें किन्हीं सद्गुणोंकी वृद्धि हुई है—यह तो नहीं कह सकता, परन्तु एक बातका अनुभव अवश्य हुआ जान पड़ता है कि यदि हम सबमें विश्वबन्धुत्व (Universal Brotherhood) की भावना जाग्रत् हो जाय तो अवश्य हमारा बहुत लाभ हो सकता है। श्रीमहाराजजीके जिस गुणने मुझे विशेष आकर्षित किया वह था उनका अपनेपर अनुशासन। यह मुझे उनमें पूर्णरूपसे दिखायी दिया। यदि सब मनुष्य ऐसे अनुशासनमें रहने लगें तो संसार जैसा कष्टमय प्रतीत होता है वह न हो।

श्रीमहाराजजीके सत्सङ्गसे मुझे जो विशेष अनुभव हुआ उसकी दो बातें इस समय याद आती हैं—(१) किसी प्रेमीने मुझे यह बताया था कि एक बार बाबाने सब लोगोंको अपना वैयक्तिक जीवन शुद्ध बनानेका आदेश दिया और कहा कि भजन इसके बादकी चीज है। यदि चरित्र शुद्ध न हुआ तो भजन करना ऐसा ही है जैसे किसी रोगीको स्वास्थ्य लाभके लिये वसन्त-मालती और चन्द्रोदय आदि बहुमूल्य ओषधियें तो खिलायी जायँ परन्तु उससे गुड़, तेल मिर्च खटाई आदि का परहेज न कराया जाय। ऐसी अवस्था में उक्त ओषधियां धूलके ही समान होंगी। मुझे तो चरित्रवान् पुरुषोंमें ही विशेष श्रद्धा है। (२) एक बार मेरे सामने ही की बात है श्रीमहाराजजीने कहा था कि साधुको भिक्षा करावे और वस्त्रादिसे भी सेवा करे, परन्तु उसके पास अधिक न रहे। मुझे तो 'साधु' नाममें ही श्रद्धा है

और यदि साधु मिल जाय तो उसकी सेवामें शान्तिका भी अनुभव होता है। मेरा विश्वास है कि साधुके पास न रहनेके कारण ही मुझे उनके प्रति ऐसी श्रद्धा का अनुभव होता है कि जिसके आनन्दका वर्णन नहीं किया जा सकता। मुझे तो मानसकी इस चौपाईमें विश्वास है—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते संत अधिक करि लेखा ॥'

श्रीमहाराजजीके विषयमें एक विशेष बात मुझे यह भी अनुभव हुई है कि उनके स्मरणमात्रसे ध्यान स्थिर करनेमें पूर्ण सहायता मिलती है। मैं तो उन्हें ध्यानका माध्यम मानता रहा हूँ। उनके दर्शनमात्रसे चित्तको शान्ति मिलती थी। उनमें उदारता तो अद्वितीय थी। किसी सेवकसे भारीसे भारी भूल हो जानेपर भी वे उसे क्षमा कर देते थे। ऐसा उनका अनुग्रह था।

श्रीमती ठकुरानीसाहिबा, बमनोई (अलीगढ़)

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी साक्षात् भगवत्स्वरूप ही थे। उनकी महिमाको यथावत् कौन लिख सकता है ? मुझपर उनकी अपार कृपा थी। अतः उनके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम कर अपनेसे सम्बन्धित उनकी कुछ कृपाओंका वर्णन करती हूँ।

(१)

गाँव मानईमें कुछ लोगोंके साथ हमारी फौजदारी हो गयी थी। उसमें पाँच आदमी जानसे मारे गये थे और एक अधमरा हो गया था। वह स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। हम लोग बड़ी ही चिन्तामें थे कि न जाने अब क्या होगा। किन्तु श्रीमहाराजजी-ने पहले ही बता दिया था कि इसमें तुम्हारा विशेष खर्चा नहीं होगा, ठाकुर साहब अपने आदमियोंके सहित छूट जायँगे और विरोधियोंको सजा होगी। श्रीमहाराजजीकी यह भविष्यवाणी अक्षरशः ठीक हुई। छः महीने बाद मुकदमा छूट गया और विपक्षके छः आदमियोंको चार-चार सालकी सजा हुई।

(२)

उपर्युक्त घटनाके बाद एक बार श्रीमहाराजजीने मुझे और ठाकुर साहबको बुलाकर कहा कि तुम्हारे कुटुम्बियोंने तुम्हें मारनेके लिये एक आदमी बुलाया है। तुम जप करो, नहीं तो तुम्हारा या तुम्हारे लड़केका अनिष्ट होगा। इसके ठीक पन्द्रह दिन पश्चात् वह हत्यारा आया और आते ही पकड़ लिया गया।

उसके पास एक बहुत पैनी छुरी निकली। थानेदार उसे पकड़कर ले गया और उसे सजा हो गयी।

(३)

एक बार मुझे बात रोग हो गया। मेरी गरदन इधर-उधर नहीं हिलती थी। दर्द भी बहुत होता था। ऐसी दशामें मैं श्री-महाराजजीके दर्शनोंके लिये कर्णवास गयी। मैंने उनके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। उन्होंने तीन बार अपना अँगूठा मेरी गरदनसे मल दिया। उसी क्षण मेरा दर्द ठीक हो गया और फिर आज तक नहीं हुआ।

(४)

इसके कुछ ही दिनों बाद मेरी बहिनके लड़के टीकमकी आँखें दुखने आ गयीं। वह स्कूलमें पढ़ता था। डाक्टरोंने कह दिया कि अब वह पढ़ने योग्य नहीं रहेगा। उसकी परीक्षाके दिन समीप थे। अपनी बहिनके दुःखसे मैं भी दुःखी हो गयी। मैंने रात्रिमें श्रीमहाराजजीका ध्यान करके बहुत-बहुत प्रार्थना की। मुझे डर था कि यदि लड़केकी आँखें अच्छी न हुईं तो वह कैसे पढ़ेगा और फिर कैसे उसका निर्वाह होगा। प्रातःकालसे ही उसकी आँखें ठीक होने लगीं और वह तीसरे दिनसे पढ़नेके लिये जाने लगा। फिर परीक्षा देकर पास भी हो गया।

(५)

इसी महीनेकी बात है, सूर्यपालका लड़का बहुत बीमार था। तीन दिनसे न तो उसने आँखें खोली थीं और न जल ही मांगा था। उसकी ऐसी हालत देखकर मैं बहुत घबड़ायी। श्री-रामायणजीके उत्तरकाण्डका पाठ किया और श्रीमहाराजजीको याद करके देरतक रोती रही। उसके पश्चात् मुझे आलस्य आ गया और मैं लेट गयी। स्वप्नमें श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए।

वे वैसा ही कटिवस्त्र और चट्टियाँ पहने हुए थे। मैंने एक दम मुँह खोला और उठने लगी तो वे दिखायी नहीं दिये। तत्काल ही वह लड़का उठा और उसने दूध माँगा। उसके पश्चात् दो दिनमें ही वह ठीक हो गया। इससे हम सबको बड़ा हर्ष और आश्चर्य हुआ।

हमें निश्चय है कि अब भी श्रीमहाराजजी विपत्तियोंसे हमारी रक्षा करते हैं और हमारी प्रार्थना सुनते हैं। उनके गुणों-का मैं क्या वर्णन कर सकती हूँ। वे दीनोंका दुःख दूर करनेवाले और पतितोंको पवित्र करनेवाले थे। उनके सिवा हम-जैसोंको कौन अपना सकता था ? जब करोड़ों जन्मोंके पुण्य संचित होते हैं तब जीव भगवान्के सम्मुख होता है। श्रीमहाराजजीने केवल अपने चरणोंके स्पर्शसे ही भगवन्मार्गमें लगा दिया। यह उनकी अहैतुकी कृपा ही थी।
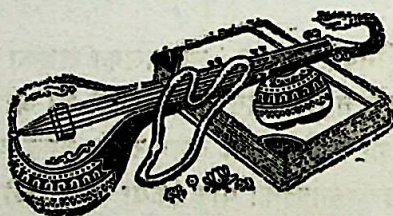
ठकुरानी श्रीवेदकुँवरिजी, इटरनी [अलीगढ़]

(१)

मैं एक अनाथ दीन बाला हूँ। मेरे पिता बहुत बड़े आदमी थे और अलीगढ़ जिलेमें बरा नामक ग्रामके रहने वाले थे। उन दिनों पर्दाकी प्रथा बहुत थी। इसलिये मैं कुछ भी पढ़-लिख न सकी। हम सात बहिन और दो भाई थे। मेरा विवाह जिस घरमें हुआ उनके पास छोटीसी जमींदारी थी। मेरे भाइयों का देहान्त हो जानेके कारण पिताजी बहुत शोकाकुल हुए और यह सोचकर कि मेरे पीछे लड़कीका विवाह कौन करेगा उन्होंने मेरा विवाह कर दिया। विवाहके कुछ काल पश्चात् ही मैं विधवा हो गयी। जो कुछ जमींदारी थी उसे कुटुम्बियोंने दबा लिया। मेरे माता-पिता और भाई पहले ही विदा हो चुके थे। मेरी गोदमें एक पाँच महीनेका बालक था। इस प्रकार इस लोकमें मुझे अपना कोई सहायक दिखायी नहीं देता था।

मेरी ननद बमनोई विवाही थीं। वे पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के पास आया-जाया करती थीं। उन्हींके कारण मैंने उनकी कुछ गुणावली सुन रखी थी। परन्तु अभी दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। श्रीचरणोंमें श्रद्धा और उनके प्रति आकर्षण अवश्य था। अनाथ और असहाय रह जानेपर चित्त बहुत घबड़ाया। सोचने लगी कि किसी प्रकार आत्मघात कर लूँ, विष खा लूँ, आग लगा लूँ अथवा काँच पीसकर पी लूँ। मेरी ऐसी मनोवृत्तिसे जिन लोगोंके साथ मैं रहती थी वे भी बहुत दुखी थे। उस समयकी मेरी मानसिक वेदना असह्य थी। मैं उसका

वर्णन नहीं कर सकती। तीन दिनतक मैंने कुछ नहीं खाया। तब तन्द्राकीसी अवस्थामें मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए वे बोले, 'तेरा यह बच्चा देवताका अवतार है। तू इसका पालन कर। अभी तुझे बहुत कुछ देखना है। तू कुछ भी कर अभी मर नहीं सकती। सतीको तो एक घटेका ही कष्ट होता है, तेरी विशेषता तो इसीमें है कि इस बालकका पालन करते हुए अपने धर्मकी रक्षा कर।" बस, मेरी आँखें खुल गयीं और मैंने उनका आदेश शिरोधार्य किया। उसके पश्चात् सं० १९७१ के बैशाख शु० ११ को आपने पुनः स्वप्नमें दर्शन दिये और कहा, 'तू केवल निमित्त-मात्र रह। मैं स्वयं तेरी सब व्यवस्था करूँगा।"

पतिदेवका स्वर्गवास हो जानेपर मैं बमनोईमें रहने लगी थी। रियासत भी उन्हींके हाथमें थी। एक हजार रुपया कर्ज हो चुका था। अब उन्होंने मुझे इटरनी भेज दिया मेरे खाने-पीने का भी ठिकाना नहीं था रात-दिन यही लगन रहती थी कि श्रीमहाराजजी कब आवेंगे। रामायण तो बचपनसे ही पढ़ती थी। अतः बार-बार मनमें यह बात आती थी 'भाविहुँ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।" पाँच रोज बिना खाये बीते। केवल जल पीती रही। गाँवमें किसीसे कुछ माँगने और कहने-सुननेमें लज्जा लगती थी।मेरे पास गाँगनीकी एक ब्राह्मणी रहती थी। जब उठना-बैठना कठिन हो गया तो उससे कहा कि मैं तो एक-दो दिनमें मर जाऊँगी। बच्चेको जो चाहे ले जायेगा। परन्तु रातको स्वप्नमें आपने कहा, 'तू कुछ भी कर, मैं तेरे साथ हूँ।" बस, सबेरे उठते ही मेरे मनमें संकल्प हुआ कि सिलाईका काम आरम्भ कर दूँ। यह उन्हींकी प्रेरणा थी। इस प्रकार दो पैसेसे दस पैसे पैदा होने लगे और पेट भरनेका साधन हो गया।

(२)

अब तक जो कुछ हुआ आपकी परोक्ष कृपा ही थी। आपके

प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य अभी प्राप्त नहीं हुआ था। सं० १९७५ वि० में हम रामघाट गये। तबतक आप स्त्रियोंको अपने पास नहीं आने देते थे। अतः जब आप गंगास्नान करते तब दूरसे ही हम आपके दर्शन कर लेते थे। दो-तीन साल इसी तरह चलता रहा। फिर धीरे-धीरे कुछ समीप आने लगे। आपके लिये दूसरोंके मनकी बात जान लेना सामान्य-सी बात थी तथा क्रोध आपको छू भी नहीं गया था। अबतक मैं जिस मन्त्रका जप करती थी उसे छुड़ाकर आपने दूसरा मन्त्र जपनेकी आज्ञा दी तथा इष्टदेवकी मूर्ति या चित्रका पूजन करनेको कहा। परन्तु पूजाका नियम मुझे कठिन जान पड़ा। मैंने कहा, 'मैं तो सजीव देवका ही पूजन करना चाहती हूँ, यह सब मुझसे नहीं हो सकेगा।"

सं० १९९० के अगहन मासमें मेरे लड़के इन्द्रजीतसिंहका विवाह एक डिप्टी कलक्टर की लड़कीसे हो गया। वे बाँधई गाँवके रहनेवाले थे। लड़की योग्य थी। परन्तु दूसरे ही वर्ष इन्द्रजीत बहुत बीमार पड़ गया। उन दिनों बाँधका पहला उत्सव था। मैं श्रीमहाराजजीके दर्शनोंको बाँधपर गयी। तब आपने पूछा, 'इन्द्रजीत कहाँ है ?' मैं उत्तर तो कुछ दे न सकी, रोने लगी। तो आप बोले, 'किसी प्रकार उसे यहाँ ले आओ।' इन्द्रजीत इन दिनों कहीं बाहर जाने योग्य नहीं था। तथापि डिप्टी साहबसे आग्रह करके दुलहिनके सहित मैं उसे फर्रुखा-बादसे लेकर बाँधपर पहुँची। वहाँ जाते समय रास्तेमें ही उसने कहा कि माताजी! अब तो मैं ठीक हूँ। बाँधपर पहुँचते-पहुँचते वह न जाने कैसे बिलकुल ठीक हो गया। श्रीमहाराजजीने उसे कई आदमियोंको दिखाते हुए कहा, 'देखो, यह वही लड़का है जिसकी माँ रोती थी।' फिर मुझसे कहा, 'तू बहू को कर चली जा, मैं इसे अपने पास रखूँगा।" मैं अपने घर चली आयी और बहू अपने पिताके घर चली गयी। आपने छः महीनातक

अनूपशहरके सुप्रसिद्ध वैद्य श्रीलल्लूजीसे इन्द्रजीतकी चिकित्सा करायी और फिर प्रसादरूपसे मुझे दे दिया।

इसके कुछ काल पश्चात् आप गाँवमें आये। वहाँ इन्द्रजीत-के सालेका लड़का खेल रहा था। उसे देखतेही आप बोले, 'देखो, कहाँसे आया है और कहाँ जायगा ?' इसके बारह घंटे बाद वह मर गया। ऐसी थी आपकी भविष्य दृष्टि।

मैं पढ़ना-लिखना नहीं जानती थी। घरका हिसाब भी नहीं लिख पाती थी। आपने स्वप्नमें मेरा हाथ पकड़कर लिखवाया और सबेरे उठनेपर मैं लिखने लगी। मुझे घरकी छोटी-छोटी बात बताते रहते थे। हमारे यहाँ ईखसे गुड़ तैयार किया जाता था। नौकर लोग गुड़की चोरी कर लेते थे। समझाने-बुझाने से मानते नहीं थे। एक दिन स्वप्नमें आपने बताया कि गुड़ चौकेकी ओर पत्तोंमें छिपाकर रखा है। मैंने जाकर देखा तो बात ठीक निकली।

(३)

सं० १९९२ की बात है। इन्द्रजीत बीमार पड़ा और उसे दीखना बन्द हो गया। अगहनके आरम्भमें एक दिन वह बोला, 'माताजी ! मुझे श्रीमहाराजजीके दर्शन कराओ।' वह कुछ शून्यता-सी अनुभव करता था। मैंने कहा, 'श्रीमहाराजजी इस समय अनूपशहर में हैं; चलो, वहीं चिकित्सा करायेंगे। पौषके आरम्भमें हम वहाँ पहुँचे और वैद्य श्रीलल्लूजीके पास एक मकान में ठहरे। एक दिन सायंकालमें आप मुझसे बोले, 'आज रातको सोना मत।' आस-पास रहनेवाले भक्तोंसे भी कह दिया कि तुम लोग रात्रिके समय इसकी देख-भाल रखना। मैं घड़ीमें चाबी लगाकर बैठी रही। किन्तु आधी रातके समय बैठे-बैठे ही मुझे कुछ तन्द्रा-सी हो गयी। उसी समय इन्द्रजीतका शरीर शान्त हो गया। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो आप प्रकट होकर कह रहे हैं

कि इन्द्रजीतको देख। मैंने देखा तो उसमें अब कुछ नहीं था। मैंने भक्तोंके द्वारा सेठ बालूशंकरके बागमें श्रीमहाराजजीके पास उसके देहान्तका समाचार भिजवाया। आपने उनके द्वारा कहलाया कि सवेरे सात बजेतक रखा रहने दे, अभी कोई संस्कार न करे। इन्द्रजीतका शव रातके बारह बजेसे सवेरे सात बजेतक पृथ्वीपर पड़ा रहा। सवेरे सात बजे आप आये और सबको कमरेसे बाहर कर दिया। मैं मुँह फेरकर कमरेके ही एक कोने में बैठी रही। आपने शवको गोदमें लेकर ऊपरसे नीचेतक अपनी हथेलीसे स्पर्श किया और उस पर थपकी-सी देते रहे। आधा घंटा इस प्रकार ठोकते रहनेपर वह कराहने लगा। तब मैंने पूछा, 'महाराजजी ! मैं देख लूँ ?' आपकी आज्ञा पाकर मैंने उसे देखा और उठाकर खाटपर सुला दिया। फिर तो और सब लोग भी भीतर आ गये।

फिर आपने हमसे कहा कि तुम आगरे चले जाओ और इन्द्रजीतके कानपर आवाजके साथ कहा कि तू अपनी माँ से कह दे कि मुझे डिप्टी साहब के पास ले चल। बाबू रामसहायजीने एक कार किरायेपर ठीक की और उसके द्वारा हम आगरे चले आये। चलते समय आपने मुझसे कहा था कि यह पाँच दिन बेहोश रहेगा। तू इसके पास ही रहना। आगरा पहुँचनेपर जब पाँच दिन बाद उसे चेत हुआ तो वह बोला, 'यह क्या बात ? मैं सोया तो था श्रीमहाराजजीके यहाँ, अब इस जगह कैसे आ गया ?"

इसके पश्चात् प्रायः दस महीना उसका शरीर और रहा। इस बीचमें उसको एक पुत्र भी प्राप्त हुआ, जो अबतक सकुशल है मैं साढ़े सोलह वर्षकी आयुमें विधवा हुई थी। तबसे किसी पुरुषको स्पर्श नहीं करती थी। चालीस सालके लिये मैंने ऐसा

नियम किया था। एक दिन स्वप्नमें मेरे बिना पूछे ही आपने कहा, 'इन्द्रजीतका शरीर दस महीना और रहेगा। तू इसे भी स्पर्श मत कर।' इन्द्रजीतकी बीमारी बहुत दिनोंतक चली। बड़े-बड़े डाक्टर और वैद्य भी उसके रोगका कोई निश्चित निदान नहीं कर सके। इस आपत्तिमें उसकी चिकित्साके लिये न जाने पैसा भी कहाँसे आगया। एक दिन स्वप्नमें आपहीने बताया कि इसके दिलपर फालिज है।

अस्तु, चिकित्सा चलती रही। किन्तु कोई लाभ दिखायी न दिया।। सं० १९९४ का कार्तिक मास आया। इन दिनों बहूका बर्ताव कुछ विपरीत था। एक दिन इन्द्रजीत भी कहने लगा कि माताजी! तुम गुस्सा बहुत करती हो। तब मैंने कहा, 'भैया! तू तो दुःखी है ही, चित्तमें मैं भी बहुत दुःखी रहती हूँ। इसलिये कुछ दिन बरा गाँव रह आऊँ' इसके बाद अपनी पूजाकी कोठरीमें गयी तो ऐसा लगा मानो श्रीमहाराजजी प्रकट होकर कह रहे हैं, 'तू कहीं मत जा, यह तो अब केवल पन्द्रह दिनों का महमान है।' मैं चरणस्पर्श करनेको झुकी तो देखा कुछ नहीं है। यह घटना कार्तिक कृ० २ की है। बस, मैंने जानेका विचार छोड़ दिया। पर किसीसे कहा कुछ नहीं। चित्तमें बड़ी चिन्ता हुई कि इन्द्रजीतके पीछे कैसे जीवन धारण करूँगी। ऐसी बेचैनी हुई कि जीवन व्यर्थ दिखायी देने लगा। मैंने अफीम और तेल मँगाकर रख लिया और निश्चय किया कि इन्द्रजीतका शरीर न रहा तो अफीम और तेल पीकर प्राण त्याग दूँगी। इन दिनों हम आगरेके गोकुलपुरा मुहल्लेमें रहते थे। द्वादशीकी रातको प्रायः एक बजे आपने प्रत्यक्ष होकर कहा, 'हम अब जाते हैं। यह तेल की शीशी और अफीम मुझे दे। इनसे तू नहीं मरेगी, व्यर्थ पागल होकर भटकेगी भगवान्‌का भजन कर। न जाने कितनी

वार तू इसकी माँ और यह तेरा पुत्र हुआ है। ये सम्बन्ध सदा रहनेवाले नहीं हैं।" वस, ऐसा कहकर आप अन्तर्धान हो गये।

इसके प्रायः एक सप्ताह पश्चात् कार्तिक शु० २ को इन्द्रजीतका देहान्त हो गया। उसके वाद तो मैं सर्वदा आपकी ही छत्रच्छायामें रहती थी। प्रायः ग्यारह साल वृन्दावन और कर्णवासमें ही रही। मैं वहुत दुःखी होती तो आप मेरी गोदमें लेट जाते और कहते कि तू रा मत, मैं ही तेरा पुत्र हूँ। कभी उनसे छिपकर रोने लगती तो तुरन्त मेरे पास प्रकट होकर मुझे धैर्य बँधाते थे। पिता जैसे पुत्रीकी देख-भाल रखता है उसी प्रकार वे हमारी सँभाल रखते थे। पद-पदपर हमें उनकी असीम अनुकम्पाका अनुभव होता रहता था। उनका वियोग होनेपर अब हमारे स्वार्थ-परमार्थ सभी किनारा कर गये हैं। पर हम अभागे आजतक उनके विना जीवित हैं।

श्रीकिशनसिंहजी दारोगा (रिटायर्ड), उत्तमगढ़ी (अलीगढ़)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

हे गुरुदेव ! हे भगवन् ! आपकी सदा जय हो। मैं आपके गुणानुवाद आपके ही सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ। विश्वास है कि कोई न कोई इसका रसास्वादन करके लाभ उठायेंगे ही।

आपका प्रथम दर्शन मैंने सन् १६१८ ई० में रामघाटकी इमलीवाली कुटीमें किया था। उस समय मैं रामघाटमें सबइन्स्पैक्टर पुलिस था। बाबू रामसहायजी पोस्टमास्टर मेरे पास आया करते थे। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, 'चलो, एक साधुको देख आवें। वह कोई इश्तिहारी डाकू या सी० आई० डी० तो नहीं है' मैं उनके साथ चल पड़ा। जाकर देखा बाहर एक संन्यासी बैठे हैं और भीतर आप विराजमान हैं। उस समय मुझे साधुओंके प्रति शिष्टाचारका कोई बोध नहीं था। अतः मैंने दूरसे ही कहा, 'बाबाजी ! दण्डवत् !' इसपर आप हँस दिये। दूसरे साधु मुझसे अँग्रेजीमें बातें करने लगे। उस समय मेरे मनने यही निर्णय किया कि ये बाहर बैठे हुए सज्जन तो साधु हैं और भीतर तो कोई मुष्टण्डा बैठा हुआ है। थोड़ी देर बात करके मैं चल पड़ा और कह दिया कि कल भोजन मेरे यहाँ कर लेना। दूसरे दिन वे महात्मा तो पहुँच गये, पर आप नहीं आये। मैंने थानेदारीके अहंकारमें समझ लिया कि नहीं आया तो न सही।

इसके बारह वर्ष बाद मुझे आपकी महिमाका कुछ ज्ञान हुआ। उस समय मैं आपके दर्शनको जानेका विचार कर रहा था। अब मैं श्रीअच्युत मुनिजीको अपना गुरु मानने लगा था, किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हारे गुरु तो श्रीउड़िया बाबा हैं। मैं रात्रिमें ही चल पड़ा। प्रातःकाल जब रामघाटमें आपकी कुटी-पर पहुँचा तब आपने दूरसे देखकर ही कहा. 'जा जा,गंगास्नान कर आ।' मैंने कहा, महाराजजी ! मैं तो स्नान करने तब जाऊँगा जब सब भक्तों सहित आपको भिक्षाका निमन्त्रण दे लूँगा।' आपने कहा. 'अच्छी बात है। जा स्नान कर आ।' मैं बिहारी हलवाईसे सामान तैयार करनेके लिये कहकर स्नान करने चला गया। जब लौटकर आया तब सामान तैयार हो रहा था। मैं बैठ गया। सामने जलेबियाँ दिखायी दीं। मुझे प्रातःकाल कुछ कलेवा करनेकी आदत थी। भूख भी लग रही थी। अतः थोड़ी जलेबियाँ लेकर खा लीं। सामान तैयार होनेपर उसे लेकर मैं आपके पास पहुँचा तो आप देखते ही बोले, 'हमें निमन्त्रण देकर तू जलेबियाँ खाकर आ रहा है। तुझे बड़ी जल्दी भूख लग जाती है ?" मुझे बड़ा संकोच हुआ। परन्तु आप बोले, 'जा, तेरा सब अपराध क्षमा किया।' उसी दिनसे आपने मुझे अपना लिया। मैंने भी समझा आपके प्रति बारह वर्ष पहले की हुई अवज्ञाका प्रायश्चित्त हो गया और तबसे धीरे-धीरे जप-ध्यान आदि भी करने लगा।

श्रीमहाराजजी ! आपका दरबार मानो दीन-दुखियोंकी पुकार सुननेका केन्द्र था। वहाँ जो कोई आता निराश नहीं लौटता था। ज्ञानेच्छुओंको ज्ञान, भक्तिकी अभिलाषा रखने-वालोंको भक्ति और धनकी इच्छावालोंको धन देकर आप सभी की वाञ्छा पूर्ण करते थे। आपने अनेक व्यक्तियोंको फाँसीसे

छुड़ाया, परन्तु किसीको इस रहस्यका पता नहीं चलने दिया। मेरा पूर्ण विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति आपके संकल्पको टालनेमें समर्थ नहीं था। देशमें दूर-दूर तक जो घटनाएँ घटती थीं आपको यहीं बैठे-बैठे पता चल जाता था; जैसे—

१. जिस समय दिल्लीमें स्वामी श्रद्धानन्दजीकी श्मशानयात्रा हो रही थी आप रामघाटमें थे। उस समय आपने कहा था, "स्वामी श्रद्धानन्दकी अर्थीके साथ इस समय लाखों आदमी जा रहे हैं। मृत्यु हो तो ऐसी हो।"

२. एक दिन प्रातःकाल आप बोले, 'भैया ! महात्मा गान्धीने अपना संकल्प पूरा कर लिया । आज रातको अहमदाबादमें एक ब्राह्मणकी लड़कीने भंगीके लड़केसे विवाह किया है।"

३. मैं देहरादूनमें था। एक दिन प्रातःकाल पहाड़ी पर बैठ कर भजन कर रहा था। आप उस समय वृन्दावनकी कुटीमें थे। आपने बुद्धिसागरसे कहा, 'किशनसिंहकी नौकरी बड़ी अच्छी है। इस समय वह पहाड़ी पर बैठा भजन कर रहा है।"

४. आपके यहाँ बड़े-बड़े भण्डारोंमें हजारों आदमी भोजन करते थे। परन्तु यदि एक आदमी भी रह जाता तो आप कुटीमें बैठे-बैठे ही बता देते थे, 'अमुक व्यक्तिने अभी प्रसाद नहीं लिया उसे बुला लाओ।' इसी प्रकार आप दूसरोंके मनकी बात भी जान लेते थे। कभी-कभी तो दूसरोंके मुखसे उत्तर भी देते थे, परन्तु इस रहस्यको कोई जान नहीं पाता था। एकबार रामघाटमें श्रीगंगाजीके किनारे सौ से भी अधिक भक्तगण बैठे थे। चँदौसीके प्रोफेसर गंगाशरण 'शील' ने एक भगवत्सम्बन्धी प्रश्न किया। मैंने तत्क्षण उसका बड़ा अच्छा उत्तर दे दिया, जिसका उस समय मुझे अभिमान भी हुआ। परन्तु उसके दस वर्ष बाद श्रीमहाराजजीको अनुभव

करते-करते मैंने समझा कि वास्तवमें वह उत्तर मैंने नहीं दिया उस समय आप ही मेरे मुँहसे बोले थे।

आप परम विरक्त संत थे। कोई कितना ही अनिष्ट करे आपको कभी क्रोध नहीं आता था। रामायण से आपको बहुत प्रेम था। आप यह चौपाई प्रायः कहा करते थे—

'जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई॥'

आपका अन्तिम उपदेश था—संसार भगवान्‌का ही स्वरूप है। भगवान्‌के सिवा और है ही क्या? प्रभो! ऐसी कृपा करो कि मैं सदा आपके गुण गाता रहूँ।

श्रीलालमणिजी, हापुड़

मैंने श्रीमहाराजजीका प्रथम दर्शन बुलन्दशहरमें मौनीजीकी कुटीपर किया था। उस समय आपके पास एक तूँबा और गुदड़ी ही थे। आप एकाकी विचरा करते थे। यद्यपि उस समय आपसे विशेष बातचीत नहीं हुई, तथापि मन में पुनः दर्शनकी लालसा बनी रही। इसके पश्चात् जब कर्णवासमें सेठ गणेशी-लालजीका गायत्री-पुरश्चरण यज्ञ हुआ मैं पुनः आपके दर्शनार्थ पहुँचा और यज्ञकी समाप्तिपर्यन्त वहीं रहा। श्रीमहाराजजीका स्वभाव विचित्र था। कभी-कभी वे रात्रिमें मुझे भोजन नहीं देते थे। एक दिन किसी भक्तने पूछा, 'आप इसे भोजन क्यों नहीं देते ?' आप तुरन्त बोले, यह भजन नहीं करता।' उसी दिनसे मैंने प्रतिज्ञा की कि अब नित्यप्रति भजन किया करूँगा। तभीसे मैं गायत्रीका जप करने लगा और श्रीमहाराजजी भी मुझपर स्नेह करने लगे। अब, वे मुझे बड़े प्रेमसे भोजन देते थे। श्रीमहाराजजीकी कृपासे मुझे गायत्रीके जपसे अनेकों अनुभव हुए। आप भजन करनेसे बहुत प्रसन्न होते थे। कईबार गुरुपूर्णिमा, कृष्णजन्माष्टमी एवं शरत्पूर्णिमा आदि उत्सवोंपर आप स्वप्नमें दर्शन देकर मुझेआनेकी आज्ञा प्रदान करते थे। लीलासंवरणके बाद भी, जब वृन्दावनमें आपके आश्रममें श्रीमद्भागवत्के एक सौ आठ सप्ताहपारायण हुए, आपने मुझे स्वप्नमें दर्शन देकर कहा, 'लालमणि ! क्या अभी यहीं बैठा रहेगा ? जा, वृन्दावन चला जा।' मैंने दूसरे ही दिन वृन्दावन जाकर उत्सवका दर्शन किया।

जिन दिनों मैं श्रीपल्टूबाबाके पड़ौसमें रहता था कभी-कभी खटका हो जानेके कारण वे मुझपर नाराज हो जाया करते थे। एक दिन रात्रिको वे बहुत अप्रसन्न हुए। मैंने किसीसे कहा तो कुछ भी नहीं, परन्तु दुःखी बहुत हुआ और सो गया। दूसरे दिन श्रीमहाराजजीने मुझे बुलाकर कहा, 'बेटा ! दुःखी मत हो, मैं तुझे रहनेके लिये बहुत अच्छा एकान्त स्थान दूँगा। चिन्ता न कर।' मैं सोचने लगा, 'सभी स्थान तो घिरे हुए हैं, मुझे कहाँसे स्थान देंगे ?' उसके चार दिन बाद आपने शिवजीके मन्दिरमें पुस्तकालयवाला कमरा खुलवा दिया। इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ।

आपने मुझे वैष्णवीय दीक्षा लेनेकी आज्ञा दी और उसके खर्चेके लिये कुछ रुपये भी दिला दिये। वैष्णवीय दीक्षामें भी मुझे वही मन्त्र मिला जो आपने कई वर्ष पहले दिया था। व्रन्दावनमें रहते समय मैं कुछ दिनों तक श्रीमहाराजजीके स्नानार्थ जल लानेकी सेवा किया करता था। वहाँसे जब आप बाँधपर पधारे तो एक दिन मुझे एकान्तमें बुलाकर बोले, 'मैं तुम्हें एक ऐसा मन्त्र बतलाऊँगा, जिससे तुम्हारे पास पैसा खूब आयेगा। परन्तु जिस दिन किसीसे कह दोगे पैसा आना बन्द हो जायगा।' मैंने उस समय इन बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिये उन्होंने वह मन्त्र बतलाया भी नहीं।

जब आप माँ श्रीआनन्दमयी और श्रीहरिबाबाजीके साथ पंजाबकी यात्राको जाने लगे तो उससे पहले मुझे एकान्तमें बुलाकर कहा, 'लालमणि ! मेरी एक बात मानेगा ?' मैंने कहा, 'महाराजजी ! अवश्य मानूँगा।' तब आप बोले, 'यह मेरा अन्तिम उपदेश है कि तुम प्रति दिन महामन्त्रकी चौंसठ माला जपा करो।' उस सयय मैं उस 'अन्तिम उपदेश' का अभिप्राय कुछ नहीं समझ सका। पीछे यह बात समझमें आयी।

लीला संवरणके बाद ता० १६ मार्च, सन् १९५५ ई० को रात्रिके समय मैंने स्वप्नमें देखा कि श्रीमहाराजजी वृन्दावनकी कुटियामें जहाँ बैठकर रोटी बांटा करते थे वहीं बैठे हैं। मैंने जाकर उनकी पूजा की और चरणोदक लिया। मैं चरणोदकके लिये दोना ले गया था। उसे देखकर आप कहने लगे, 'अरे! कटोरी क्यों नहीं लाया ?" फिर हँस-हँसकर बातें करने लगे और प्रसादमें एक पराँवठा दिया। वृन्दावनमें जब कभी कुटिया-पर कोई उत्सव होता है मैं स्वप्नमें श्रीमहाराजजीको अवश्य देखता हूँ। यह मेरे लिये उत्सवमें आनेका आदेश होता है।
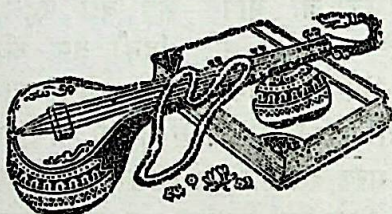
श्रीशंकरलालजी सहतावाले, वृन्दावन

(१)

मेरे पिताजी श्रीमहाराजजीके दर्शनोंको जाया करते थे। कभी-कभी मैं भी उनके साथ जाता था। धीरे-धीरे श्रीमहाराजजीकी कृपासे उनके चरणोंमें मेरी श्रद्धा-भक्ति हो गयी और समय-समयपर उनकी कृपाकी अनुभूति भी होने लगी। जब कभी वे मेरे गाँव सहता पधारते, मुझे उनके दर्शन और सेवाका अवसर प्राप्त होता।

(२)

एक बार श्रीमहाराजजी सेहता आये। मैं उस समय अपना काम छोड़कर सारा सामान लेकर कानपुरसे चला आया था। आपने मुझसे पूछा, 'यदि तुम यहाँसे नित्य प्रति गङ्गास्नानके लिये जाओ तो कितना खर्चा लगेगा ?' मैंने कहा, 'महाराजजी ! कमसे कम पाँच रुपये रोज तो लगेंगे ही।' तब बोले, 'तब तो तुम कानपुरका काम मत छोड़ो। वहाँ रहकर तुम नित्य-प्रति गङ्गास्नान करते हो। यहाँसे जाओ तो नित्य-प्रति पाँच रुपये खर्च होंगे। अतः तुम अपने वेतनके अतिरिक्त पाँच रुपये रोजकी आमदनी अधिक समझो।' महाराजजीकी ऐसी आज्ञा होनेपर मैं पुनः कानपुर चला गया।

कुछ काल बीतनेपर एकदिन रात्रिमें स्वप्नावस्थामें मुझे श्रीमहाराजजीने दर्शन दिया और कहा, 'अब मेरे पाँच रुपये

रोजके हिसाबसे बहुत रुपये जमा हो गये हैं । तुम श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनो ।' जागते ही मैंने सप्ताह-श्रवणका संकल्प किया । जब मेरे पास ढाई सौ रुपये हो गये तब मैंने श्रीमहाराजजीसे सप्ताह सुननेकी प्रार्थना की । आप बोले, 'जब बारह सौ हो जायँ तब सुनना ।' जब १२ सौ हो गये तब पुनः प्रार्थना की । परन्तु फिर भी आपने मना कर दिया । होते-होते जब पूरे अड़तीस सौ रुपये मेरे पास हो गये तब आपने स्वीकृति दी । स्वयं सहुता पधारकर आपने श्रीमद्भागवतका सप्ताह कराया । सप्ताह बड़े ठाठसे हुआ । सहस्रों नर-नारियोंने श्रवण किया । सबको आपके दर्शन और सत्सङ्गका लाभ मिला । समाप्तिपर भण्डारा हुआ । महाराजजीकी आज्ञासे जब खर्चेका हिसाब जोड़ा गया तो आठ सौ रुपया अधिक लगनेका हिसाब आया । आप बोले, 'कोई चिन्ता नहीं, इतनी आमदनी तो एक दिनमें हो जाती है ।' वही हुआ । आपका वह वाक्य अक्षरशः यथार्थ हुआ । मैं जब कानपुर गया तो एक सप्ताहके भीतर ही मुझे एक दिन आठ सौ रुपये की आय हुई । इसे मैं श्रीमहाराजजाकी कृपा ही मानता हूँ ।

(२)

एक बार दिल्लीमें व्यवसाय करते समय मुझे रुपयेका बहुत घाटा लगा । मैंने दुःखित होकर गङ्गाजीमें डूबनेका निश्चय किया और उसी सङ्कल्पसे मैं कर्णवास गया । रात्रिको शयनके समय जब मैं चरणसेवा करने लगा तो श्रीमहाराजजीने कहा, 'बेटा ! तुम्हारा चित्त दुःखी जान पड़ता है । ऐसा काम नहीं करते । इसमें हानि ही हानि है ।' दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे गङ्गाजीमें खड़ा करके उन्होंने ऐसा काम जीवनमें कभी न करने का सङ्कल्प कराया । इस बातको या तो उन्होंने जाना या मैंने; अन्य कोई कुछ नहीं समझ सका ।

(४)

पीछे श्रीमहाराजजीने मुझे वृन्दावनमें कुटी बनाकर रहनेकी आज्ञा दी। में वृन्दावनमें रहने लगा। उस समय पचासों बार ऐसी घटनाएँ घटीं कि मैं जो कुछ पूछना चाहता उसका वे स्वयं ही उत्तर दे देते। भण्डारे आदिके कार्योंमें भी मुझे सेवा सौंपी गयी। उसे मैं उन्हींकी कृपासे सम्पन्न कर पाया। बचपनसे ही मैं उनकी कृपादृष्टिसे ही पला हूँ और अब भी उनकी पूर्ण कृपा है। अब भी यदि कोई चिन्ताका विषय उपस्थित होता है तो उसका वे स्वप्नमें समाधान कर देते हैं।

भक्त हरीसिंह, वृन्दावन

सम्पर्क कैसे बढ़ा ?

उस समय मेरी आयु ग्यारह वर्षकी थी जब श्रीमहाराजजी मेरे गाँवमें पधारे थे और शिवजीके मन्दिर पर ठहरे थे। मैंने सबसे पहले वहीं आपके दर्शन किये थे। परन्तु वालक होनेके कारण कोई वातचीत नहीं हुई। उस समय आपके साथ चार-छः भक्त भी थे। गाँवके कुछ लोग आ जाते थे और नित्य-प्रति शामको कीर्तन होता था। श्रीमहाराजजीके चले जानेके बाद भी वहाँ नित्य-प्रति कीर्त्तनका नियम हो गया। उसमें मैं भी सम्मिलित होता था। उसके बाद जब कर्णवास, रामघाट या बाँधके उत्सवोंपर महाराजजी पधारते तो वहाँ जाकर उनके दर्शन करने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे उनसे सम्पर्क बढ़ गया।

एकबार मैंने बाँधके उत्सवपर जाकर महाराजजीका दर्शन किया। कुछ मिष्टान्न सामने रखकर उन्हें माला पहना दी। पाँच-सात दिन वहीं रहा। आप कहते, 'तू घर क्यों नहीं जाता ?'' मैं क्या उत्तर देता ? कह देता, 'महाराजजी ! घर जानेको मन नहीं करता।' वास्तवमें घर जानेपर वहाँ मन ही नहीं लगता था। महाराजजीके पास आनेकी ही उत्सुकता बनी रहती थी और उनके पास पहुँचते ही मन निश्चिन्त हो जाता था। एक वर्षतक तो ऐसी हालत रही कि कब घरसे पिण्ड छूटे

और मैं श्रीमहाराजजी के पास चला जाऊँ ?

वृन्दाबनमें

श्रीमहाराजजीके सम्पर्कमें आनेसे पूर्व, जैसा कि प्रायः होता है, घरमें बहुत अधिक मोह था, बड़ी आसक्ति थी। जब उनका सत्संग प्राप्त हुआ और कुछ भजनमें मन लगने लगा तो घरका मोह छूट गया; आपत्ति-विपत्तिमें भी कुछ परवा नहीं रहती थी, मस्त डोलता था। कई वर्ष बाद जब श्रीमहाराजजी वृन्दाबन पधारे तब एक दिन आपने कृपा करके मुझे कण्ठी और माला दी तथा महामन्त्रका जप करनेकी आज्ञा प्रदान की। नित्य प्रति सोलह माला जपनेका नियम कर दिया।

आपका स्वभाव बहुत उदार था, परन्तु साथ ही शिक्षा भी देते रहते थे। एकबार आप तीन महीनेके लिये वृन्दावनसे बाहर चले गये। आपकी उपस्थितिमें मैं दूध पिया करता था। आपके चले जानेपर भी उसी प्रकार पीता रहा और तीन महीनेमें प्रायः ४०) का दूध पी लिया। जब आप लौटे तो किसीने आपको यह बात सुना दी। आप बोले, "दूध क्यों पीता है ?" किसी ने बताया, "इसे कोई बीमारी है।" आप बोले, "बीमारी है तो इलाज करा ले। दूधका दाम कहाँसे आवेगा ?" परन्तु पीछेसे कह दिया कि इसके दूधका दाम दे देना। यह काम करता है।

एक दिन जब मैं चौकेमें बर्तन माँज रहा था आप अकस्मात् पहुँच गये और मेरी पीठ पर हाथ रखकर बोले, "बेटा! इसे काम मत समझना। काम समझेगा तो थक जायगा। इसे भजन ही समझना।" श्रीमहाराजजीके मुखसे यह वचन सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसका यह परिणाम हुआ कि मैं कितना भी काम करता, मुझे न तो थकावट होती और न मेरा चित्त ऊबता।

श्रीमहाराजजीके लीलासंवरणके बाद मैं मथुरा जेलमें था। भण्डारेके दिन आपने स्वप्नमें दर्शन दिया और बोले, 'अरे ! कोई आटा नहीं माँड़ता, तू चलकर आटा माँड़ ले।" मैंने कहा, "महाराजजी ! अभी चलता हूँ।" उसके कुछ दिनों बाद आपने पुनः दर्शन दिया और बोले, 'बेटा ! कुटिया छोड़कर कहीं मत जाना।' उसके कुछ ही दिनों बाद मास्टर राधाबल्लभ मुझे जमानतपर छुड़ा लाये। अब भी कभी-कभो स्वप्नमें आपके दर्शन होते रहते हैं।

हरी काशीमें है

सन् १९५४ ई० के प्रयाग कुम्भसे मैं, गोविन्ददासजी, मास्टर प्यारेलाल और हरिचरण दास आदि साथ साथ श्रीजगन्नाथजी का दर्शन करने गये थे। वहाँ पाँच दिन रहकह दर्शन और समुद्र स्नान आदि किया। फिर हम लोग तो कलकत्ता चले गये, किन्तु गोविन्ददासजी श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें गीतगोविन्दका पाठ करनेके उद्देश्यसे वहीं रह गये। हमारे चले जाने के पश्चात् देवनागरी अक्षरोंमें गीतगोविन्दकी पुस्तक न मिलनेके कारण वे पाठ प्रारम्भ न कर सके। इससे उनका चित्त उदास हो गया और वे मन ही मन सोचने लगे कि अच्छा होता यदि सबके साथ कलकत्ता ही चले जाते। अपने साथके सब आदमी तो वहाँ चले गये, यहाँ मैं पाठ भी नहीं कर सका। उसी दिन रात्रिमें श्रीमहाराजजीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा, "हरी काशीमें है।" यद्यपि उस रात्रिको मैं कलकत्तेमें था परन्तु काशी जानेका सबका सङ्कल्प हो चुका था। बस, गोविन्ददासजी जगन्नाथपुरीसे सीधे काशीका टिकट लेकर चले और हम सबने कलकत्तेसे काशीके लिये प्रस्थान किया। एक ही दिन प्रातः काल वे और हम काशीजीमें उतरे। वे गङ्गास्नान करके सड़क से जा

रहे थे। उसी समय हरिचरणदासने उन्हें देख लिया। फिर हम सब मिल गये। जब उन्होंने स्वप्नकी बात सुनायी तो हम लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। श्रीमहाराजजीने किस प्रकार हम लोगोंके मनकी बात जानकर हमें काशीमें पुनः मिला दिया। यह बड़ी ही विचित्र बात-हुई।

इस प्रकार श्रीमहाराजजीअब भी समय-समयपर हमारी देखभाल करते रहते हैं। हम अब भी अपनेको उन्हीं की छत्र छायामें समझते हैं।

भक्त रामसिंह, वृन्दावन

(१)

सं० १९९२ वि० में काजिमाबादके उत्सवमें श्रीमहाराजजी पधारे थे। वहां मैं उनके दर्शनोंके लिये गया। मेरी लालसा थी कि महाराजजीके हाथोंसे माला लूँगा। परन्तु जब मैंने मालाके लिए प्रार्थना की तो उन्होंने मना कर दिया। बोले, 'चार पैसेकी माला कहींसे ले लेना, मैं नहीं देता।' मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं रेलगाड़ीके नीचे कटकर मरनेके लिये समीपके स्टेशन अतरौली रोड को चला। इधर श्रीमहाराजजीने मेरे आन्तरिक विचारको जान लिया और तुरन्त ही पं० खूबीरामसे कहा, 'उसे पकड़ लाओ मैं माला दूँगा।'' मैं लौट आया और मुझे माला मिल गयी।

(२)

मैं बीबी हरिप्यारीके साथ दिल्ली गया था। एक दिन मैंने भूलसे गीला कपड़ा बिजलीके तारपर डाला। उसी समय मुझे बिजलीका करेंट लगा और मैं बेहोश होकर गिर गया। डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने कह दिया, 'यह मर गया है, अब इसमें जीवनका कोई चिन्ह नहीं है।' हरिप्यारी बार-बार श्रीमहाराज-जीसे प्रार्थना करती थीं कि इसे बचाओ, मैं आपको कैसे

मुँह दिखाऊँगी। पीछे बिजली-विभागका कोई अफसर आया। उसने मुझे धरतीमें गड्डा खोदकर दबवाया। ऐसा करनेसे छः घंटे बाद मुझे चेतना आ गयी और मैं उठ बैठा। होश आनेपर ये सब बातें मुझे दूसरे लोगोंने बतायीं। श्रीमहाराजजी उस समय कर्णवास में थे। उन्होंने स्पष्ट तो नहीं किया, परन्तु कई लोगोंपे यह अवश्य कहा कि आज मेरे किसी आदमी की मृत्यु हुई है। मेरा विश्वास है कि उन्होंने मेरी दशा देख ली थी, परन्तु ऐसी बातोंको वे स्पष्ट नहीं कहते थे।

(३)

एक बार श्रीमहाराजजी कर्णवास में थे। कार्तिकका महीना था। प्रातःकाल सभी भक्तोंके साथ गंगास्नानके लिये जाते थे और दीपदान भी करते थे। मुझे उन दिनों ज्वर आता था। आठ लंघन हो चुके थे। एक दिन स्नान करके लौटे तो मुझसे बोले, 'अरे तू दीपदान करने नहीं गया ?" मैंने उत्तर दिया, 'महाराजजी ! मुझे तो ज्वर आता है।" आप बोले, नहीं, अभी जा गङ्गास्नान कर।' मैंने फिर कहा महाराजजी ! मुझे ज्वर आता है।' परन्तु उन्होंने जबरदस्ती मुझे भेजा। मैंने पक्के घाटपर जाकर स्नान किया। बस उसी समयसे ज्वर निःशेष हो गया।

(४)

एकबार मैं एक माताजीको ओषधि लेकर राजघाट स्टेशनपर उतरा। उतरते ही एक पुलिस काँस्टेबिलने पूछा, तुम्हारा क्या नाम है ?' मैंने कहा रामसिंह'। फिर जाति पूछी। मैंने बताया, ,जाट।' फिर पूछा तुमने पहले फौजमें नौकरी की है ?' मैं बोला, 'हाँ'। बस, उसने पकड़ लिया और बरेली-जेलमें भेज दिया।*

* बात यह थी की रामसिंह जाट नामका कोई सिपाही सेना से भाग आया था। उसीके धोखेमें यह रामसिंह पकड़ा गया।

वहाँ मुझे तुलसी और पीपलका वृक्ष मिल गया। मैं उन्हें सींचता और श्रीमहाराजजीका स्मरण करता था। प्रायः नित्य ही स्वप्नमें श्रीमहाराजजी दर्शन देते और कहते थे, 'बेटा! मैं तुझे ढुँढ़वा रहा हूँ। मुझे तेरी चिन्ता है।" माताओंमें से भी किन्हीं-किन्हीं को दर्शन होते। वे भी कहतीं, 'श्रीमहाराजजीको तेरी बड़ी चिन्ता है।' एक दिन मैंने जेल से श्रीमहाराजजीके नाम एक कार्ड लिखा। उसमें अपने पकड़े जानेकी सारी बात लिख दी। उसे पढ़कर श्रीमहाराजजीने पं० प्यारेलाल वैद्य (रामघाट) को भेजा। उनके आते ही मुझे सम्मानपूर्वक छोड़ दिया। सब लोगोंने मेरे पैर छुए और जेलरने श्रीमहाराजजीके दर्शनार्थ आनेको कहा।

(५)

श्रीवृन्दावन-आश्रमकी प्रतिष्ठाके महोत्सवपर भक्तोंकी बड़ी भारी भीड़ थी सभी महाराजजीकी पूजा करना चाहते थे। परन्तु श्रीमहाराजजीको प्रायः अवकाश नहीं मिलता था। अतः जिस भक्तको वे जहाँ मिल जाते वहीं पर पूजा कर लेता था। एक दिन छोटे दरवाजेके पास ही कुछ भक्त पूजा करने लगे। काफी भीड़ हो गयी। उसी समय मैं भी कुछ फूल लिये धक्का-मुक्की करता आगे बढ़ने लगा। महाराजजीने मुझे देख लिया और हाथ बढ़ाकर मेरे हाथसे फूल ले उन्हें स्वयं ही अपने सिर-पर चढ़ाकर बोले, 'जा तेरी पूजा हो गयी, काम कर।' ऐसी थी उनकी कृपा।

(६)

एकबार मुझे गाँवमें इस बातके लिये बड़ी चिन्ता हुई कि मैं भजन कैसे करूँ? तब श्रीमहाराजजीने स्वप्नमें कहा, 'मुझे

अपने सामने देखाकर।' पीछे मैं कर्णवास गया और वहाँ भी श्रीमहाराजजीसे वही प्रश्न किया। तब भी उन्होंने यही उत्तर दिया, 'मुझे अपने सामने देखा कर।'

(७)

श्रीमहाराजजीके लीलासंवरणके पाँच वर्ष बादकी घटना है। मैं मास्टर प्यारेलालके गाँव लाड़पुरा में था। वहाँ रातको हम दोनोंमें आपसमें सत्सङ्ग होने लगा। प्रसंग यह था कि हमें शुद्ध अन्न नहीं मिलता इसीसे भजन नहीं बनता। रातको जब मैं सोया तो स्वप्नमें श्रीमहाराजजीके दर्शन हुए। वे बोले, 'मैं सबको देखता हूँ। मुझे रातको कोई भी भजन करता नहीं दीखता। सब पड़े-पड़े सोते रहते हैं।' मैंने कहा, 'महाराजजी! मुझे शुद्ध अन्न तो मिलता नहीं; भजन कैसे हो?' श्रीमहाराजजी बोले, 'मैं तुम्हें कंगालोंकी रोटी खाकर भजन करके दिखा सकता हूँ। यह केवल भजन न करनेका बहाना है।'

ऐसी ही श्रीमहाराजजीकी अनेकों अलौकिक लीलाएँ हैं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय?

श्रीरामेश्वरदयाल शर्मा, सेंडौल (अलीगढ़)

(१)

मेरी आयु जिस समय लगभग सात या आठ वर्षकी थी, मैंने पूज्यपाद श्रीमहाराजजीके दर्शन पहली बार काजिमाबादमें किये थे। तभीसे उनके प्रति मेरे चित्तमें अनुराग उत्पन्न हो गया और मैं बराबर उनके संसर्गमें आनेका प्रयत्न करने लगा।

सन् १९३८ की बात है। श्रीमहाराजजीने उस साल अपना चातुर्मास्य रामघाटमें किया था। मैं हिन्दी मिडिलमें पढ़ता था। मैं अतरौलीसे प्रत्येक रविवारकी छुट्टीमें उनके दर्शनार्थ रामघाट जाया करता था। शरत्पूर्णिमाका उत्सव निकट था। मैंने जब स्कूल आनेके लिये प्रातःकाल ही महाराजजीसे आज्ञा माँगी तो आपने पूछा, 'बेटा ! शरदपर नहीं रहेगा।' मैंने कहा, 'महाराजजी ! उत्सवपर अवश्य आ जाऊँगा।' इसपर आपने सिर हिलाकर जानेकी अनुमति दे दी।

शरत्पूर्णिमाके दिन स्कूलकी छुट्टी नहीं थी। अतः प्रातःकाल तो मैं गाँवसे स्कूल गया। वहाँसे साढ़े तीन बजे छुट्टी मिली गाँव (सेंडौल) अतरौलीसे चार मील था। पैदल ही वहाँ पहुँचा। शीतकाल आनेवाला था, अतः दिन छोटे हो गये थे। गाँव पहुँ-चते-पहुँचते ५ बज गये। मुझे रह-रहकर श्रीमहाराजजीके सामने की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण हो रहा था। अतः अकेला ही

झोला ले रामघाट के लिये चल दिया। रामघाट गाँव से प्रायः चौदह मील है। मैं तीन मील ही चला था कि सूर्य अस्त हो गया। अभी काफी मार्ग तय करना था और मैं था अकेला; अतः भय-भीत होने लगा। कच्चा रास्ता होनेके कारण कोई यातायातका साधन भी नहीं था। अतः रामघाट पहुँचनेसे मैं निराश हो गया और बड़े धर्म-सङ्कटमें पड़ गया। कभी आगे बढ़ता और कभी गाँवकी ओर लौटना चाहता था। विवश होकर मन ही मन श्रीमहाराजजीसे प्रार्थना करने लगा। थोड़ी ही देरमें मुझे पीछेसे तीन आदमी आते दिखायी दिये। पूछनेपर पता लगा कि वे गङ्गास्नानके लिये रामघाट जा रहे हैं। अतः मैं उनके साथ हो लिया।

रास्तेमें बातचीत करते हम रामघाटके पास हजारा नहरपर आये। इस समय रातके दस बज चुके थे। यहाँसे हमारा रास्ता अलग-अलग होता था। उस रात्रिके समय अकेला श्रीमहाराजजी-की कुटीपर जानेमें मुझे भय लगता था। अतः मैंने उन लोगोंसे श्रीमहाराजजीके यहाँ शरत्पूर्णिमाके उत्सवकी बात कही तो वे भी मेरे साथ वहीं जानेको तैयार हो गये। परन्तु कुटियापर पहुँचनेके पश्चात् बहुत ढूँढ़नेपर भी मुझे उनका पता न लगा।

मैं जैसे ही श्रीमहाराजजीके पास पहुँचा उन्होंने खीरका प्रसाद बाँटनेकी आज्ञा दे दी और मैं उस प्रसादमें सम्मिलित हो गया। उस समय मुझे तो यही लगा कि मुझे इस प्रकार अपने समीप बुलानेकी व्यवस्था उन्होंने ही की थी। विपत्तिके समय वे इसी प्रकार अपने भक्तोंकी रक्षा करते थे।

(२)

मेरे गाँवसे चार भक्त श्रीमहाराजजीकी सेवामें और जाया करते थे—(१) गौरीशंकरजी (श्रीशङ्कर प्रकाश ब्रह्मचारी), (२) ख्याली (श्रीप्रकाशानन्दजी), (३) नानक और (४, सिया-

रामजी। मैं इन चारोंकी अपेक्षा आयुमें छोटा था। श्रीमहाराज-जीने इन चारोंको माला एवं मन्त्र प्रदान कर दिये थे। मेरी भी उत्कट इच्छा थी कि महाराजजी मुझे भी माला और मन्त्र दे दें। अतः मैंने सिरसानिवासी पं० खूबीरामसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा, 'तुम सीधे श्रीमहाराजजीसे ही माला माँग लेना।' मैंने उनसे माला माँगी तो वे एकदम झिड़ककर बोले, 'बच्चे-कच्चोंको माला नहीं मिलती।' मैं निराश होकर इधर-उधर घूमता रहा। मैंने प्रण कर लिया कि यदि महाराजजी मुझे मन्त्र और माला नहीं देंगे तो मैं गङ्गाजीमें डूबकर अपने प्राण दे दूँगा।

दूसरे दिन मध्याह्नके समय श्रीमहाराजजी कुटियामें बैठे महाप्रसाद बाँट रहे थे। उपर्युक्त चारों भक्त और रोशन कोली (सरयूदास) भी महाप्रसाद ले आये। मुझसे भी न रहा गया। अतः साहस बटोरकर कुटियाके सामने खम्भेकी आड़में जा खड़ा हुआ। उस समय महाराजजीके पास बुद्धिसागर और पं० खूबी-राम बैठे हुए थे। बुद्धिसागरने मेरी ओर संकेत किया तो महा-राजजी एकदम चिल्लाकर बोले, 'बच्चे-कच्चोंको क्या महा-प्रसाद ?' इतनेमें प० खूबीरामजीने कहा, 'महाराजजी ! यह तो कई दिनोंसे मुझसे मालाके लिये कह रहा है।' अब तो वे और भी बिगड़ गये और बोले, कैसी माला ! बच्चोंको किस बातको माला ?' पण्डितजीने कहा, 'महाराजजी ! यह तो बहुत रोता है।' अब क्या था ? उनके ऐसा कहते ही मेरी अश्रुधारा चल पड़ी। यह देखकर श्रीमहाराजजी कुटियामेंसे उठकर स्वयं मेरे पास आये। उस समय उनके हाथ भातमें सने हुए थे। उन्होंने मुझे हृदयसे लगा लिया। मेरी हिलकी बँध गयी और इतना अश्रुपात हुआकि उनकी चादर काफी भीग गयी। तब आपने मुझे तुरन्त महाप्रसाद दिया और सान्त्वना देते हुए कहा, 'बेटा ! मैं तुझे बढ़िया माला दूँगा।' संध्या समय आप एक तुलसीमाला

गलेमें डाले आये और उसे स्वतः उतार कर मुझे दे दिया। मैंने मन्त्र पूछा तो आप कुछ समयके लिये ध्यानस्थ हो गये और फिर मन्त्र भी दे दिया।

(३)

एक दिनकी बात है, मैं रात्रिके समय रामघाटकी झाड़ीमें होकर आ रहा था। इतनेमें सहसा मेरी दृष्टि एक काले साँपपर पड़ी। मैं एकदम चिल्ला उठा, 'बाबा ! साँप।' इस समय भयके कारण मेरी घिग्घी बँध गयी। महाराजजीने तुरन्त बड़े जोरसे आवाज दी 'बेटा ! यहाँ साँप कहाँ है रे ! अरे ! यहाँ साँप नहीं है।' और मेरे पास वहाँ झाड़ीमें ही आप बुद्धिसागरके सहित पहुँच गये। ऐसी थी आपकी भक्तवत्सलता।

अपने उन हृदयाराध्य गुरुदेवको मैं निम्नाङ्कित पदद्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए यह लेख समाप्त करता हूँ—

हे ऋषिकल्प ! शत शत प्रणाम।
हे त्याग-तपस्या-मूर्त्ति और ब्रह्मज्ञ सारवित् तेजवान्।
करते विकीर्ण आनन्द-पूर्ण हे पूर्णानन्द प्रकाशवान्॥ १॥
अवतार-भूमि वह पुरी धन्य, वे मातृ-पितृवर हैं सुधन्य।
जिनके गृहमें अवतीर्ण हुए तुम कीर्त्तिपुञ्ज यशसा अनन्य॥२॥
प्रभु थे पर सेवामूर्त्ति रहे. अतिशय अनुराग-विराग-धनी।
थीं सिद्धि हस्त-आमलक-तुल्य पर त्यागी व्रती यमी नियमी।३
तुमगये किन्तु वह दिव्य ज्योति, कर दी प्रसृत हे दण्डन्यस्त।
जो युग युगतक साधकजनको देगी प्रकाश पथ का प्रशस्त॥४
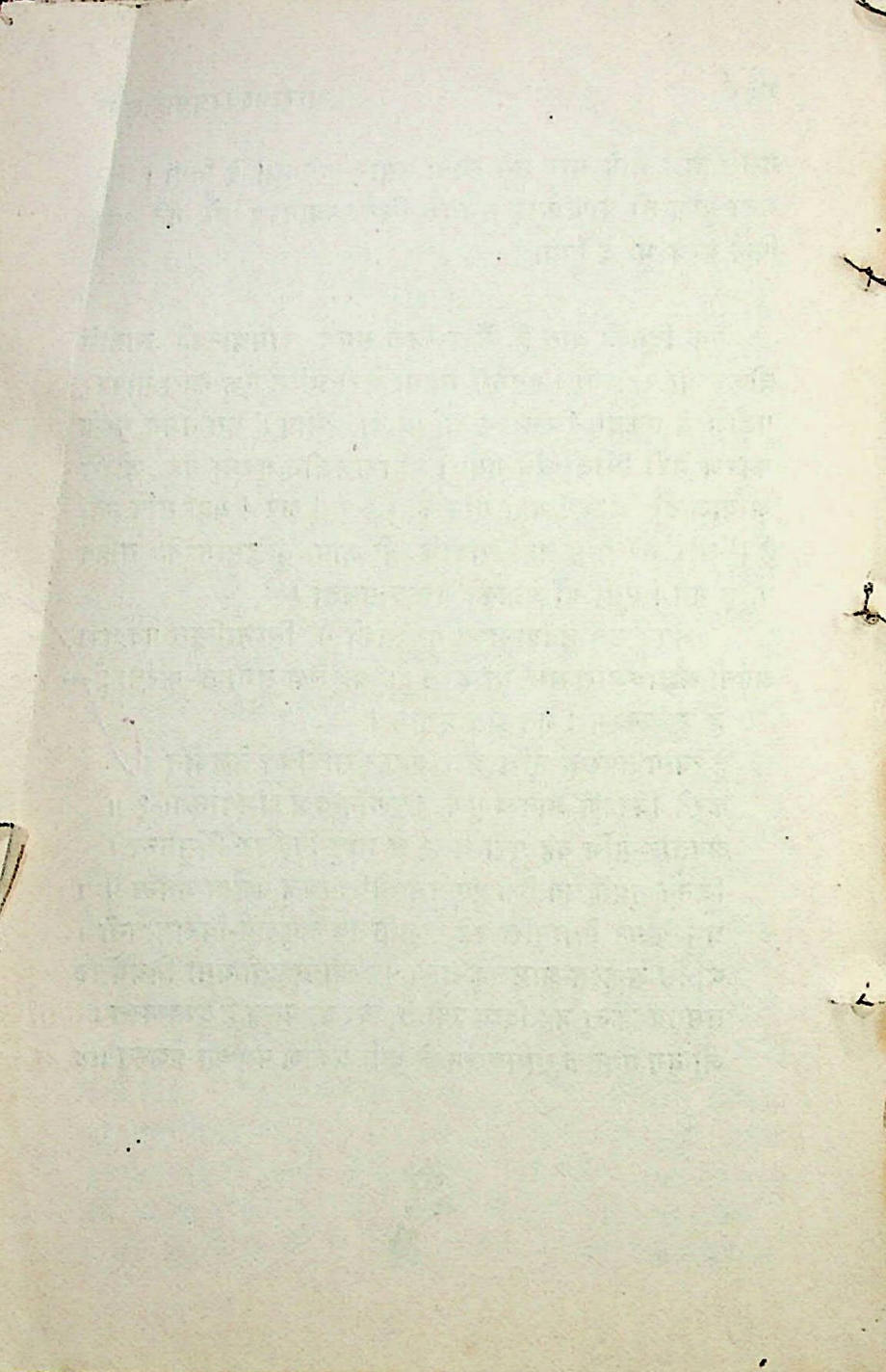
शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	६	स्वातन्त्र्यक	स्वातन्त्र्यका
८	२२	सर्वदा	सर्वथा
६	अन्तिम	सत	सन्त
१५	१०	तुरन्तु	तुरन्त
२७	८	रीतियों	रतियों
३५	११	उत्सव	उत्सवका
३७	१८	साष्ठांग	साष्टांग
४०	२२	कनेद्यौ	कलेद्यो
५६	२४	वेदसम्बन्धी	वेदान्तसम्बन्धी
६८	६	जनति	जननि
७२	३	अद्भत	अद्भुत
७२	१६	सयोग	संयोग
६२	७	सेट	सेठ
६३	१५	हमय	समय
६४	६	राते	रोते
१०३	२१	एव	एक
११३	१४	स्वरूपस्तिथी	स्वरूपस्थिति
१२२	४	स्तेशन	स्टेशन
१२५	२१	और	और वह

१२६	८	चिम्मन	चिम्मनको
१३२	१०	भरिया	भेरिया
१३४	४	रामघाट	राजघाट
१३४	१५	चड़ाया	चढ़ाया
१३९	अन्तिम	तुस	तु स
१४४	१	परामर्श	परमार्थ
१४४	२३	गामत	गोमत
१४८	१८	उसमें	उसके
१५३	३	भजा	भेजा
१५३	७	करल	करले
१६०	१६	पांचव	पांचवें
१७५	१७	निरोग	नीरोग
१७८	१०	छाड़ा	छोड़ा
१८२	१७	इस	इसे
१८४	८	दशन	दर्शन
१८५	३	एम० ए०	एफ० ए०
१८५	२१	पड़ने	पढ़ने
१९२	१०	आओ	जाओ
२०१	अन्तिम	ता	तो
२०१	,,	दत्तात्रय	दत्तात्रेय
२०५	७	अ र	और
२०८	१०	स कार	सरकार
२१५	१५	काय	कार्य
२३१	१७	साइ	सोइ
२४२	११	रहे थे	रहे
२४३	१३	अत्र	अन्न